ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार

एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म

१४ सितम्बर सन् १९४२, में उत्तर-प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर-सलेमाबाद में एक विशेष बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था। और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा, श्वासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता, तो उसकी गर्दन दायें-बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त विभिन्न ऋषि-मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक, एक दिव्य प्रवचन का प्रसारण होता। पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन-मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में, शृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन-मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं। -शृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान

१ 14 02 1982 पुष्प 47 मानव को प्रभु के ज्ञान विज्ञान का चिन्तन करते

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव, जो विज्ञानमयी स्वरूप माना गया है, जो उस देव की महिमा का गुणगान गाते चले जा रहे थे, क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है। जैसे ब्रह्माण्ड की गाथा पृथ्वी गाती रहती है, जैसे वाणी उद्गान गाती रहती है, इसी प्रकार प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मका के ज्ञान और विज्ञान का वर्णन करता रहता है, उसकी गाथा गाता रहता है, जैसे माता का पुत्र माता की गाथा गाता रहता है, इसी प्रकारप प्रत्येक वेदमन्त्र में यह ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है। वह उस बह्म की प्रतिभा कहलाती है जिसका प्रत्येक मानव प्राणी मात्र उत्सुक रहता है। आज का हमारा वेदमन्त्र सूत्र की गाथा गा रहा था क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र में जो ज्ञान और विज्ञान है वह एक मनके की भांति है, जैसे मनका होता है। परन्तु सूत्र और मनका देनों ही भिन्न भिन्न होते हैं। मेरे प्यारे! जब वह मनके सूत्र में पिरोएं जाते हैं, तो उसके पश्चात् वह माला बन जाती है इसी प्रकार प्रत्येक वेद का जो मन्त्र है, वह मनके की भांति है परन्तु जब वह ओ3म्ः रूपी सूत्र मं पिरोया जाता है तो वह भी एक माला बन जाती है जैसे हमारे ऋषि मुनि वेदों का गान गाने वाले भिन्न भिन्न प्रकार से वेदों का गान गाते रहे हैं। मुझे स्मरण आता रहता है जब बेटा! ज्ञानी ऋषि महाराज भयंकर बनों में गान गाते थे। तो उसे माला पाठ कहते हैं। क्योंकि वेदों के पठन पाठन का जो कर्म है वह भिन्न भिन्न प्रकार का रहा है जैसे जटापाठ, ब्रह्मपाठ, मालापाठ, उदात्त पाठ, ऋवतपाठ, रोहिणिपाठ, दीपाकृतिकपाठ, मल्हार रोहणिक पाठ और भी नाना प्रकारप के पठन पाठन के चलन परम्परागतों से ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में नृत्य करते रहे हैं आज मैं बेटा! तुम्हें गम्भर पठन पाठनों के क्षेत्रों में नहीं ले जाऊँगा।

विचार विनिमय क्या? कि आज का हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा है वेदमन्त्र कहता था।

मेरे प्यारे! माता वसुन्धरा का वर्णन आ रहा था। हमारे यहाँ वैदिक साहित्य मं वसुन्धरा के नाना प्रकार के पर्यायवाची कहलाते हैं जैसे वसुन्धरा नाम माता का है, वसुन्धरा नाम इस पृथ्वी का भी है, वसुन्धरा प्रभु को भी कहा जाता है परन्ु वसुन्धरा नाम सूर्य की किरणों को भी कहा जाता है वसुन्धरा के और भी नाना प्रकार के पर्यायवाची शब्द हैं परन्तु वसुन्धरा का अभिप्राय केवल इतना है कि जहाँ हम वशीभूत रहते हैं जिसमें हम बसते हैं उसका नाम वसुन्धरा कहलाता है। मेरे प्यारे! माता के गर्भस्थल मं मानव का निर्माण होता है, निर्माण होता रहता है वह जो विश्वकर्मा है जो रचयिता है वह निर्माण करता है। मानव के शरीर मं 72 करोड़, 72 लाख, 10 हजार दो सौ दो (62, 62, 10, 202) नाड़ी हैं परन्तु उनका निर्माण कहाँ होता है कैसे अन्धकार कूप में होता है, बेटा! माता के गर्भस्थल में निर्माण वेत्ता निर्माण कर रहा है परन्तु भोली मां को कोई ज्ञान नहीं कौन निर्माण कर रहा हैं मेरे प्यारे! उसमें शिशु बस रहा है इसलिए उस माता को वसुन्धरा कहते हैं माता को इसलिए वसुन्धरा कहते हैं इसमें वह बस रहा है। शिशु का निर्माण और उमसें वास कर रहा है तो माता इसलिए वसुन्धरा कहलाती है। बेटा! माता के गर्भस्थल से मानव पृथक होता है तो इस पृथ्वी माता के गर्भस्थल में आ जाता है। तो यह पृथ्वी भी माता वसुन्धरा कहलाती है इसमें मानव वास कर रहा है उस रहा है ग्रहों का निर्माण कर रहा है, नाना प्रकार के खाद्य और खनिज पदार्थों को वह यह माता वसुन्धरा हमें प्रदान कर रही है। नाना प्रकार के पदार्थों को यह माता वसुन्धरा हमें प्रदान कर रही है। नाना प्रकार के पदार्थों को दे रही है खनिज पदार्थ इसी के गर्भ से उत्पन्न हो रहा है, जिससे मानव का सञ्चार होता है। मानव के जीवनल को आभाएँ उसी से प्राप्त होती रहती हैं। तो यह माता पृथ्वी! वेद मे इसको वसुन्धरा कहा है वेद का ऋषि कहता है यह पृथ्वी वसुन्धरा है। यह अपने में हमें बसाने वाली है नाना प्रकार के पदार्थ देती रहती है।

मुझे स्मरण आता रहता है, भारद्वाज मुनि के आश्रम में नान प्रकार के यन्त्रों का निर्माण होता रहा है और पृवि के ऊपर बहु मग्भीर अध्ययन होता रहा। राजा रावण का जितना भी वंशज था यह भारद्वाज मुनि के शिक्षालयों में अध्ययन करता रहा। और विज्ञान की

शिक्षाओं में महाराजा कुंभकरण तो उस समय पारायण थे। जब वह उड़ान उड़ते रहते थे तो उन्होंने पृथ्वी अणु अन्वेषण एक यन्त्र का निर्माण किया था, जो पृथ्वी के गर्भ के जितनी जितनी दूरी तक का खनिज थे उसका चित्र उस यन्त्र मं चित्रण होता रहा है कितनी दूरी पर स्वर्ण है, कितनी दूरी पर कौन सा खनिज है, इसको वह ज्ञानी जन अनुसन्धान करते रहे। तो बेटा! यह पृथ्वी मानव के लिए सर्वत्र आभा प्रदान करने वाली है और उसी में अपने को, अपने में ही इस संसार को बसा रही है। मुनिवरों! देखो, जैसे यह पृथ्वी है ऐसे ही प्रभु के राष्ट्र मं अनन्त पृथ्वियाँ हैं। अनन्त सूर्य हैं, यह वसु कहलाते हैं। इसमें प्राणी वास करता है। यह बसुन्धरा कहलाती है। वसुन्धरा जहाँ मुनिवरों! माता को कहा जाता है वहाँ वसुन्धरा इस पृथ्वी को भी कहा जाता है। मानव नाना प्रकार के साधन निर्माण करता रहता है। ग्रहों को निर्माण करता है वसुन्धरा के गर्भ स्थल में, और यह माता अपने में धारण कर लेती है, गमन कर रहा है अग्नि के भण्डार इस पृथ्वी में बेटा! पदार्थों को तपाते रहते हैं इसलिए माता का नाम वसुन्धरा कहलाता है। जहाँ पृथ्वी को वसुन्धरा कहते हैं वहाँ सूर्य की किरणों को भी वसुन्धरा कहते हैं। सूर्य की किरण आ रही हैं और पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार के खनिजों को धातुओं को तपायमान कर रही हैं। नाना प्रकार की किरणों आ रही हैं, पृथ्वी को तपा रही हैं।

एक समय मुझे स्नमरण आता है हिमालय की कन्दराओं में त्रेता के काल में बेटा! ब्रह्मचारी सुकेता ब्रह्मचारी कवन्धी ब्रह्मचारी रोहणिकेतु और मुनिवरों! महाराजा शोंभ्रकेतु और कुम्भकरण भी भारद्वाज के साहित्य का कुछ अनुसन्धान कर रहे थे। क्योंक विज्ञान की इस समय ऊँची उर्ध्वा में गति थी। तो मेरे प्यारे! अनुसन्धान हो रहा था सूर्य की किरणों को यन्त्रों में भरण कर रहे थे। और सूर्य की किरणों से उस समय वाहन अन्तरिक्ष में गति करते थे। सूर्य की किरणों को जान रहे थे कि कौन सी किरण है स्वर्ण का निर्माण करती है, कौन सी किरण है जो गो नाम के पशु के रीढ़ के भाग में जो करके सुवर्ण की मात्रा उसकी गो घृत में होती है। तो इसके ऊपर अनुसन्धान हो रहा था। अनुसन्धान कर रहे थे और यह विचार रहे थे कि इस सूर्य से कितनी पृथ्वियों

का सम्बन्ध है। तो भारद्वाज मुनि महाराज ने यह निर्णय किया था। महाराजा कुम्भकरण और सुकेता इत्यादियों ने कि सूर्य इतना विशाल ब्रह्माण्ड है, जैसे हमारी यह पृथ्वी है ऐसी ऐसी तीस लाख पृथ्वियाँ हैं जो सूर्यमण्डल में समाहित हो जाती है।

तो एक वेद का मन्त्र था बेटा! उसके ऊपर अनुसन्धान कर रहे थे और वह वेद का मन्त्र ब्रह्मचारी सुकेता और ब्रह्मचारी भारद्वाज इत्यादियों की सभा में यह निर्णय दे रहा है कि तीस लाख पृथ्वियाँ हैं जो सूर्यमण्डल में समाहित हो जाती हैं। बेटा! यह कैसा विशाल प्रभु का मण्डल है। कैसा यह सूर्य है जिसमें तीस लाख पृथिवयों समाहित जो जाती हैं। वह गति दे रहा है, पृथ्वियों का गतिशील बना रहा है। वहाँ पृथ्वी भी वसुन्धरा है और सूर्य की किरण भी वसुन्धरा कहलाती है, जो देखो, इस गो रत्नों की वृत्तियें में रमण करा रही थी। मेरे प्यारे! सूर्य की किरण भी वसुन्धरा कहलाती है, जहाँ यह वसुन्धरा कहलाती है, वहाँ मुनिवरों! देखो,! मेरा देव, मेरा प्यारा प्रभु भी, जहाँ प्रभु कहलाता है, वहाँ महत्ववान कहलाता है। वह वसुन्धरा कहलाती है। कौन? मेरा देव। जो इस संसार की आभा में रमण कर रहा है। मेरे प्यारे! वह कैसी माता वसुन्धरा है? मुनिवरों! देखो,! सर्वत्र ब्रह्माण्ड को अपने में पिरोए हुए है, इस ब्रह्माण्ड को अपने में बसा रहा है।

मेरे प्यारे! एक वेदमन्त्र आया। वेद का मन्त्र कहता है कि वह ब्रह्म है। वह जो ब्रह्म है उसमें यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड पिरोया हुआ है। ऐसा ही नहीं, मैंने तुम्हे कई बार वर्णन कराते हुए कहा था, वैसा यह सूर्य है जो तेरह लाख पृथ्वियों को गति दे रहा है। ऐसे ऐसे एक सहस्र सूर्य हैं जो इस बृहस्पति मण्डल में समाहित हो जाते हैं और जैसा बृहस्पति मण्डल है ऐसे ऐस एक सहस्र मण्डल ध्रवमण्डल में समाहित हो जाते हैं और जैसा ध्रुव मण्डल है ऐसे एसे एक सहस्र मण्डल रोहिणी में समाहित हो जाते हैं और जैसा यह आरोहिणी मण्डल है ऐसे ऐसे एक सहस्र आरोहिणी मण्डल पुष्य नक्षत्र मं समाहित जो जाते हैं। जैसा यह पुष्य नक्षत्र है ऐसे ऐस एक सहस्र पुष्य असंख्य लोकों में ओत प्रोत हो जाते हैं। यह कैसा मेरे प्यारे! प्रभु का ब्रह्माण्ड है, कैसी मेरी प्यारी माता वसुन्धरा है जिसके गर्भ मं ये नाना मण्डल समाहित हो रपहे हैं, उसी में ओत प्रोत हो

रहे हैं। वेद एक वाक् नहीं कहता। वेद इस संसार की ब्रह्माण्ड की गाथा गाता रहता है। मेरे परूरे देखो,! यह जितने भी मण्डल हैं यह एक निहारिका में समाहित हैं और वेद का ऋषि यह कहता है, वेद का मन्त्र श्रवण करता हुआ कि प्रभु के राष्ट में ऐसी ऐसी निहारिका अननत मानी गई हैं तो इसको मानव गणित नहीं कर सकता। एक आकाश गंगा है, उसको वेद एक निहारिका कहता है, साधारण प्राणी उसको आकाश गंगा कहता है, उस आकाश गंगा में ऐसे ऐसे नाना नक्षत्र कहलाते हैं। सौर मण्डल है, एक सौर मण्डल में, यदि अनेक सौर मण्डल की गणना करने लगे तो यह तुम्हें विचित्र प्रतीत होगा। तो इससे तुम्हें प्रतीत होगा कि एक सौर मण्डल कितने लोकों का बनता है अेर यदि हम सूर्यों की गणना करने लगे तो अनन्नता में प्रतीत होते हैं। शनि मण्डलों मं चले जाएँ। वह हो अनन्तता में दृष्टिपात आने लगेगा। तो ऐसे एसे और मडलों मं, एक आकाश गंगा में मुनिवरों! देखो, यहाँ ऐसा वेद का मन्त्र कहता है, आचार्य इस वेदमन्त्र की मांसाकार कहता है कि एक ही आकाश गंगा में, एक ही निहारिका में, इस प्रकार के अतन्त सौर मण्डल कहलाए गएउ हैं और इस प्रभु के राष्ट्र में ऐसी ऐसी आकाश गांगाएँ अनन्त हैं एक महाऋषि सोमकेतु हुए हैं बेटा! जो भारद्वाज वाष्णा थे। वो सोमकेतु भारद्वाज कहलाते थे। जो बेटा! सतोयुग के काल में हुए। 82 करोड़ वर्षों पूर्व सोमकेतु ऋषि हुए एउेसा उनका विचार कहता है कि उनकी विज्ञानशाला में, सोमकेतु ऋषि की विज्ञानशाला में लगभग 985 आकाश गंगाएँ उनके यन्त्रों में दृष्टिपात आती रहीं। और एक निहारिका में बेटा! मैंने एक सौ मण्डलों को वर्णित कराया है। विचार विनिमय क्या? मुनिवरों! देखो, वेद का मन्त्र जहाँ विज्ञान की भाषा कर रहा है, जहाँ प्रभु के गर्भ की चर्चा कर रहा है। यह सब निहारिका उस प्रभु के गर्भ में प्रवेश हो रही हैं। उसमें बस रही हैं, इसलिए हमारे यहाँ प्रभु को वसुन्धरा कहते हैं। हे मां! तू केसी वसुन्धरा है। तेरे ही गर्भस्थल में यह संसार बस रहा है, और हम आपकी आराधना कर रहे हैं तू महत्व को धारण करने वाली है। तू हम सब को धारण करती रहती है। मानव के मस्तिष्क में यह सब रचनाएँ ओर यह निहारिकाओं के सूक्ष्म तरंगें इस मानव के मस्तिष्क को स्पर्श करती रहती हैं। इसलिए मानव विवेक दृष्टि से बेटा!

देखो, मौन हो जाते हैं।

आचार्यजनों ने बहुत पुरातन काल में अनुसन्धान करते हुए, विचार विनिमय करते हुए, अनुसन्धान शालाओं में, विचार शालाओं में यौगिक शालाओं में शान्त होकर के माता वसुन्धरा के गर्भ में प्रवेश करके वह मौन हो गए। शान्त हो गए इस संसार के ऊपर ऊँची ऊँची उड़ान उड़ते रहते हैं। तो आज मैं बेटा! तुम्हें कहाँ ले गया। मैं माता वसुन्धरा के गर्भ का तुम्हें वर्णन कराने लगा हूँ। माता वसुन्धरा के गर्भ में बेटा! यह संसार वशीभूत रहता है। एक समय मेरे प्यारे! महानन्द जी ने वर्णन कराते हुए कहा था कि यह संसार इकाई में भ्रमण करता रहता है विज्ञान भी इकाई में ही रहता है परन्तु देखो, जब आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता, भौतिक विज्ञानवेत्ता माता वसुन्धरा के गर्भ में प्रवेश करते हैं। उसके ऊपर टिप्पणियाँ और विचार प्रारम्भ करने लगते हैं, तो बेटा! उनकी उड़ान बड़ी विचित्र बन जाती है। मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! नाना ऋषि वैज्ञानिक हुए, नाना ऋषि आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता हुए हैं। परन्तु यह जितना भी विज्ञान है, नाना तरंगवाद है, अनुवाद है, पमरमाणुवाद है जितना भी विज्ञान है यह सब उस माता के गर्भस्थल में ओत प्रोत होता रहता है। उसी में यह एक दूसरे को सहायक बनाता रहता है लोक लोकान्तर एक दूसरे के सहायक बने हुए हैं।

मुनिवरों! देखो, वह जो प्रभु है वह द्यौ कहलाता है। मानो द्यौ लोक से इन लाला मण्डलों को सहायता प्राप्त होती है। वो सहायता एक दूसरे को प्रकाशित करके मानव उससे प्रकाशित हो रहा है। माता उसमें प्रकाशित हो रही है। तो बेटा! उसी को लेकर के इस मानव को जीवन की आभाएँ प्राप्त होती रहती हैं। तो आओ मेरे प्यारे! आज तुम्हें मैं इस विशेष चर्चा देने नहीं आया। केवल परिचय देने चला आता हूँ। क्योंक वेद मन्त्रों का जो परिचय है वह बड़ा विशाल है। उस परिपचय को लेने के लिए हमें आध्यात्मिकवद में प्रवेश होना होता है। क्योंकि आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता मुनिवरों! देखो, मृत्यु से विजय चाहता है। आध्यात्मिकवेत्ता कहता है कि मेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिए। मैं मृत्युंजय बनना चाहता हूँ। भौतिक विज्ञानवेत्ता यह चाहता है कि जो परमात्मा का अणुवाद है, परमाणुवाद है, जो अग्नि का भण्डार है, अग्नि के भण्डर में जो जल समाहित

रहता है, पृथ्वी के कण समाहित रहते हैं, मैं उनको यन्त्रों में समावेश करके इस संसार को दिव्य, इस संसार को विजय करना चाहता हूँ। संसार को दिव्य विजयी दृष्टिपात करना चाहता हूँ। परुन्तु आध्यात्मिक विज्ञान वेत्ता यह कहता है कि मैं इस पृथ्वी को अपने नीचे दबा करके मैं प्रभु की गोद में जाना चाहता हूँ। जहाँ प्रभु की गोद में रात्री नहीं होती, प्रभु की गोद में जाने वाले के यहाँ मेरे प्यारे! विवेक होता है। वहाँ अन्धकार नहीं होता, आलस्य नहीं होता, प्रमाद नहीं होता, वहाँ सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता है और मेरे प्यारे! दरेखो प्रकाश जहाँ होता है वहाँ सदैघ्व मानव कृतियों में ब्रह्मज्ञान का गान गाता रहता है वहाँ सदैव जहाँ ज्ञान है, जहाँ प्रकाश है वहाँ मृत्यु नहीं होती और जहाँ मृत्यु नहीं होती वहाँ आनन्द की आभा में रमण करता रहता है प्राणी।

तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या? हमारे यहाँ विज्ञान वेत्ताओं ने दो प्रकार की उड़ान परम्परागतों से उड़ी हैं एक भौतिक विज्ञान है, एक आध्यात्मिक विज्ञान है। आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता प्रभु की गोद में जाना, आनन्द को प्राप्त करना चाहता है और भौतिक विज्ञान वेत्ता भी चही चाहता है कि मैं आनन्द को प्राप्त होऊँ। परन्तु वह आनन्द जब तक आत्मिक ज्ञान हनीं होता जब तक वह आन्नद प्रकृति से प्रात नहीं होता है तो पुनिवरो देखो, उसमें वह रत्त रहता है। इस परमाणु को जाना, और द्वितीय परमाणु उपस्थित हो जाता है, एक तरंगों का जाना, दूसरी तरंगें उपस्थित हो जाती हैं, ऐसा वेद का मन्त्र कहता है कि वेद की यदि हमें अग्नि की तरंगों के ऊपर अनुसंन्धान करते रहें तो अरबों खरबों इसमें से उत्पन्न होती रहती हैं। इसी प्रकार यदि मानव मुखरविन्दु से श्वास लेता है प्राणी, परन्ु इसके ऊपर अनुसन्धान करने लगें, तो प्रत्ये कश्वास के साथ में जिस मानव का श्वास है, वे परमाणु जो श्वास के साथ अन्तरिक्ष में गति कर रहे हैं, उसका चित्र अन्तरिक्ष में जा रहा है। जो विचारने से प्रतीत होता है कि मानव इन क्रिया कलापों को ही विचारता रहे। बेटा! मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में कहा था। विचार देते हुए बहुत कुछ कहा। हमारे यहाँ उद्दालक गोत्र एक मान् गोत्र रहा है। उद्दालक गोत्र में नाना ऋषि हुए हैं शुकान्तकेतु ऋषि हुए, श्वेताम्बरिणी केतु ऋषि हुए और भी नाना ऋषि हुए, परन्तु इनमें ब्रह्मवेत्ता भी थे, विज्ञानवेत्ता भी रहे हैं। आध्यात्मिकवादी भी रहे

हैं जो नाना प्रकार की आभाओं में रमण करते रहे हैं। तो बेटा! देखो, भारद्वाज, हमारे यहाँ उद्दालक गोत्र के ऋषि नाना प्रकार की उड़ान उड़ते रहे हैं। वह याग करते थे। एक समय भयंकर बन में जब याग कर रहे थे, उनकी पत्नी भी उनके संग थी शुकान्तकेतु। दोनों जब याग कर रहे थे तो मुनिवरों! देखो, श्वेत्ता श्वतर और शुकान्तकेतु याग करते हुए उमसें से परमाणुवाद जो उत्पन्न हो रहा था, तरंगें जो उत्पन्न हो रही थी, उनको एकत्रित करने लगे। धातु पिपाद बना बनाकर के वह यन्त्रों का निर्माण करते रहे हैं। तो बेटा! देखो, उन यन्त्रों में जो याग कर रहे थे उनके चित्र दृष्टिपात आने लगे। और अनुसन्धान किया तो अपने पूर्वजों के चित्र आने लगे। ओर भी उन्होंने अनुसन्धान किया जो मुनिवरों! दरेखो, उनके महापिता, पड़पिता पचासवें पिता के दर्शन होने लगे यन्त्रों में। तो बेटा! ऋषि ने ऐसा अनुसन्धान किया कि मुनिवरों! देखो, सौवें माहापिता के दर्शन होने लगे। चित्रों में चित्रण करते रहते थे। तो विचार क्या? मुनिवरों! देखो, यह तो विज्ञान की उड़ान है। विचार आता है कि यह जो अन्तरिक्ष है ये जो इसमें वायु गति कर रही है, यह प्रत्येक जो श्वास लेता है, मानव जो उच्चारण करता है, इन वाक्यों के साथ जो मानव का चित्र जाता है और वह अन्तरिपक्ष में चित्र गति करता रहता है, वह चित्र बेटा! यन्त्रों में चित्रित होते रहते हैं। तो इस प्रकार विज्ञान परम्परागतों से यह मानवीय मस्तिष्कों में रहा है और यह प्रभु जो माता बनर करके, वसुन्धरा बन करके इस ब्रह्माण्ड को अपने में बसा रही है, यह माता वसुन्धरा कहलाती है। जैसे माता के गर्भस्थल में हम जैसे शिशुओं का निर्माण होता है, निर्माण भीन वही कर रहा है। परन्तु देखो, उस आभा में रमण कर रहा है। माता वसुन्धरा पृथ्वी के गर्भ में जो धातु पिपाद वन रहा है। माता वसुन्धरा पृथ्वी के गर्भ में जो धातु पिपाद बन रहा है वह सूर्य की किरणों से बन रहा है। सूर्य की किरणों में जो तेज आ रहा है वह मानव देखो, द्यौ लोकों से आ रहा है द्यौ लोक का समन्वय इन नाना प्रकार के लोकों से रहता है। तो बेटा! यह प्रभु का जो तेज है, जिसे हम द्यौ कहते हैं। द्यौ से मुनिवरों! देखो, यह मानव यह द्यौमयी शब्द समाहित रहता है और द्यौ से ही मानव देखो, नाना प्रकार की तरंगें तरंगित होती रहती हैं। उससे यह ब्रह्माण्ड यह नाना प्रकार की निहारिका अपनी आभा

में गति करती रहती है।

बेटा! आज मैं तुम्हें विज्ञान के क्षेत्र में ले गया। मैं आज तुम्हें यहाँ ले जाना नहीं चाहता था। विचार क्या? मेरे प्यारे! देखो, माता वसुन्धरा का वर्णन आ रहा था। वह माता वसुन्धरा हमारा कल्याण करने वाली है। हमें उस माता पर अपने को न्यौछावर कर देना चाहिए औरप वह माता केसी वसुन्धरा है, जो अपने में हमें सबको बसा रही है लोक लोकान्तरों को प्राणी मात्र को अपने में बसा रही है और जहाँ जिसका ब्रतम् है उसको वैसा ही प्राप्त हो रहा है आज का विचार यह क्या कह रहा है कि इस संसार में जब प्राण के द्वारा श्वास में भी चित्र गति अन्तरिपक्ष में कर रहा है, जब क्रोध करते हो तो क्रोध का चित्र भी अन्तरिक्ष में गति कर रहा है वह वायु मण्डल को दूषित कर रहा है मेरे परे देखो, शान्त चित्त रहते हो एक दूसरे की सम्पत्ति में रहते हो, तो संसार एक आभा में रमण कर रहा है। मानव देखो, वहाँ अमृत को बरसा रहा है। जैसे चन्द्रमा सूर्य की किरणों को लेकर के इस संसार को अमृत देता है। इसी प्रकार बुद्धिमान, बुद्धिजीवी प्राणी अपनी विद्या के द्वारा इस संसार मं अमृत बहा रहा है। इसी प्रकार मेरे प्यार! जैसे यह अमृत बहाता रहता है अमृतमयी संसार बन रहा है, तो औरप वही चित्र अन्तरिक्ष में बेटा! गति करते रहते हैं। उसी से वायु मण्डल का निर्माण होता है वायु मण्डल भी उसी से निर्माणित होता है। उसी से ही देखो, इस प्रकृति के जो प्रकोप होते हैं इनका भी मूल कारण मानव की ध्वस्तता कहलाती है। मानव क्रोध नहीं करे, अप्रता नहीं करे एक दूसरे के रक्षार्थ अपने कार्य मं लगा रहे। तो बेटा! वायुमण्डल महान् बना रहेगा। जैसे मैंने बहुत पुरातन काल में कहा, ऋषि मुनि यही कहा करते थे कि जिस स्थल पर विद्यमान होते, ब्रह्मचारियों को सबसे प्रथम यह कहा करते थे हे बालक! हे ब्रह्मचारी! तेरी वाणी पवित्र होनी चाहिए, यह संसार एक प्रकारका विद्यालय है। बेटा! मैं यह चर्चा करूँगा कि संसार विद्यालय कैसे हैं? आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें देने नहीं आया हूँ। विचार क्या? मुनिवरों! देखो, य संसार विद्यालय भी है, यह संसार कल्पवृक्ष भी है, यह संसार विज्ञानशाला भी है यह संसार यज्ञशाला भी है, यह विचारषाला भी कहलाती है यहाँ बेटा! इस संसार को जिस प्रकार तुम विचाने लगोगे, सै ही तुम्हें

दृष्टिपात आने लगेगा। यह है आज का वाक्।

आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, इस संसार सागर से पार हो जाएँ। यह है बेटा! आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएँ तुम्हें कल प्रकट करूँगा। अब वेदों का पठन पाठन होगा। उसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त होगी। निवास स्थान सेठ मानसाराम जी, मोदी नगर, समय दोपहर एक बजे

२ 15 02 1982 पुष्प 47 महर्षि वशिष्ठ द्वारा विष्णु की व्याख्या

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठनल किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव जो विज्ञान वेत्ता है जो स्रोतमयी कहलाता है, उस महान8 देव का चित्रण होत रहता है। प्रत्येक वेदमन्त्र उसका चित्रण करता रहता है। क्योंकि हमारे यहाँ परमपिता परमात्मा को जहाँ भिन्न भिन्न नामों से उच्चारण किया जाता है वहाँ उस परमपिता परमात्मा को विपषु कहते हैं। क्योंक आज के हमारे वेद के पठन पाठन में विष्णु की बड़ी विचित्र महिमा का वर्णन आ रहा है। वह विष्णु हमारा पालन पोषण करने वाला है। क्योंकि वह सतोगुणी रहता है। सत्य में उसको सुभाषित किया गया है, क्योंकि यह सत्य ही उसका आभूषण है और सत्य में पिरोया हुआ यह जगत् है। क्योंकि जब इसके द्वार से सत् चला जाता है तो यह संसार नहीं रहता। इसी प्रकार परमपिता परमात्मा को विष्णु कहते हैं।

मेरी प्यारी माता जब बालक का पालन पोषण करती है तो उसके मन में, हृदय में कुछ उद्गार होते हैं औरप वह उन उद्गारों को वह पश्चने बाल्य के हृदय में प्रवेश कर देती है उन विचारों की प्रतिष्ठा हो जाती है। जैसे हमने इसके पूर्व काल में कहा था कि यह संसार एक दूसरे में प्रतिष्ठित हो रहा है, इसी प्रकार माता का जो उद्गार है वह बालक के हृदय में विचारें को प्रतिष्ठत कर देती है। कोई माता ऐसी नहीं है जो यह

चाहती है कि मेरा पुत्र मेरे अनुकूल न गति करने वाला हो। सदैव उसकी एक ही पिपासा होती है कि तेरे गर्भ में उत्पन्न होने वाला पुत्र महान और पवित्र होना चाहिए जिससे मेरा नामोकरण महान् और पवित्र बना रहे। प्रत्येक माता की इच्छा होती है। परन्तु हमारे यहाँ जो विष्णु शब्द है वह माता के हृदयग्राही कहलाता है और वह सतोगुणी अपने बालक का पालन कर रही है। मेरे प्यारे! सत्गुणी अपने बालक का पालन कर रही है। मोरे परूरे सत्मयी पालन करती हुई माता अपने में मग्न रहती है। मेरे पयरे सत्मयी पालन करती हुई माता अपने में मग्न रहती है और बालक को मग्न बनाती रहती है।

मेरे प्यारे! मुझे बहुत सा साहित्य स्मरण आता रहता है परन्तु साहित्य में हम जाना नहीं चाहते हैं विचार विनिमय क्या? हमारे वैदिक साहित्य में विष्णु के बहुत से पर्यायवाची शब्द आते हैं। क्योंकि विष्णु नाम जहाँ सतोगुण को कहते हैं वहाँ विष्णु नाम परमपिता परमात्मा का भी है। विष्णु नाम राजा का भी है, और विष्णु नाम आत्मा को भी कहा जाता है और विष्णु नाम सूर्य का भी है, और विष्णु बहुत सी औषधियों के नामों का उच्चारण भी होते रहते हैं। परन्तु विष्णु की मीमांसाएँ वैदिक साहित्य में बहुत ऊँचा त्रेता के काल में विष्णु की विवेचना होती रही है। परन्तु यहाँ विष्णु नाम परमपिता परमात्मा को माना है। जो संसार का पालन करने वाला है, इस संसार को नियमबद्ध क्रिया दे रहा है। क्रियाशील बना रहा है। परन्तु वह इस शासन को कर रहा है, मेरे प्यारे! कितना विचित्र उस प्रभु का शासन है। पृथ्वी गति कर ही है, पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा कर रही है। सूर्य बृहस्पति की परिक्रया कर रहा है। बृहस्पति ध्रुव की परिक्रमा कर रही है। सूर्य बृहस्पति की परिक्रमा कर रहा है। बृहस्पति ध्रुव की परिक्रया कर रहा है। आरुणि श्वाती नक्षत्रों की परिक्रमा कर रहे हैं। श्वाती और पुष्य नक्षत्र पुष्य नक्षत्रों की परिक्रमा कर रहे हैं। श्वाती और पुष्य नक्षत्र केतु मण्डल की परिक्रमा कर रहे हैं, सोमकेतु असंख्य लोकों की परिक्रमा कर रहे हैं। यह परिक्रमा वाद मेरे देव का केसा महान् कहलाया गया है। एक वाक् नहीं बेटा! नाना प्रकार की परिक्रमा हैं, मानव मानव की परिक्रमा कर रहा है। पुत्र माता की परिक्रमा कर रहा है, पितरों की परिक्रमा हो

रही है। राजा प्रजा की परिक्रमा कर रहा है और भक्त प्रभु की परिक्रमा कर रहा है। यह केसा विचित्र वाक् वेद कहता है? बेटा! सर्वत्र ब्रह्माण्ड में एक दूसरे की परिक्रमा ही दृष्टिपात आती है।

आज मैं परिक्रमा के सम्बन्ध में विचार नहीं दे रहा हूँ। यह परमपिता परमात्मा की उपासना है कि उस परमपिता परमात्मा ने केसा विचित्र यह विधान बनाया है कि यह एक दूसरे की परिक्रमा करने वाला जो जगत् है, लोक लोकान्तर हैं, परमाणुवाद है, तरंगवाद हैं, इसका पालन करने वाला, नियमबद्ध करने वाला, यह मेरा प्यारा प्रभु चैतन्य देव कहलाया जाता है, जिसको वेद सतोमयी विष्णु कहता है। यह विष्णु इस संसार का पालन कर रहा है। संसार में जितने भी जलचर हैं, नभचर हैं, परन्तु यह जितनी भी जंगम, स्थावर, अण्डाज और स्वेदज सृष्टि है, चाहे वह पृथ्वी मण्डल पर हों, चाहे वह मंगल मे हों, चाहे वह बृहस्पति में हों और भी चाहे नाना लोक लोकान्तरों में हों, उसका पालन करने वाला यह विष्णु है। मेरे प्यारे! वह विष्णु कहलाता है और पालन पोषण होने के नाते प्रभु का नाम विष्णु है। यहाँ मुनिवरों! विष्णु नाम जहाँ परमात्मा को कहा जाता है वहाँ इस आत्मा का नाम भी विष्णु है। परन्तु राजा का नाम भी विष्णु है। राजा प्रजा को नियम में चलाता है।

यही वेदमन्त्र भगवान मनु के स्मरण आया था। इसी वेदमन्त्र की मीमांसा भगवान मनु ने नौका में विद्यमान हो करके समुद्र के तट पर इस वेदमन्त्र के ऊपर बेटा! अध्ययन किया था और इसी वेदमन्त्र को लेकर उन्होंने राष्ट्रीयता का निर्माण किया। राष्ट्र का निर्माण क्यों होता है इस संसार में? राष्ट्र की आवपश्यकता क्यों होती है? क्योंकि इसमें प्राणीमात्र हैं। राजा बुद्धिमान नियम का पालन करने वाला और प्रजा की अनुशासन में लाता हुआ और कर्त्तव्यवाद में प्रजा को जाने वाले का नमा बेटा! राजा कहा जाता है। राजा कौन होता हैत्र जो प्रजा अपने कर्त्तव्य से विहीन हो गई, उसको नियमबद्ध करने वाले का नाम राजा है ओर यहाँ यह नियम वैदिक साहित्यों से प्राप्त होता है। जैसे परमपिता परमात्मा का नियमबद्ध यह ब्रह्माण्ड चल रहा है। सूर्य अपने समय पर उदय होता है, समय पर वह अपनी क्रिया को परिपवर्तित कर देता है। चन्द्रमा अमावस ले

करके पूर्णिमा तक पूर्ण होता है। द्विपदा, चतुष्पदा इसी प्रकार यह सूर्य की किरणों को लेता हुआ वह पूर्णत्व को प्राप्त होता है। पूर्णिमा के समय के पश्चात् वह एकपदा, द्विपदा वह अपनी कलाओं से पूर्ण होने लगता है और यह कलाओं से वंचित्त होता होता अमावस के रोज समाप्त हो जाता है।

यह मेरे प्यारे! प्रभु का नियम क्यों है? क्योंकि इसी से उन्होंने यह सम्वत्सर का निर्माण किया है। सूर्य की किरण और सूर्य पृथ्वी की आभा आयी, सूर्य पृथ्वी के द्वितीय छोर पर चला गया। जब पृथ्वी चली गई तो क्रियाबद्ध होता हुआ यह सम्वतसर बना गया। सूर्य की आभा में पृथ्वी गति करती हुई आभा में आ गई, सूर्य उदय हो गयाव, उसको दिवस कहते हैं। प्रायः उसको दिवस कहते हैं। उससे ही मानव अपनी आयु को गणित कर लेता है, उसी से माह और सम्वत्सर वर्षों का निर्माण होता है, जिसे हमारे यहाँ बारह सम्वत्सर कहे जाते हैं। मेरे प्यारे! इसी से अहोरात्र बनता है, इसी से सृष्टि का क्रम बनता है।

तो बेटा! मैं विशाल इसकी मीमांसा करने नहीं जा रहा हूँ। तुम्हें परिचय दे रहा हूँ, और वह परिचय क्या? मुनिवरों! यही वेदमन्त्र है जो सूर्य विष्णु बनकर के संवतों का निर्माण कर रहा है वर्षों का निर्माण हो रहा है। इसी को और गम्भीरता में लो, सूर्य अपनी कांति से तेजोमयी बना रहा है तो चन्द्रमा अपनी कांति से इसमें अमृत बहा रहा है। दोनों को आभा से दोनें की कांतियों से नाना प्रकार की वनस्पतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, नाना वनस्पतियाँ आ जाती हैं। सूर्य वनस्पति को शुष्क बना रहा है तो चन्द्रमा अमृत देकर के उसमें रस प्रदान कर रहा है। वाह रे मेरे देव! तेरा केसा अनुपम यह विधान बनाया हुआ है? मानव अन्त में मौन हो जाता है। माता के गर्भस्थल में हम जैसे शिशु होते हैं तो बेटा! वह बालक को तेजोमयी बना रहा है किरणों से परन्तु चन्द्रमा अपनी कांति से उसमें अमृत भर रहा है। अमृतमयी बना रहा है तो विचार विनिमय क्या? मेरे पुत्रों! यह तो भयंकर विशाल वन है। मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा देने नही आया हूँ। विचार क्या? यह विष्णु नाम राजा का है, जैसे परमपिता परमात्मा इस सृष्टि और संवतसर को नियमबद्ध कर रहा है। इसी प्रकार जाता अपनी प्रजा को कर्त्तव्यवादी

बनाने में लगा रहे। इसी वेदमन्त्र को लेकर के भगवान मनु ने राष्ट्र का निर्माण किया था।

मुनिवरों! सोमकेतु ऋषि माहाराज उनके समीप विद्यमान थे और प्रजा में कर्त्तव्यवाद आने लगा था। परपिता परमात्मा के नियमानुकूल वेदमन्त्र को लेकर के राजा का नाम विपष्णु है जो प्रजा को नियम में बनाने का कार्य करता है, स्वयं नियमबद्ध होकर के गति करता है जो राजा स्वपयं नियम बद्ध होता है, प्रजा उसकी नियमबद्ध हो जाती है। माता पिता जो नियमबद्ध होते हैं उनके बाल्य बालिका नियमबद्ध हो जाते हैं। माता पिता यदि चरित्रवान होते हैं तो बाल्य बालिका चरित्रवान बन जाते हैं। माता पिता वैज्ञानिक और दार्शनिक होते हैं तो बाल्य उनके आचरणों को, उनके विचरो को लेकर के वह भी दार्शनिक भाव को दर्शाने लगते है। मेरे पुत्रो! यह सर्वत्र विद्याएँ हमें दर्शनें से प्राप्त होती हैं, वेद मन्त्रों को चिन्तन करने से प्राप्त होती हैं। तो मुनिवरों! यहाँ राजा का नाम विष्णु है। मुझे त्रेता के काल की वार्त्ता स्मरण आती रहती है। भगवान् रमा महिर्श्र्ज वशिष्ठ मुनि महाराज के चरणों में विद्या अध्ययन करते रहते थे। जब विद्याध्ययन करते रहते थे तो वह एक समय महर्षि वशिष्ठ मुनि ने वेदों में से जहाँ ब्रह्म सूक्त है, इन्द्र सूक्त है, अग्नि सूक्त है वहाँ एक विष्णु सूक्त भी है, विपष्णु सूक्त का उन्होंने पठन पाठन कराया। तो भगवान् राम चिन्तन कर रहे थे और विशिष्ड मुनि महाराज के विद्यालय में एक त्रुटकेतुक ऋषि महाराज के पुत्र स्वनधनि वह स्वनधनि और राम दोनें उस विष्णु सूक्त पर चित्तन करने लगे। परन्तु ऋषि ब्रह्मचारी का अध्ययन करने की दिशा और भगवान् राम के चिन्तन करने की दिशा दोनों की भिन्न हो गयी। वह योग के ऊपर चिन्तन करने लगा विष्णु सूक्त को लेकर के और भगवान राम राष्ट्रीयता पर ले गएं उसी विष्णु सूक्त को। भगवान राम चिन्तन करने लगे कि विष्णु नाम के बहुत से पर्यायवाची आते हैं क्योंक विष्णु तो औषधियों को भी कहते हैं, और विष्णु आत्मा को भी कहते हैं। परन्तु यहाँ विष्णु नाम राजा का आ रहा है।

तो मेरे प्यारे! वह मध्यरात्रि में महर्षि वशिष्ठ मुनि के कक्ष में पहुँचे। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज गाढ़ निद्रा में तल्लीन थे। भगवान् राम ने विचारा कि गुरु को निद्रा से जागरुक

नहीं करना चाहिए। दर्शनों की भाषा में गाढ़ निद्रा में कोई तल्लीन हो, जो मानव प्रभु से शक्ति पा रहा हो, उसे जागरुक नहीं करना है। और जागरुक करना है इसीलिए अनिवार्य है कि मैं विष्णु की व्याख्या करना चाहता हूँ। अब क्या करूँ? तो भगवान् राम इस चिन्तन में लग गए। उन्होंने वेद की ध्वनि उच्चारण करना प्रारम्भ किया ऊँचे स्वरों से। अब मुनिवरों! देखो, जब भगवान् राम उच्च ध्वनि से विष्णुसूत्र का पठन पाठन करने लगे तो उनमें कुछ वाक् राम उच्च ध्वनि से विष्णुसूत्र का पठन पाठन करने लगे तो उनमें कुछ वाक् राम ने अपनी जानकारी में अशुद्ध उच्चारण किए। तो भगवान् रमा जब ध्वनि से वाक् उच्चारण कर रहे थे, तो वशिष्ठ मुनि महाराज जागरुक हो गए और वशिष्ठ ने कहा हे राम! तुम मध्यरात्रि में मेरे कक्ष में आकर इस ध्वनि से वेदगान गा रहे हो? यह मेरे कक्ष में आकर के इस ध्वनि से वेदगान गा रहे हो? यह मेरे विचार में नहीं आ रहा है तुम ध्वनि से क्यों गा रहे हो? भगवान् रमा ने कहा कि प्रभु आप जागरुक हो गए, यह मेरा सौभाग्य है। मैं अपने को धन्य स्व्ीकार करता हूँ कि आपने मुझे सायंकाल को विष्णु सूक्त का पठन पाठन कराया। परन्तु मुझे विष्णु की विवेचना कर दीजिए कि विष्णु कहते किसे हैं? मेरे प्यारे! महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले हे राम! विष्णु को तुम किस दशा में जानना चाहते हो? उन्होंने कहा कि महाराज! ब्रह्मचारी की दशा तो योग के ऊपर चली गई और मेरी दशा राष्ट्र के ऊपर चली गयी। मैं यह जानना चाहता हूँ कि राजा विष्णु कौन होता है? कैसे होता है? मेरे प्यारे! वशिष्ठ बोले, हे राम! विष्णु नाम राजा का है। तुम्हें यह जानकारी हो गयी। राम ने कहा, हे भगवन्! इसके ऊपर मैंने चिन्तन किया। विष्णु के बहुत से पर्यायवाची शब्द आए हैं परन्तु मेरे सोचने का जो माध्यम रहा है वह राष्ट्र के ऊपर रहा है। महर्षि वशिष्ठ बोले, हे राम! विष्णु नाम जहाँ परमात्मा है, जहाँ वायु है, जहाँ सूर्य है, जहाँ योगी विष्णु को आत्मा कहते हैं, वहाँ राजा भी विष्णु है। परन्तु उस राजा का नाम विष्णु है जिस विष्णु के चार भुज होते हैं। चार भुजों वाला विष्णु कहलाता है और वह राजा कहलाता है। भगवान् राम बोले कि प्रभु! यह कैसे? राम! जिस समय राजा अपने राष्ट्र में नियमावली का निर्माण करता है बुद्धिमानों की सहायता लेकर के, तो उस समय वह चार नियम बनाता है राष्ट्र के

उत्थान के लिए औरप चार नियम कौन से हैं? सबसे प्रथम भुज में उसके एक पदम होता है, और द्वितीय भुज में गदा होता है और तृतीय भुज में चक्र होता है, चतुर्थ में एक शंख होता है। यह राजा के चार नियम होते हैं। जो इस समाज को ऊँचा बनाता है। सबसे प्रथम राजा के एक भुज में एक नियम में पद्म होता है। हे राजन्! हे राम! पद्म कहते हैं चरित्र को। राजा के राष्ट्र में एक नियम है चरित्र। चरित्र किसे कहते हैं? चरित्र कहते हैं जो आत्मा के विपरीत मानव कर्म न करने वाला हो और आत्म के अनुकूल जो मानव कर्म करता है वह मानव चरित्रवान रहता है। कितनी विचित्र व्याख्या की है ऋषि ने, सूक्ष्म में की है, विस्तार में नहीं की। रमा उसको जान गए और द्वितीय भुज में गदा होती है। राजा के रष्ट्र में क्षत्रीय हों, बलिष्ठ हों, परन्तु चरित्रवान की रक्षा करने वाले और अचरित्रवान को दण्डित करने वोल हों, उसका नाम गदा है। यह गदावली नियम कहलाता है, और तृतीय भुज में चक्र होता है, चक्र नाम अपनी जो संस्कृति है, अपना जो आत्मीय विचार है, नियम है, वह सर्वत्र राष्ट्र नियम का पालन करने वाले हों राजाओं के यहाँ उसी प्रकार का चलन हों, नियमावली हों, तो वह राजा के राष्ट्र का एक चक्र होता है। चक्र कहते हैं संस्कृति और शंख कहते हैं ध्वनि को। जिस राजा के राष्ट्र में ध्वनि होती हो, वैदिक ध्वनि होती हो, जटापाठ, धन पाठ मालापाठ, उदात्त अनुदात्त नाना प्रकार के वेदों के पठन पाठन करने वाले विवेकी पंडित गृहस्थों से समाज में उसका प्रसार और विवेकता से विवेकी पुरुष राजा के राष्ट्र में हो, तो प्रजा महान् वन जाती है। वहाँ शंख ध्वनि होनी चाहिए। ध्वनि नमा है नाद का। नाद कहते हैं कि बुद्धिमानी, विवेकी पुरुष विवेक से राष्ट्र का निर्वाह करने वाला हो। मेरे प्यारे! पांडित्य हो। विज्ञान हो और वह दान से हो रहा है परमाणु वाद में भी पांडित्य एक नाद है, शंख ध्वनि कहते हैं नाद को और वेद नाम है प्रकाश का और प्रकाश में बेटा! जब विद्या का प्रकाश हो जाता है, तो राजा के राष्ट्र में सब कर्त्तव्य का पालन करते हैं और जब तक ज्ञान नहीं होता, ज्ञान के पीछे विवेक नहीं होता, उसमें स्वार्थपरता आ जाती है, जो समाज में कुरीतियाँ आ जाती हैं, समाज रक्तमयी कांति वाला वन

जाता है।

तो मेरे प्यारे! मैं विशेषता तुम्हें देने नहीं आया हूँ, केवल यह परिचय देने के लिए आया हूँ कि भगवन्! राम ने महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज से यह जानकारी की कि मैं विष्णु को जानने वाला बनूं। जब यह व्याख्या हो रही थी इतने में ब्रह्मचारी भी जा पहुँचे। उन्होंने कहा प्रभु! आपने दोनों को सायंकाल ब्रह्मसूक्त, विष्णु सूक्त का वर्णन कराया और मैं यह जानता हूँ कि भगवान् राम की दशा राष्ट्रीयता में में चली गई और मेरी दशा योग में चली गयी। आत्मा को विष्णु क्यों कहते हैं? मेरे प्यारे! वशिष्ठ बोले कि मैं पहले विष्णु का वर्णन करूँ। तो हे राम! यदि तुम राजा बनोगे तो तुम्हें विष्णु बनना होगा और विष्णु बनकर के इस राष्ट्र का उत्थान करना होगा। मेरे प्यारे! यह वाक् राम ने स्वीकार कर लिए और राम ने क्योंकि दशरथ के पश्चात् अयोध्या में राजा बनना था, दशरथ के जो क्रिया कलाप थे वह प्रायः गम्भीर राष्ट्रीयता में नहीं रहे थे। उसमें अशुद्धियाँ आ गई थी क्योंकि तीन संस्कारों का करना ही राजा के लिए अशुद्धि थी। इसे वशिष्ठ भी जानते थे। उन्हें वर्णन भी कराया। परन्तु मैं इस विवेचना में नहीं जाना चाहूँगा, समय आयेगा तो उच्चारण करूँगा। क्योंकि मुझे स्मरण आता रहता है वशिष्ठ मुनि महाराज जहाँ ब्रह्मवेत्ता थे वहाँ राष्ट्रीयता को भी जानते थे। जहाँ राष्ट्र को जानते थे वहाँ वह पुरोहित भी बने हुए थे और ब्रह्म वेत्ता भी थे। सर्वत्र उपाधियाँ उनके द्वारा थीं तो मेरे प्यारे! राम से उच्चारण कर रहे थे, हे राम! तुम्हें अपने में महान् बनाता है। भगवान राम ने बेटा! वहीं किया। तुम्हें स्मरण होगा, श्रवण किया होगा, रावण आततायी बन गया था। राम ने अपने चक्र को लेकर के अपनी संस्कृति का प्रसार किया। मैंने तुम्हें उच्चारण किया था कि रावण के राष्ट्र में न सूर्य अस्त होता था न उदय होता था। विज्ञान बहुत महान् था परन्तु जिस राजा के राष्ट्र में कुम्भकरण जैसे वैज्ञानिक हों, जो छह छः माह तक निद्रा भी नहीं लेते थे जो एक एक वर्ष तक पत्रों का पान करके विज्ञान की दशा जानने वाले बनें। जिनका शुद्ध पवित्र आहार हो, महर्षि भारद्वाज की विज्ञानशाला में एक समय बारह वर्ष तक महाराज कुम्भकरण ने पीपल और बड़ का पंचांग पान पान किया। परन्तु इतना शुद्ध पवित्र उनका आहार था। वह विज्ञान मं रत्त रहते थे। इस

प्रकार का विज्ञान जिस राजा के राष्ट्र में हो, भगवान राम ने अपनी कला कौशलता से रावण के राष्ट्र को विजय किया और मुनिवरों! सर्वत्र पातालपुरी के राष्ट्र को विजय किया। अपनी संस्कृति का प्रसार किया। तो यह विष्णु राजा होता है जिसके चार भुज होते हैं अथवा चार नियमावली होती हैं। राजा के राष्ट्र में अनेक नियमाबली नहीं होतीं, केवल चार होती हैं। चरित्र में संसार राष्ट्र का व्यवहार आ जाता है चक्र में जितनी भी राष्ट्रीय व्यवस्था है नियम में दंडित करने की प्रथा आ जाती है और संस्कृति में राजा को विजय करते हुए और अपनी महानता की वीरता उसमें प्रदान करने तक सब निश्चित आ जाते हैं, प्रसारण करने तक और ध्वनि में विज्ञान से लेकर के व्यवहार के और आध्यात्मिकवाद की सब विद्या वेद ध्वनि चली जाती है तो बाह्य जगत् उस विद्या का अध्ययन करने लगता है। उसी विद्या, उसी वेद प्रकार को ज्ञान को हम बाह्य जगत् से आंतरिक जगत् में ले जाते हैं। तो योग में चले जाते हैं। उसी वेद ध्वनि को हम परमाणुवाद में अपनी वाणी के ऊपर जो ध्वनि आ रही है, ध्वनि में जो परमाणुवाद गति कर रहा है। उसके ऊपर हम क्रियात्मक मन्त्रों का निर्माण करते हैं। तो वह विज्ञान बन जाता है। तो मेरे प्यारे! यह सब कहाँ से प्राप्त होता है। यह चार नियम राजा के राष्ट्र में हों। जिससे विवेक और महानता बनी रहे, समाज ऊँचा बना रहे। मेरे पुत्रों! यह महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने विष्णु सूक्त का वर्णन करते हुए और विष्णु सूक्त की एक ही धारा वर्णन की। मेरे प्यारे! यह वाक् महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने प्रकट किया और वशिष्ठ मौन हो गए। राम ने इन चारों वाक्यों को स्वीकार कर लिया और उन्होंने कहा, धन्य हे प्रभु!

तो मेरे प्यारे! विद्यालयों में ब्रह्मचारियों को इन्द्रियों के ज्ञान और विज्ञान से लेकर के और राष्ट्र के निर्माण तक की चर्चाएँ आचार्यजन उनके हृदय में प्रवेश कराते रहते थे। माता जहाँ अपने बालक को चरित्र का उपदेश दे देती हैं उस चरित्रवान बालक की आभा को आचार्य नष्ट नहीं कर सकता और जो आचार्य ब्रह्मचारी को संसार का ज्ञान और विज्ञान करा देता है उसको समाज या उसको मित्र समाज उसको समाप्त नहीं कर सकते। तो आचार्य इसमें महान् होते हैं, इस बाल्य की एक माता होती है और एक

आचार्य होता है। माता तो जिसे गर्भस्थल से पांच वर्ष्ज्ञ तक जो निर्माण कर देती है, विष्णु बना देती है, ब्रह्म बना देती है, मेरे प्यारे! आचार्य नहीं बना सकता। परन्तु यहाँ संसार में इस शरीर के नाना विद्यालय कहलाए जाते हैं। सबसे महान् विद्यालय माता की लोरियाँ कहलाती हैं। मेरे प्यारे! जो माता ब्रह्मलीन होकर के, ब्रह्म का चिन्तन करती हुई माता अपनी लोरियों का पान करा देती है। व्याख्या करा देती है, परन्तु देखो, वह बालक महान् और पवित्र बन जाता है। आचार्य के चरणों में जो ब्रह्मचारी इस विद्या को, जो माता ने अंकुर रूप से विद्याध्ययन करके उसको उपार्जन करता हुआ उसको विकसित बना देता है, उसको निश्चित उपदेश दे देता है, ऐसा उसे कहीं प्राप्त नहीं हो सकता। जागरूक अंकुरों को जागरूक कराने वाला आचार्य होता है।

परन्तु आचार्य केसा हो? आचार्य इन्द्रियों के ऊपर अनुशासन करने वाला होना चाहिए और यदि आचार्य अनुशासन वेत्ता नहीं हैं प्रवृत्ति बिखरी हुई है, द्वेषारोप है तो वह ब्रह्मचारियों का कदापि भी निर्माण नहीं कर सकता, यह है बेटा! आज का वाक्। समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त। भव वेदों का पठन पाठन होगा। निवास स्थान श्री सेठ मनसा राम जी मोदी नगर समय दोपहर एक बजे

३ 02 03 1982 पुष्प 46 त्रिगुणात्मक सृष्टि सत्यमय से

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव मानो जो पालन करने वाला है, जिसे हमारे यहाँ विष्णु कहा जाता है, उस विष्णु का हम गुणवादन कर रहे थे और वेदमन्त्र यह कह रहा था कि वे परमपिता परमात्मा विष्णु है और विष्णु कहते हैं पालन करने वाले को। क्योंकि वह सतो में रहने वाला है। क्योंकि जितना भी मानव के हृदय में सात्विकवाद होता है। उतना ही वह संसार में अपने जीवन को महान् बनाता रहता है। क्योंकि जितना भी लालन पालन होता है वह सतोगुण में होता है। मेरी प्यारी माता जब अपने पुत्र का पालन करती है तो उसके हृदय में सतोगुण

की प्रधानता होती है और सतोगुण की प्रधानता के कारण बालक का वह पालन करती है, उसे लोरियों का पान कराती है, तो उसके हृदय में एक सात्विकता होती है। जो जितना भी लालन पालन है वह सर्वत्र विष्णु कहलाता है। विष्णु सत्य है और उसकी धारा जो शासनवाद है मेरी प्यारी माता जहाँ पालन कर रही है वहाँ पर मेरी प्यारी माता मानो वह शासन भी कर रही है। मानव भी शासन कर रहा है, अपनी प्रवृत्तियों पर भी शासन कर रहा है। माता भी शासन कर रही है और अपने पुत्र को शासनयुक्त बनाती हुई अपने में मानो मग्नम्, अपने में आनन्दित होती रहती है। इसी प्रकार यह जो संसार है, इस संसार है मानो इस संसार के तीन स्तम्भ माने गए हैं जैसे हमारे यहाँ विष्णु हैं, शिव हैं, और ब्रह्मा हैं। तो शिव कहते हैं। शासन करने वाले को और ब्रह्मा कहते हैं उत्पत्तिवाद को।

मेरे प्यारे! यह तीन गुण कहलाते हैं जिनको रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण कहा जाता है। यह उनके नामोकरण में रहते हैं। परन्तु इसी प्रकार प्रभु! के भी तीनों नामोकरण कहलाए जाते हैं। विष्णु परमात्मा को कहते हैं, वह पालन कर रहा है संसार का। रजोगुण शिव को कहते हैं। क्योंकि परमात्मा का नाम भी शिव है। वह शासन में इस संसार को कड़ी में कटिबद्ध करने वाला है। शासन कर रहा है और तमोगुण में इस संसार की उत्पत्ति कर रहा है। तो इसी प्रकार इन तीनों गुणों का गुण वादन हो रहा है। मेरे प्यारे! जब वैज्ञानिकों ने पृथ्वी के गर्भ में वास किया और उसके गर्भ में आभा को प्रगट करने लगे तो मानो उसमें गति दृष्टिपात आने लगी और वह जो गतियाँ हो रही थीं उन गतियों को अपने में धारण करने वाला एक महान् ओजस्व कहलाता है। बेटा! इसी विचार को, वेदमन्त्र को ले करके मेरे प्यारे! देखो, त्रेता के काल में महर्षि भारद्वाज और सुमेतकेतु मेरे प्यारे! परस्पर विचार विनिमय करते रहते थे। मेरे पुत्रो! जब वह कुम्भकरण और भारद्वाज की चर्चा होने लगी तो मुनिवरों! वह परस्पर विचार देते रहते थे। जब वेदमन्त्र में तीनों गुणों का वर्णन आया, परमात्मा के वाची शब्दों की विवेचना आने लगी तो मुनिवरों! ऋषि ने कहा, हे वैज्ञानिक तथ्यों के जानने वालो! यह वेद का मन्त्र यह कहता है कि यह जो संसार है यह तीन गुणों में व्याप

रहा है। तो मुनिवरों! देखो, महाराजा कुम्भकरण ने कहा, महाराज! यह तो मैंने जान लिया कि तीनों गुण हैं। परन्तु इन तीनों गुणों का विज्ञान से क्या सम्बन्ध रहता है? मेरे प्यारे! महर्षि भारद्वाज मुनि ने कहा, हे पुलस्त्य गोत्रों में जन्म लेने वालो! यह तो स्पष्ट हो रहा है कि तीनों गुणों में ही सर्वत्र विज्ञान गति करता रहता है। जहाँ पाँच इस प्रकृति की गति मानी जाती हैं वहाँ तीन गुण भी उसमें विद्यमान रहते हैं तीनों ही गुणों में वह व्यक्त रहने वाला विज्ञान मयी धाराओं का रमण करता रहता है। मेरे प्यारे! महाराजा कुम्भकरण ने कहा, मैं यह जानना चाहता हूँ कि सतोगुण क्या है? उन्होंने कहा, सतोगुण पालन है, मानो जैसे परमपिता परमात्मा सतो में रमण करता हुआ इस संसार का पालन कर रहा है। चाहे वह प्राणी पृथ्वी मण्डल का हो, चाहे वह मंगल में गति करने वाला हो चाहे वह बुद्ध में रहने वाला हो, परन्तु सूर्य मण्डल के प्राणियों का किसी भी आभा में, चाहे वह परमाणुवाद शब्दों के रूप में परमाणु गति करने वाला हो, परन्तु वह परमाणुओं का सर्वत्र का एक पालन स्वरूप बना हुआ है। वह ब्रह्म का वह आयतन है। , आयतन कहते हैं कि ब्रह्म का वह गृह है। और ब्रह्म के गृह में मानो देखो, वह वास कर रहा है। वह विष्णु बनकर के वास कर रहा है। इसी प्रकार जितना भी लालन पालन है वह माता के हृदय में रहता है। मानव के हृदयों में गति करने वाला है, तो उसे वेद कहता है विष्णु।

इसी प्रकार जितना भी संसार का शासनवाद है, हे कुम्भकरण! जितना भी शासन हम तुम कर रहे हैं, एक आचार्य हैं, विद्यालय में शिक्षा दे रहा है, परन्तु उसके हृदय से उद्गार उत्पन्न हो रहे हैं। मानो निगली हुई विद्या का वह ब्रह्मचारियों के समीप वमन कर रहा है और ब्रह्मचारी उसको ग्रहण कर रहा है। परन्तु वह शिक्षा दे रहा है, वह उसका सतोगुण है। मानो सत्य के ऊपर उसका विशुद्ध उच्चारण नहीं होता तो उसको दण्डित करता है उसको अनुशासन में लाने के लिए, वह उसका रजोगुण कहलाता है। मानो वह सत्य को धारण कराने के लिए ही सत्य का पालन कराने के लिए ही, मानो सत्य के सूत्र में रजोगुण विद्यमान रहता है। मेरे प्यारे! वह उसमें सतोगुण के ही सूत्र में रहता है। इसी प्रकार माता पिता अपने में यह चाहते हैं, माता कहती हैं। कि मैं पुत्र

याग करना चाहती हूँ, पिता कहता है मैं पुत्र याग करना चाहता हूँ। तो मुनिवरों! देखो, वह उस तमोगुण के गर्भ में मानो देखो, उत्पति की आभा विद्यमान रहती है। मेरे प्यारे! वह संकल्प है और वह संकल्प सतो में नहीं, मानो रजो में रहता है। रजो में नहीं, वह तमो में भी रहता है।

तो मेरे पुत्रो! वह जो रजोगुण, तमोगुण की आभा रमण कर रही है वह भी मुनिवरों! देखो, सत्य के गर्भ में विद्यमान है, वह भी सत्य के गर्भ में है, क्योंकि माता का हृदय माता का पुत्र है, पिता का हृदय पिता की पुत्री है। वह मेरे प्यारे! देखो, वह सब सतो से सुगठित रहते हैं मेरे प्यारे! इस प्रभु! ने इस संसार को कैसे सूत्र में पिरोया है? कैसा सूत्र बेटा! जिसमें रजोगुण, तमोगुण समाहित रहतें है। मुझे स्मरण आता रहता है, इसी वाक् को ले करके महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ रावण का जितना भी वंशलज था वह विज्ञान में रत्त रहता था और विज्ञानवेत्ता महाराजा कुम्भकरण और ब्रह्मचारी सुकेता इन्हीं उपदेशों को ले करके वह पृथ्वी के गर्भ में पहुँच गए, वह पृथ्वी के गर्भ में बेटा! जहाँ खनिजों का निर्माण हो रहा था। और वह निर्माण कौन कर रहा था बेटा! सत्य में जो ज्योति आ रही थी उस ज्योति के सन्निधान मात्र से ही मेरे प्यारे! उसके भिन्न भिन्न प्रकार के स्वरूप बन गए। मानो देखो, वहाँ स्वर्ण का निर्माण भी हो रहा है, वहाँ मुनिवरों! देखो, रत्नों का निर्माण भी हो रहा है। उसी पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार की धातुओं का चयन हो रहा है। मेरे पुत्रों! देखो, जल को मानो शोधित किया जा रहा है। वह जल को शक्तिशाली बना करके वाहन उस मानो देखो, उस जल से गति करते हैं तो परिणाम क्या? मानो देखो, पृथ्वी के गर्भस्थल में सूर्य द्यौ से प्रकाश लेता है और वह प्रकाश नाना रूपों को ले करके पृथ्वी से उसका सन्निधान होता है। उसके सन्निधान मात्र से ही उन नाना किरणों के रजोगुणी, तमोगुणी और सतोगुणी रूप बन करके इस पृथ्वी के गर्भ में बेटा! नाना प्रकार की धातुओं के पिपाद बन रहे हैं। मानो निर्माण हो रहा है और वह निर्माण हो करके मेरे पुत्रों! देखो, आभा ब्रहे विश्वा गृहं ब्रहे वर्णा मेरे प्यारे! वह विज्ञान का और राष्ट्र की मौलिक सम्पत्ति को उत्पन्न किया जाता है। तो परिणाम क्या? मुनिवरों! एक एक किरणों के भिन्न भिन्न प्रकार के स्वरूप माने गए हैं।

तो नाना प्रकार की किरणों के स्वरूपो में एक महान् विज्ञान निहित रहता है।

तो मेरे प्यारे! देखो, महाराजा कुम्भकरण ने कहा कि प्रभु! उन किरणों को हम यन्त्रों में कैसे ला सकते हैं। तो मुनिवरों! महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ इतनी इस प्रकार की विज्ञानशालाएँ थीं क्या जिन विज्ञानशालाओं में उन किरणों का निरोध किया जाता था। वह किरणें मुनिवरों! देखो, जल को पृथ्वी के गर्भ में शक्तिशाली बना करके उसके रूप का परिवर्तन कर रही थी और राष्ट्र के वैज्ञानिक जन पृथ्वी के गर्भ से इस जल को ले करके उसका शोधन करके मानो वाहनो कार्य रूप देते थे परन्तु भारद्वाज के यहाँ एक ऐसी विज्ञानशाला थी जहाँ सूर्य की किरणों को यन्त्रों में लिया जा रहा था और उन सूर्य की किरणों से मुनिवरों! देखो, वाहन गति करते थे। मानो देखो, गति करते रहें हैं तो आज मैं विज्ञान के स्वरूप में तो तुम्हें नहीं ले जा रहा हूँ परन्तु राजा रावण के यहाँ सम्भविता मनोवश्चतं देवा हिरण्यं रथा मेरे प्यारे! राजा रावण के यहाँ इस प्रकार के वाहन गति करते थे जो सूर्य की किरणों से मेरे प्यारे! देखो, कहीं कोई यन्त्र सूर्य की परिक्रमा कर रहा है। कोई मंगल की परिक्रमा कर रहा है, कोई चन्द्रमा की परिक्रमा कर रहा है, मानो देखो, कोई शनि की परिक्रमा कर रहा है। मुनिवरों! देखो, उन्हे सूर्य से प्रकाश मानो देखो, किरणों से यन्त्रों में गति रहती है।

तो परिणाम मेरे प्यारे! यह कि हमारे यहाँ भारद्वाज मुनि महाराज ने महाराजा कुम्भकरण इत्यादियों को नाना प्रकार की आभाएँ वर्णित कराईं। वह विज्ञान उस काल में महानत्ता में गति करता रहा है। आज मैं तुम्हें त्रेता के काल में तुम्हें उस विज्ञान की चर्चा कर रहा हूँ जिन विज्ञानवेत्ताओं ने मेरे प्यारे! देखो, विज्ञान में जाने के पश्चात् मानवीयतव अपनी आभा में गति करता रहा है। तो मुनिवरों! विचार क्या? राजा रावण और मुनिवरों! देखो, भारद्वाज मुनि की चर्चाएँ भी होती रही हैं। एक समय भारद्वाज मुनि महाराज से यह कहा कि यह विज्ञान इस प्रकार का विज्ञान जब वैदिक साहित्य में विद्यमान है, तो हमारे राष्ट्र में इस वैदिकता का अध्ययन होना चाहिए। मेरे प्यारे! भारद्वाज ने कहा, तुम्हारे यहाँ होता रहता है, विद्यालयों में होता रहता है, विश्वविद्यालयों में होता रहता है। तुम्हारे यहाँ नित्य प्रति याग का चयन होता रहता है, याग होता रहता है। मानो

देखो, वह याग कहलाया जाता है जिस याग में सुगन्धि से तुम वायुमण्डल को पवित्र बनाते हो यह जो वायुमण्डल है, इस वायुमण्डल में परमाणु गति कर रहा है, शब्दों के साथ गति कर रहा है। आभा में रहने वाला यह विज्ञान है। परन्तु देखो, इस विज्ञान, इस परमाणुवाद को और साकल्य अग्नि की धाराओं पर विद्यमान करके वह अन्तरिक्ष में गति कर रहा है। तो मेरे पुत्रों! जब उन्होंने ऐसा वर्णन कराया तो राजा रावण मौन हो गएं परन्तु प्रातःकालीन उनके यहाँ याग होता रहता था। महारानी मन्दोदरी नाना प्रकार के प्रश्न करती रहती थी। वैद्यराज के सम्बन्ध में क्योंकि भिन्न भिन्न प्रकार की दिशाएँ होती हैं विज्ञान की। राष्ट्र में भिन्न भिन्न प्रकार के वैज्ञानिक होने चाहिए जैसे आयुर्वेद को जानने वाले आयु को ऊँचा बनाने वाले हों।

मेरे पुत्रो! ऐसी औषध हमारे यहाँ राजा रावण के काल में जहाँ मुनिवरों! देखो, वनस्पति विज्ञान ऊँचे शिखर पर रहा है वहाँ मुनिवरों! देखो, प्राण चिकित्सा भी रही है। हमारे यहाँ जो प्राण चिकित्सा है वह सबसे ऊर्ध्वा में रही है। महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ एक सुकामकेतु ऋषि महाराज रहते थे सुकामकेतु ऋषि महाराज वह प्राण चिकित्सा जानते थे। वह प्राण के विज्ञान को भी जानते थे। किस प्राण से कैसे रुग्णों को समाप्त किया जा सकता है। तो मुनिवरों! तो मुनिवरों! देखो, प्राण के ऊपर वह निरोध, नाना प्रकार की धाराएँ, मुनिवरों! देखो, इस प्राण में से उत्पन्न होती रहती हैं जिसके ऊपर मानव जैसे शीतली प्राणायाम होता है, जैसे उद्गीताम् प्राण होता है। वह प्राणायाम किया जाता है। मुनिवरों! देखो, मानव के शरीर में अग्नि प्रदीप्त हो गई है। अग्नि को शान्त करने के लिए शीतल प्राण चिकित्सा होती है। शीतलता आ गई है तो सूर्य प्राणायाम से मानो देखो, उसमें अग्नि प्रदीप्त की जाती है। मेरे पुत्रों! यदि अग्नि और शीतलता का दोनों का समन्वय हो गया है तो उस काल में देखो, चन्द्र प्राणायाम किया जाता है, उससे मानो देखो, रुग्णों को शान्त किया जाता है।

मैं इस सम्बन्ध में चर्चा देने नहीं आया हूँ। यह तो धाराएँ हैं। परन्तु विचार विनिमय क्या है? क्या मुनिवरों! देखो, विज्ञान के प्राण के रूपों से नाना प्रकार के भेदन माने गए हैं। तो विचार यह देना है, भारद्वाज मुनि ने यह कहा था कि संसार में जितना भी सतोगुण

है। वह सतोगुण के सूत्र में मानो देखो, कटिबद्ध होने वाला यह त्रि संसार कहलाता है। तीन स्तम्भ इस ब्रह्माण्ड के, इस मानवीय जगत् के माने गए हैं। इन तीनों प्रकार की आभाओं को लेकर के मानव अपने को विचित्र बनाता है और विज्ञान वैज्ञानिक बनाता है, महान् बना देता है। तो मेरे पुत्रो! विचार क्या कि हम वैज्ञानिक बनें। हम अपने में महानत्ता को प्राप्त होते रहें। तो मेरे प्यारे! विचार क्या कि सतोगुण में विष्णु है, रजोगुण में शिव है और तमोगुण में ब्रह्म माना गया है। यह वाची शब्द कहलाते हैं। परन्तु देखो, इन तीनों प्रकार के कर्मों में मानवीय दर्शन गुथा हुआ है। मानो देखो, जो सत्य से भी ऊर्ध्वा में गति होता है जो सत्योमयी जो महासत्य है एक रजोगुण में भी धारा है जो महा रजोगुणी है। एक तमोगुण में धारा है। जो महा तमोगुणी कहलाती है। जैसे परमात्मा की रचना है वह महाधारा है। जैसे परमात्मा का शासन है। वह महाधारा है। जैसे सतोगुण में मानो देखो, विष्णु रूप है वह प्रभु! का पालन एक महाधारा कहलाता है तो मेरे प्यारे! देखो, यहाँ नाना प्रकार की धाराओं में यह मानव इस संसार के देखो, एक मौखिक कहलाता है, एक मौलिक कहलाता है। इसमें भी भिन्न भिन्न प्रकार की धाराएँ हैं। एक आन्तरिक पालन है, एक बाह्य जगत् का पालन है। एक आन्तरिक तमोगुण है। एक बाह्य तमोगुण है। एक आन्तरिक रजोगुण है। एक बाह्य रजोगुण कहलाता है। आन्तरिक तमोगुण किसे कहते हैं? मानो मानव के शरीर में यह दसों इन्द्रियाँ कहलाती हैं। इनके ऊपर शासन करने का नाम मेरे प्यारे! महारजोगुण कहलाता है और मुनिवरों! देखो, इस संसार में जो नाना प्रकार की उपलब्धियाँ हैं और वह उपलब्धियाँ क्या हैं? क्या संसार के आकार को बनाना यह परमाणुवाद है, इससे गुथा हुआ जो मानो देखो, यह मानवीय तत्त्व कहलाता है। इस मानवीय तत्त्व को जानना और उसमें से जो उपलब्धियाँ होती हैं। उन्हे पुनः से साकार रूप देना, मुनिवरों! देखो, वह एक तमोगुण वह सात्विक से बँधा हुआ तमोगुण, महा तमोगुण कहलाता है।

जैसे एक वैज्ञानिक है, एक आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता है। या आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता को लिया जाए अथवा भौतिक विज्ञानवेत्ता को लें। परन्तु भौतिक विज्ञानवेत्ता ने यह दृष्टिपात किया कि माता के गर्भ से बालक की उत्पत्ति कैसे होती है? पालन कैसे होता है तो

वह इन मानो देखो, वह इन आभाओं को वायुमण्डल में से लेना प्रारम्भ करता है और उन मानो देखो, धातु पिपाद को ले करके वह यन्त्रों का निर्माण करता है। वह यन्त्रों का जब उसने निर्माण किया तो उसमें जो माता के गर्भ में वह जो आनन्दमंगल मानो देखो, जो उसे रस प्रदान किया जा रहा है, स्वतः हो रहा है माता को ज्ञान नहीं है, परन्तु वह स्वतः ही हो रहा है। तो ऐसे ही वैज्ञानिकजन उन धातुओं को जान करके और यन्त्र का निर्माण करके उसमें मानो देखो, जो रस माता के गर्भ में विद्यमान होता है उस रस को ले करके वह यन्त्रों में स्थित करते हैं और उससे मुनिवरों! देखो, जैसे जो जो क्रियाकलाप जो माता के गर्भ में होता है वह क्रिया दे करके वह वैज्ञानिक महातमोगुण को ले करके उस बालक की रचना कर देता है।

तो इसी प्रकार मेरे प्यारे! शासन है, ऐसे सतोगुण है। महा सतोगुण उसे कहते हैं जो मुनिवरों! देखो, प्रभु! पालन कर रहा है। माता अपने बालक का पालन कर सकती है, क्योंकि वह माता का हृदय माना गया है। उसमें माता की तीनों प्रवृत्तियाँ मानो उसमें कटिबद्ध रहती हैं, उसमें समाहित रहती हैं। तो मुनिवरों! देखो, वह महा वर्णा स्वस्ति रुद्रा आभ्यां गता दिव्यां लोका वेद का आचार्य कहता है, वेद का ऋषि कहता है कि उसमें वह अव्यत् गति से गति करती रहती हैं, मानो देखो, महा अप्रते वह दूसरे बालक का पालन नहीं कर सकती। क्योंकि उसमें बालक का तमोगुणी प्रवृत्ति से अप्रात नहीं होता। परन्तु देखो, रजोगुण भी नहीं है। तो सतोगुण में वह पालन तो कर रही है। वह एक बाह्य पालन कहलाता है और जो प्रभु! का जो प्रभु! ब्रह्मा बन करके इस संसार का पालन करता है वह मानो देखो, उत्पति भी उसमें है, शासन भी उसमें है, सतोगुण भी है, विष्णु कहलाता है। परन्तु अपनी आभा में वह आन्तरिक और मौलिकता में गति करता है। वह साम्य में प्रवृत्ति में लाता है।

तो मुनिवरों! यहाँ पालन भी दो प्रकार के माने गए हैं एक प्रभु! है जो पालन कर रहा है लोंको में अपनी द्यौ शक्ति से अपने तेज से तेजोमयी इस संसार को बना रहा है मानो वह पालन कर रहा है। जैसे माता संकीर्णता से अपना पालन करती है वह सतोगुण है। परन्तु वह एक आभा में है, वह एक सीमा में है। तो मुनिवरों! प्रभु! की

कोई पालन करने की सीमा नहीं है और मानव की पालन करने की एक सीमा रहती है। तो मेरे प्यारे! देखो, इन वाक्यों को ले करके मानव को बहुत अनुसन्धान करना है। तो मेरे प्यारे! देखो, वैज्ञानिक तथ्यों को ले करके वैज्ञानिकजनों ने इसके ऊपर बहुत अनुसन्धान किया और अनुसन्धान वेत्ताओं ने मेरे प्यारे! इसके ऊपर विश्लेषण करते हुए, मानवीय आभा को जानते हुए मेरे पुत्रों! देखो, अपनी क्रियाओं में अपने जीवन को ले गए।

तो आओ मुनिवरों! आओ मैं तुम्हें त्रेता के काल की वार्त्ता प्रगट कर रहा था। महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज जहाँ विज्ञानवेत्ता थे, वहाँ वह आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता भी रहे। मेरे प्यारे! आध्यात्मिक विज्ञान उनका बहुत ऊर्ध्वा में रहा है। क्योंकि वह ध्यानावस्थित हो करके अपनी आत्मा से बेटा! देखो, इस संसार को दिव्य दृष्टि से दृष्टिपात करते रहे हैं, और विज्ञान के यन्त्रों को जान करके वह मानो देखो, इस विज्ञान को आभा में लाते रहे हैं। मेरे पुत्रो! देखो, प्रभु! का विज्ञान इतना नितान्त है, इतना महान है जैसे मानव नाना प्रकार के परमाणुओं, अणुओं को जान करके और वह नाना यन्त्रों का निर्माण करता है। परन्तु वह निर्माण करे या न करे परन्तु प्रभु! का निर्माण अभ्याँ गति रहता है। मेरे प्यारे! देखो, उसमें वो आभा में रहने वाला एक अभ्यत् गति वाला है। जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से बेटा! अनुसन्धान करता रहा है और उस आभा में गति करता रहा है जिस आभा में गति करने वाला मानव अपने को धन्य स्वीकार करता है। तो मुनिवरों! विचार विनिमय क्या इन दोनों का परस्पर विचार विनिमय होता रहता था। तो यहाँ बेटा! वैज्ञानिक जन इस पृथ्वी के गर्भ में जो तमोगुण से रचना हो रही है, मानो जो प्रभु! की दी हुई रचना हो रही है वह प्रभु! प्रभु! देखो, तमोगुण में रहने वाला है और मुनिवरों! देखो, जो शासन हो रहा है वह शासन कर रहा है वह अपनी सीमा में गति हो रही है। स्वतः हो रही है, तो वह मानो रजोगुणी सिद्ध भी कहलाता है और मुनिवरों! उनका पालन हो रहा है। उन्हें कोई नष्ट भ्रष्ट नहीं कर सकता उसका पालन भी हो रहा है। तो मेरे प्यारे! यह तीनों गुण मेरे प्यारे! प्रभु के तेज से उत्पन्न हुए हैं जो

प्रत्येक प्राणी के हृदय में विद्यमान रहते हैं।
मेरे प्यारे! देखो, जो अपनी प्रवृत्तियों को सतोमयी बना लेता है उसके लिए यह समाज सत्य हो जाता है। जब मानव अपनी प्रवृत्तियों को रजोगुणी बना लेता है। उसके लिए यह समाज रजोगुणी बन जाता है। मुनिवरों! देखो, जो अपने को तमोगुणी बना लेता है उसके लिए यह संसार तमोगुणी बना लेता है तो उसके लिए संसार तमोगुणी बन जाता है।
अब यह बड़ा एक विचार का विषय बन गया है। बेटा! आज मैं ऐसे वन में चला गया हूँ जहाँ मुझे एक मार्ग को, दूसरे मार्ग को मैं समाधान कर रहा हूँ तो तीसरा उदधृत हो जाता है। परन्तु विचार क्या है? मुनिवरों! क्या मुनिवरों! देखो, जैसे सतोगुणी है, एक मानव सत्य का उच्चारण कर रहा है उस मानव के लिए सत्यमयी कल्पना आ जाती है उसके समीप वह मानव सत्य की कल्पना क्या कर रहा है? मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! इन तीनों गुणों के ऊपर अध्ययन करने वाले बहुत से ऋषि हुए हैं जैसे मुनिवरों! देखो, महर्षि पापड़ी मुनि महाराज एक समय बेटा! भयंकर वन में जा करके यह कल्पना करने लगे। वह अपने जीवन को सत्यमय बनाने लगे तो इतना सत्य में ले गए अपने को इतना सत्यमय में ले गया क्या मुनिवरों! देखो, प्रत्येक हृदयो में सत्य ही सत्य दृष्टिपात आने लगा। इतना गम्भीर उसने अध्ययन अपना किया और अपने को सत्य में पिरो दिया। पिरोने का परिणाम यह हुआ क्या हिंसक प्राणी आता वह भी ऋषि के चरणों को स्पर्श करता। मानो देखो, तमोगुणी आता वह भी स्पर्श करने लगा। मुनिवरों! देखो, उसकी सतोमयी धारा विचित्र बन गयी। एक समय महर्षि पापड़ी मुनि महाराज जब यह सतमयी बना रहे थे तो उनके आश्रम के निकट एक महात्मा दिग्ध रहते थे। महात्मा दिग्ध ने अपना यह संकल्प किया कि यह जो महर्षि पापड़ी मुनि हैं यह अपने को क्या जानते हैं? उन्हे एक अभिमान क्योंकि दिग्ध उसे कहते हैं जो अभिमानी होता है। वह दिग्ध अभिमानी थे। परन्तु देखो, महर्षि दिग्ध ने अपने शिष्यगणों को एकत्रित करके और ऋषि के आक्रमण के लिए गमन किया। परन्तु जैसे वह सत्य का पालन कर रहे थे, अहिंसा परमोधर्मः का पालन कर रहे थे तो मुनिवरों! वह शिष्य

दिग्ध को त्याग करके वह पापड़ी के चरणों में ओत प्रोत हो गए। महात्मा दिग्ध ने कहा, यह तुमने क्या किया? उन्होंने कहा कि महाराज! इनका जो चिन्तन है, जो तप है, इसकी जो निष्ठा है, हमारे हृदय को उस निष्ठा ने विदीर्ण कर दिया है। और विदीर्ण करके मानों हम इनके चरणों में ओत प्रोत हो गए। मेरे प्यारे! महात्मा दिग्ध मौन हो गए और महात्मा दिग्ध ने जब ऋषि के नेत्रों की ज्योति को दृष्टिपात किया तो वह भी मौन हो गए। मेरे प्यारे! उन्होंने दिग्धपना त्याग दिया। तो विचार विनिमय क्या? मुनिवरों! यह संसार सतोमयी कहलाता है। मुनिवरों! जो सत्य का पालन करता है, सात्विक प्राणी उसके समीप आने प्रारम्भ हो जाते हैं सतोमयी आने प्रारम्भ हो जाते है। वह सत्यमयी पालन करते हुए मेरे प्यारे! देखो, आभा में रमण करते रहते हैं।

विचार विनिमय क्या? मेरे पुत्रो! प्रत्येक मानव अपनी सत्यमयी धारा को बना लेता है। एक मानव दर्शनों का अध्ययन करता है। सत्य को उच्चारण करता है। सत्योमयी होता है तो दार्शनिक जब आने प्रारम्भ हो जाते हैं क्योंकि प्रभु! का यह जो जगत् है वह एक प्रकार का कल्पवृक्ष कहलाता है। यहाँ मानव को अपनी कल्पना ऊँची बनानी चाहिए। ऊँची कल्पना वाला प्राणी मेरे प्यारे! देखो, महान और विचित्र बन जाता है, दार्शनिक बन जाता है। दर्शनों की आभा में रमण करने लगता है। मृत्यु का भय नहीं रहता, क्योंकि मृत्यु अन्धकार में रहती है। तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या? हमें ज्ञान का प्रकाश होना चाहिए। ज्ञान के प्रकाश में रमण करने वाला विज्ञानवेत्ता बन जाता है। बेटा! यहाँ वैज्ञानिक बनने के लिए मानो देखो, रजोगुणी, तमोगुणी दोनों विचारों की आवश्यकता रहती है। वह रचना कर रहा है। तरंगों को जान रहा है। तरंगों को अपने में लाना चाहता है। निर्माण कर रहा है। मुनिवरों! देखो, प्रभु! के राष्ट्र में वैज्ञानिक हो, न हो, परन्तु इस प्रकृति का विधान है इस प्रकृति का नियम है क्या मुनिवरों! देखो, जैसे विस्फोट जैसे विश्वानस्पत होता रहता है। मानो परमाणुओं का आपस में दोषारोपण हो करके विजातीय और जातीय दोनों का मिलान हो करके अन्तरिक्ष में बेटा! उनका आक्रमण भी होता रहता है वह जो आक्रमण है, मुनिवरों! देखो, वह प्रकृति का प्रकोप कहा जाता है। वह साधारण रूप से उसे प्रकृति का मानो दोषारोपण भी प्रकृति अपनी

आभा में गति कर रही है। यह प्रकृति की आस्वात गति कहलाती है।

तो मेरे प्यारे! विचार क्या देने चला गया हूँ। ये विचार यह विशाल बन आ गया है जहाँ मेरे प्यारे! देखो, प्रकृति के दोष मानव के देखो, यहाँ तीन प्रकार के दैविक प्रकोप से कटिबद्ध रहते हैं, जो दैविक प्रकोपों में मानव समाज नष्ट होता रहता है। यह मुनिवरों! जातीय और विजातीय पदार्थों का जब दोनों पदार्थों का मिलान होता है तो समुद्रों में अग्नि प्रदीप्त हो जाती है और समुद्रों का जल मेरे प्यारे! देखो, चन्द्रमा की कान्ति के साथ गति करता है और वही जल मुनिवरों! देखो, अति वृष्टि में अनावृष्टि में परणित हो करके इस समाज को नष्ट कर देता है।

मेरे प्यारे! मुझे बहुत सूक्ष्म समय हुआ, मेरे प्यारे! महानन्द ने वर्णन कराया था और यह वर्णन कराया कि बड़वानल नाम की अग्नि प्रदीप्त हो गई है और वह बड़वानल नाम की अग्नि जल को उछाल देती हुई समाज को नष्ट कर रही है। मानो देखो, राष्ट्र के राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं। मुझे स्मरण आता रहता है त्रेता के काल में एक समय जल प्लावन आया और वह जल प्लावन और वह जल प्लावन ऐसा आया, क्या ब्रीहि सतवप ब्रीहि मानो समुद्र के तट पर जितने प्राणी थे, मानो देखो, एक एक योजन की दूरी तक सर्वत्र जल का उत्थान आया, उत्थान होते हुए उनको, सबको समुद्र ने अपने में अर्पित कर लिया, क्योंकि समुद्र में अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। अग्नि मानो देखो, जैसे काष्ठ में अग्नि विद्यमान हो करके वन को समाप्त कर देती है, इसी प्रकार बड़वानल नाम की अग्नि जब जल में प्रदीप्त हो जाती है तो यह जो जल है, यही समाज को अपने में निगल जाता है। तो यह अग्नि ही निगल जाती है। तो परिणाम क्या? मुनिवरों! इसको हम दैविक प्रकोप कहते हैं। दैविक आभा कहते हैं यह देखो, विजातीय जातीय पदार्थों का जहाँ समन्वय हुआ और अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। जैसे मुनिवरों! देखो, मानव के मस्तिष्क में देखो, मोह और घृणा दोनों का समन्वय हो करके मानव का मस्तिष्क नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार मेरे प्यारे! यह महानत्ता में गति करने वाला जगत् है आभा में रमण कर रहा है।

मुनिवरों! इस संसार को सतोमयी दृष्टिपात करते रहें। सत्यमय रहते रहेंगे तो गृह

महान बनेंगे, राष्ट्र महान् बनेगा। ज्ञान और विज्ञान में गति करने वाला राष्ट्र होना चाहिए। राष्ट्र का मौलिक अनुसन्धान करना है, प्रत्येक वाक्यों पर अनुसन्धान करना है। राजा वह पवित्र होता है जो रजोगुणीमय, सतोगुणीमय दोनों की आभा को ले करके गति करता है। जो अपने समाज को कर्त्तव्य के मार्ग पर लाता है और यदि कर्त्तव्य के मार्ग पर नहीं लाता है तो वह राष्ट्र पवित्र नहीं होता। जो राजा समाज को कर्त्तव्य में न लगा सके और जो माता अपने पुत्र को चरित्रवान न बना सके, वह माता नहीं है, वह राजा नहीं कहलाता। तो इसीलिए मुनिवरों! देखो, प्रत्येक मानव अपनी अपनी आभा में (पुस्तक से) भारद्वाज मुनि ने यह वाक्य बहुत पुरातन काल में वर्णन किया। आज मैं बेटा! इसके विचारों की पुष्टियाँ करते हुए प्रभु! को ज्ञान और विज्ञान से इस संसार को जानते हुए मुनिवरों! देखो, इस सागर से पार होना चाहिए (शब्द ध्वनि से) रमण करते हुए। प्रभु! के ज्ञान विज्ञान के इस सागर से पार होना चाहिए।

बेटा! आज का हमारा यह वाक्य कह रहा है, हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हम ज्ञान और विज्ञान में रमण करते रहें, हम रजोगुण और तमोगुण, सतोगुण इन तीनों गुणों में अपने जीवन की आभा को आभायित करते रहें क्योंकि यह सब सत्य से गुथा है। रजोगुण भी वही कह रहा है और तमोगुण भी वही गाथा गा रहा है जो सतोगुण गा रहा है वही रजोगुण गा रहा है और जो रजोगुण गा रहा है वही तमोगुण गा रहा है मेरे प्यारे! देखो, एक ही एक ही गान है, एक ही गान में बेटा! तीनों गुण पिरोए हुए हैं। एक ही सूत्र है और एक ही सूत्र में तीनों गुण पिरोए हुए हैं। बेटा! इसके ऊपर हमें विचार विनिमय करते हुए इस संसार सागर से पार होना चाहिए। कल बेटा! इसके आगे की चर्चाएँ तो कल ही प्रगट करूँगा आज का विचार क्या? कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, ज्ञान और विज्ञान की आभा में रमण करते हुए अपने जीवन को महान् बनाते चले जाएँ। अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ हम कल प्रगट करेंगे। स्थान : लाक्षागृह, बरनावा

समय : दोपहर 3 बजे वेद पाठ।

४ 18 10 1982 पुष्प 47 अग्नि के नाना रूपों की व्याख्या

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने, पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, मानो उस महिमावादी ब्रह्म की चर्चाएँ होती रहती हैं, अथवा उसके विज्ञान की आभाएँ और परमपिता परमात्मा को विज्ञानमयी स्वरूप कहा है। क्योंकि वेद ब्रह्माण्ड का, एक एक शब्द, ऐसा गुथा हुआ है, ऐसा पिरोया हुआ है कि उसके ऊपर जब मानव विचार विनिमय करता है तो प्रायः अपने में यह स्वीकार करता है मानो मैं कैसे विचार के मानो वन में आ गया हूँ, जहाँ शब्दों की मानो एक एक ध्वनि द्वितीय ध्वनि को प्रकाशित कर रही है, एक शब्द उत्पन्न हो रहा है, द्वितीय शब्द उसके साथ में रमण कर रहा है, तृतीय शब्द उन दोनों का समन्वय करा रहा है, चतुर्थ जो शब्द है वह उसमें भेदन शक्ति प्रदान कर रहा है। तो कैसा विचित्र यह शब्दार्थ है जिसके ऊपर मानव परम्परगतों से अनुसन्धान करता रहा है।

अग्नि के दो प्रकार

वेदमन्त्रों के पठन पाठन में दो प्रकार की अग्नियों का वर्णन आ रहा था। अग्नियाँ तो वैदिक साहित्य में भिन्न भिन्न प्रकार की है। परन्तु दो अग्नियाँ मुख्य मानी गई हैं जिसमें एक अग्नि का नाम ब्रह्माग्नि है और द्वितीय अग्नि का नाम वैश्वानर है। मेरे प्यारे! एक अग्नि मानव को क्या प्राणी मात्र को तेजस्वी बना रही है परन्तु द्वितीय जो अग्नि है जिसे ब्रह्माग्नि कहते हैं वह ज्ञान रूपी अग्नि है जिसके सन्निधान मात्र से ही गति प्राप्त हो जाती है। तो विचार आता है बेटा! वह अग्नि कहाँ रहती है? वह अग्नि योगियों के अन्तर्हृदय में रहती है। परन्तु जो बाह्य वैश्वानर नाम की अग्नि है वह बाह्य जगत् में, बेटा! मानो एक एक परमाणु को अपने में पिरो रही है। मानो एक एक लोक लोकान्तरों में वह

पिरोई हुई है। उसको हमारे यहाँ वैश्वानर नाम की अग्नि कहते हैं। इसी वैश्वानर नाम की अग्नि से एक और अग्नि का विकास होता है। चिन्तन करने से प्राप्त हुआ कि उसे बड़वानल नाम की बेटा! अग्नि कहते हैं मानो वह अग्नि समुद्रों में रहती है। जैसे वनों में अग्नि प्रदीप्त हो जाती है, एक काष्ठ के दूसरे के घर्षण से इसी प्रकार बड़वानल नाम की अग्नि भयंकर जलों में प्रदीप्त हो जाती है। वह अग्नि विशाल अग्नि मानी गई है। इस अग्नि के और भी भिन्न भिन्न स्वरूप बन जाते हैं परन्तु वही अग्नि है जो सूर्य मण्डल में मानो द्यौ लोक से वह सहायता प्रकाश ले करके द्यौ से इस संसार को तपा रहा है। परन्तु उसमें से अग्नियों को भेदन होता है। विश्वाणु होता है माता के गर्भ स्थल में एक अग्नि होती है जिस अग्नि में मुनिवरों! देखो, निर्माणवेत्ता निर्माण करता है। परमाणुओं का गठन होता है। परन्तु वह जो अग्नि है वह सूर्य की किरणों से भेदन हो करके वह अग्नि माता के शरीर में माता के गर्भस्थल में मानो देखो, शिशु को तपा रही है। वह अग्नि कितनी विशाल है। मानो देखो, वह जो समुद्र की प्रतिभा है वह भी बालक के अन्तर्गत मानी गई है मेरे प्यारे! किसी वेद के ऋषि ने, किसी आचार्य से यह कहा कि महाराज! इस मानव का ओढ़न और बिछौना क्या है? इस मानव का एक आसन नीचे है, एक आढ़ना ऊपर है, यह क्या है? वेद के ऋषि ने कहा वायु अव्रणां ब्रहे अव्रता मानो वायु ओढ़न है, वायु बिछोना है। उन्होंने पुनः जब प्रश्न किया कि महाराज! कि जब हम मात के गर्भ में होते है वहाँ क्या ओढ़न है, तो वेद का आचार्य कहता है जलं अमृतां ब्रह्मो कृतो देवा मानो देखो, जल को अग्नि पिपाद बनाती है और माता के गर्भ में बेटा! देखो, जल ही ओढ़न है और जल ही बिछौना है। आसन बना हुआ है। जल में वह बालक पनप रहा है माता उसे निहारती रहती है। परन्तु समाज निहार रहा है विचार आता है कि प्रभु! का विज्ञान कितना विचित्र है मानो देखो, जल ही निचरले भाग में है। जल ही ऊर्ध्वा में है, जल ही मानो उसके आदि अवस्था में आभूषण के रूप में परणित रहता है। तो मेरे प्यारे! यह कितनी विचित्र बात है उस मेरे देव की, क्या कि जल ही ओढ़न है, जल ही उसका आसन है। उस पर वह विश्राम कर रहा है। और जल को ही मेरे प्यारे! देखो, अपने में धारण ओढ़न बना रहा है। शरद ऋतु आती है,

हेमन्त ऋतु आती है, परन्तु जो माता के गर्भ में शिशु है उसका ओढ़न जल और मुनिवरों! देखो, बिछौना भी जल ही है। वाह रे देव! तू कैसा विचित्र है? कितना रचनाकार है उसके विज्ञान को कोई जानने वाला बेटा! अपने में जानता रहता है परन्तु उसकी प्रतिक्रिया कितनी विचित्रता में मानो परिणत हो रही है। मुझे जब एक एक वेद का मन्त्र स्मरण आता है। वेद का मन्त्र आज अग्नि सूक्तों का पठन पाठन हो रहा था, जिसमें अग्नि का वर्णन आ रहा था। वेद के आचार्य ने जब यह कहा कि बालक का ओढ़न और बिछौना क्या है? तो वेद का आचार्य यह कहता है, अग्नि ब्रह्मणब्रहे कृत लोकः क्या अग्नि ही ओढ़न है, अग्नि ही बिछौना है। मानो वह जल भी उष्ण रहता है ओढ़ना भी उष्ण में रहता है उसमें अग्नि का ताप चलता रहता है। परन्तु देखो, अग्नि उसको ताप को तपाती रहती है। उसको अमृत प्रदान करती रहती है। मेरे प्यारे! वह मानव प्रकाश में प्रकाशित हो रहा है अपने को ऊर्ध्वा में बना रहा है। तो मेरे पुत्रो! देखो, जब वेद के ऋषि ने पुनः कहा कि हे महाराज! बालक का ओढ़न और बिछौना क्या है माता के गर्भ में? तो वेद का आचार्य बेटा! पुनः कहता है सम्भवः वायुकृतं देवः मानो यह वायु ही कृतम् है, यह वायु ही अमृत है मानो देखो, इसमें जो प्राण सत्ता जो गति कर रही है क्योंकि वायु का अपना स्वरूप क्या है? गति है और मुनिवरों! देखो, जल के परमाणु मानो ओढ़न के रूप में हो चाहे बिछौना के रूप में हो परन्तु उनकी गति चल रही है, उनकी गतियाँ हो रही हैं और उन मुनिवरों! देखो, गतियों की आँगन में जल की अप्रतो वह प्राण की आभा में ही जल कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, प्राण ही ओढ़न है, प्राण ही बिछौना है। उस प्राण की आभा में वह बेटा! देखो, वह बालक पनप रहा है। वेद का आचार्य बेटा! कितनी ऊर्ध्वा उड़ान उड़ रहा है? जब मैं आयुर्वेदाचार्यों से यह प्रश्न करता हूँ, तो आचार्य भी मौन हो जाते हैं। परन्तु देखो, ऋषि यह चिन्तन करता हुआ कहता है, कि वायु में जो एक गति है उसका नाम प्राण है। वह प्राण ही उस बालक के आँगन में विद्यमान है। वही परमाणुओं को संगठित कर रहा है। वही जल को उसके समीप ला रहा है। वही जल में, मानो देखो, परमाणु की इन आभा में गति कर रहे हैं। बालक मुनिवरों! देखो, उनके मध्य में पनप रहा है।

परन्तु देखो, वेद का ऋषि पुनः कहता है क्या उस बालक का ओढ़न और बिछौना क्या है?

जब पुनः यह प्रश्न करता है तो ऋषि कहता है वायु सम्भव व्रताः अन्तरिक्षं लोकं ब्रह्मा उन्होंने कहा कि यह जो अन्तरिक्ष है यह अवकाश कहलाता है, मानो देखो, अन्तरिक्ष में वह विद्यमान है माता के गर्भस्थल में अन्तरिक्ष है उसमें वह विद्यमान है और उसका ओढ़न और बिछौना मानो देखो, वह प्राण सहित, जल सहित मेरे प्यारे! देखो, वह अन्तरिक्ष में वह ओत प्रोत है। अन्तरिक्ष मानो देखो, उसका ओढ़न है वही उसका आसन बना हुआ है। वही मानो देखो, अपनी गतियों में गतिशील बना रहा है। मेरे प्यारे! अन्तरिक्ष में गति कोई नहीं होती परन्तु वह अवकाश है। वह गतियों में गति ब्रह्मः परमाणु गति कर रहा है यदि अवकाश नहीं होगा तो जीवन भी नहीं होगा। मेरे प्यारे! प्राण शक्ति नहीं होगी तो गति भी नहीं होगी। अग्नि नहीं होगी तो तेज भी नहीं होगा। जल नहीं होगा तो मुनिवरों! देखो, अमृत भी नहीं होगा। पय भी नहीं होगा और पृथ्वी नहीं होगी तो बेटा! अन्नाद भी नहीं होगा। विचार यह सब एक दूसरे का पूरक है। एक दूसरे की आभा में आभायित होता हुआ यह जगत् मुझे दृष्टिपात आ रहा है पुत्रों!

आओ मुनिवरों! मैं कहाँ चला गया हूँ? विचार यह दे रहा था कि अग्नि ब्रह्मा ब्रहे यह अग्नि मुनिवरों! देखो, लौकिक अग्नि कहलाती है जो माता के गर्भस्थल में विद्यमान है। काष्ठ में विद्यमान है। यज्ञशाला में अग्नि प्रदीप्त हो रही है। मानव के शरीरों में अग्नि प्रदीप्त हो रही है। मेरे प्यारे! देखो, वही अग्नि मानो देखो, सूर्य की किरणों का रूप धारण करके मानो देखो, इस आभा में परणित हो रही है। वही अग्नि मेरे पुत्रों! देखो, अग्नि का विस्तार बन करके मानो द्यौ लोक में अग्नि स्थिर रहती है। वही अग्नि धारा बन करके अन्तरिक्ष में गति करती रहती है। वही अग्नि मेरे प्यारे! देखो, पृथ्वी मण्डल पर भू लोक में मेरे प्यारे! गतिशील बना रही है। कही वही अग्नि रजोगुण के परमाणुओं को ले करके मानो तेजोमयी रहती है, कहीं रजोगुण के परमाणु ले करके रहती है। कही सतोगुण के परमाणु ले करके बेटा! योगेश्वर बना देती है। मेरे प्यारे! मैं कहा चला गया हूँ? विचार केवल यह है कि यह अग्नि है। इस अग्नि के स्वरूपों को हमें जानना

है। जब योगी जन बेटा! इस अग्नि के स्वरूपों में प्रवेश करता है तो मानो देखो, विजत्कृति बन जाता है। वैज्ञानिकजन बेटा! जब इस अग्नि के ऊपर अनुसन्धान करते हैं। तो मुनिवरों! देखो, वह नाना यन्त्रों का निर्माण करने लगते हैं।

मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! महाराजा हनुमान का जीवन मैंने कई काल में तुम्हें प्रगट करते हुए कहा था। महाराजा हनुमान और महाराजा सम्पाति दोनों का मिलान हुआ। एक समय दोनों का मिलन कहाँ हुआ? सोमकेतु दद्दड मुनि गोत्र में उत्पन्न होने वाले सोमकेतु ऋषि थे। वह सोम को पान करते थे वह सोम को अपने में धारण करते थे। तो मुनिवरों! देखो, सम्पाति उनके चरणों में विद्यमान हो करके सोम को पान कर रहे थे एक समय। मेरे प्यारे! देखो, हनुमान जी के हृदय में यह जब उन्होंने अपने विद्यालय को त्यागा, उनके विद्यालय के जो गुरु थे वह त्रीणकेतुक ऋषि महाराज थे। मेरे प्यारे! देखो, उनको बटुक ऋषि भी कहते थे। वह बटुक मुनि के द्वारा मुनिवरों! देखो, अध्ययन करते थे। जब उनका अध्ययन करने की जो प्रतिक्रिया थी वह मानो देखो, उनका जो अध्ययन था वह दर्शनों की उस आभा पर अध्ययन था। वेद के उस मौलिक रहस्य को विचारते थे क्या यह प्रकाश कहाँ से आता है? यह प्रकाश जो धीमा धीमा आ रहा है, यह जो प्रकाश मौलिक रूपों से आ रहा है, इस प्रकाश की अपनी आभाएँ क्या हैं? मानो देखो, यह उनका विचारं ब्रह्मे उनका विद्यार्थी काल में पठन पाठन का उनका क्रम बना रहा वह मानो उसी में पारायण होते रहे। एक समय मानो देखो, बटुक मुनि महाराज के यहाँ हमारे ऋषि मुनियों के यहाँ बेटा! जहाँ उनके यहाँ शिक्षालय होते, उन शिक्षालय में कई कक्ष होते थे, एक शिक्षा की स्थली है जहाँ मानो देखो, वह अपनी शिक्षा अध्ययन करते थे। उसके पश्चात् शिक्षा में जो उनको वस्तु से एक, विषय प्राप्त हुआ है उसी विषय के ऊपर अनुसन्धान होता था और उस अनुसन्धानशाला में मानो उसके ऊपर अनुसन्धान करते थे। और जो अनुसन्धान में मानो देखो, विज्ञान की तरंगें उत्पन्न होतीं, तो मुनिवरों! विज्ञान में धातुओं के मिलान में, परमाणुओं के सुगठित में लग जाते। मानो देखो, एक परमाणु से दूसरे परमाणु का मिलान करना, जल, अग्नि

के परमाणुओं को सुगठित करके मानो दनको साकार रूप में लाते रहते थे।

महाराजा हनुमान

मेरे प्यारे! देखो, महाराजा हनुमान का एक ही विषय था कि सूर्य की किरण आ रही है इन किरणों से हम विद्युत का कैसे प्राप्त कर सकते हैं? मेरे प्यारे! देखो, क्योंकि बाल्यकाल में जब वह देखो, माता के आँगन में जब क्रीड़ा करते रहते थे। उपनयन संस्कार से पूर्व उस समय भी यह सूर्य की किरणों को निहारते रहते थे और सूर्य की किरणों को मानो देखो, अपने में और माता से प्रश्न किया करते थे कि हे माता! यह सूर्य क्या है? तो माता यह उत्तर देती पुत्र! सूर्य लोक है यह मानो देखो, द्यौ लोक से सहायता लेता है यह हमारा देवता है। सूर्य देवता है चन्द्रमा देवता है। वातो देवता है यह हमें देते हैं प्रकाश देते हैं इसीलिए यह हमारे देवता हैं। मानो देखो, नाना प्रकार की किरणें आती हैं, यह हमें तपाती रहती हैं। हम उससे तपायमान रहते हैं। माता से देखो, बालक मौन हो जाता है और यह उच्चारण करता है कि हे माता! यह देवता कैसे हैं? एक समय माता के आँगन में क्रीड़ा कर रहा था। माता से कहा, हे मातेश्वरी! यह सूर्य देवता कैसे है? उन्होंने कहा, हे पुत्र! यह जो सूर्य है यह देवता इसीलिए है, यह नाना प्रकार की हमें किरणें देता है। यह तेज देता है, हमें तेजोमयी बनाता है। मानो यह तेज देता हुआ हमें तेजस्वी बनाता है इसीलिए यह देवता है। यह देता ही रहता है। उस समय मानो माता से कहा, हे माता! यह देता क्यों है? उन्होंने कहा कि पुत्रों! भवस्ते मानो यह देता क्यों है यह इसीलिए देता है क्योंकि यह अपने कर्तव्य का पालन कर रहा है यह प्रभु! की व्यवस्था में मानो कटिबद्ध है और यह मानो देखो, प्रकाश ही प्रकाश देता है। नाना तेजोमयी बनाता है। वनस्पतियों को प्राणी मात्र को, और यह पृथ्वियों को तपाने से भी मानो यह पृथ्वियों का पिता है। देखो, माता ने यह उपदेश देती है अपने बालक को तो बालक मौन हो गया।

परन्तु विद्यालय में उस ब्रह्मचारी का यही विषय रहा और विषय की आभा एक विचित्र बनी रही। बटुक मुनि महाराज भी मुनिवरों! देखो, उनसे आश्चर्य चकित हो जाते थे,

क्या हे ब्रह्मचारी! तुम यह अध्ययन क्यों कर रहे हो? मैं इसकी प्रतिक्रिया को नहीं जान पा रहा हूँ क्या तुम्हारा यह अध्ययन का विषय क्यों बना है? तुम आध्यात्मिकवाद को नहीं ले रहे हो। तुम मानो देखो, सूर्य विज्ञान को लेना चाहते हो। चन्द्र विज्ञान को ले रहे हो। पृथ्वी विज्ञान को ले रहे हो। मैं नहीं जान पाता, तुम्हारा यह विषय क्यों बना। उस बाल ब्रह्मचारी ने कहा, हे ऋषिवर! हे पूज्यपाद! चरणां ब्रह्म बिन्दु अस्तां नमस्कारं विज्ञान भुसते मानो हे ऋषिवर! मैं इसीलिए इस विषय में चला गया क्योंकि माता मुझे यह बाल्यकाल में शिक्षा देती रही है। मानो सूर्य के प्रकाश को आभा मुझे प्रगट करती रही है। मेरा जो हृदय है वह इसमें मानो प्रकाशित हो गया है हृदय से यह प्रेरणा उत्पन्न हो रही है क्योंकि संसार में जितने भी आविष्कार होते हैं जितने चमत्कार होते हैं जितने योगेश्वर बनते हैं यह मानव के हृदय से प्रेरणा प्राप्त होती रहती है हृदय इसका केन्द्र माना गया है। एक मानव विज्ञान में जाना चाहता है तो मानो उसके हृदय से विज्ञान की तरगों का जन्म हो जाएगा। एक मानव सूर्य में जाना चाहता है तो सूर्य उसका हृदय केन्द्र बनता है और उसके आधार पर मानो वह यन्त्रों का निर्माण करने लगता है। इसी प्रकार मैंने भी अपने इस विषय को बनाया है, मैं आचार्य के चरणों में भगवन! इसीलिए आया हूँ, मेरा हृदय इससे प्रकाशित हो जाएगा।

मेरे प्यारे! बटुक मुनि महाराज आश्चर्य चकित हो गएं उसकी कुशल बुद्धि को दृष्टिपात करके उन्होंने कहा, धन्य है ब्रह्मचारी! मेरे प्यारे! देखो, वह उनके समीप रहने वाले सम्भवा ब्रह्मे स्वाति ब्रह्मचारी उनके द्वारा थे देखो, स्वाति ब्रह्मचारी और हनुमान दोनों का परस्पर विचार विनिमय होता रहा। मानो देखो, वह सूर्य सिद्धान्त के ऊपर, सूर्य की किरणों के साथ अपनी गति को बनाना चाहते थे। मेरे प्यारे! देखो, ऐसे भी वैज्ञानिक हुए हैं क्या जो सूर्य की किरणों के साथ मेरे प्यारे! अपने शरीर को ऊर्ध्वा में बनाने का प्रयास करते हैं। मानो देखो, सूर्य की किरणों से परमाणु ले करके यन्त्रों का निर्माण किया। और जो यत्र सूर्य की किरणों से, उसी के प्रकाश से वह अन्तरिक्ष में गति करता रहा है।

तो मेरे पुत्रो! क्या देखो, तुम्हें स्मरण होगा, मानो यह वही सम्पाति, जिन्होंने मुनिवरों!

देखो, हनुमान जी लंका में, माता सीता के लिए पहुचें तो मानो देखो, सम्पाति उन्हें समुद्र के तट पर प्राप्त हुआ था और सम्पाति ने कहा कि हनुमान! क्या तुम उस विद्या को अपने से ओझल कर गएं हो? जब सम्पाति ने उन्हें शिक्षा अभ्यस्त तो वह ऊर्ध्वा सूर्य की किरणों के आश्रित हो करके, विज्ञान की तरंगों के कटिबद्ध हो करके उन्होंने समुद्र को लांघ दिया था। परिणाम क्या? मेरे प्यारे! वह यन्त्रों की मानो कुञ्जियों को जानते थे। विचार क्या? सूर्य विज्ञान हमारे यहाँ ऐसा विज्ञान है, सूर्य की किरणों से विद्युत को जानने वाले वैज्ञानिक बेटा! देखो, मानो देखो, अपने को सूर्य मण्डल तक ले जाते थे। विचार विनिमय क्या मुनिवरों! मैं आज विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं जा रहा हूँ, विचार केवल यह है क्या मानो देखो, महाराजा हनुमान और सम्पाति दोनों मुनिवरों! देखो, वैज्ञानिक यन्त्रों में वैज्ञानिक मानो सूर्य किरणों से वे विज्ञान का गठन करते रहते थे। विद्युत को एकत्रित करते रहते थे

महाराजा बटुक मुनि यह कहा करते थे क्या हे ब्रह्मचारियों! तुम, किसी भी काल में, मैं तुम्हें निद्रा में दृष्टिपात नहीं कर रहा हूँ यह क्या अश्च है, उन्होने कहा कि महाराज! यह विज्ञान इतना विशाल है, क्या मानो देखो, विचार विनिमय करने वाली, जो प्रतिभाएँ हैं, वह इतनी विचित्र हैं, कि उनको जानते जानते हम प्रभु के राष्ट्र में चले जाते हैं। मानो मुनिवरों! यह मैं उच्चारण इसीलिए कर रहा हूँ, यह अग्नि बेटा! भौतिक अग्नि है। इस अग्नि ऊपर मानो वैज्ञानिकजन अपने यन्त्रों की तरंगों में बेटा! रमण करते रहे हैं। मानो देखो, उसी में रत्त रहे हैं। एक ब्रह्माग्नि होती है। वह ब्रह्माग्नि कौन सी होती है? बेटा! देखो, ब्रह्माग्नि वाला, यह विचारता है कि यह जो अग्नि है यह तो ब्रह्म है, जो ज्ञान है, विज्ञान है मानो जो मृत्यु को विजय करने वाली सामग्री है, वह ब्रह्माग्नि के द्वार पर है। इसीलिए ब्रह्माग्नि को जानना चाहिए। मेरे पुत्रो! देखो, ब्रह्माग्नि क्या है? इसको भौतिकवाद, भौतिक विज्ञानवेत्ता, बेटा! जिस विज्ञान को लेकर के उड़ान उड़ता है गति बनाता है परन्तु देखो, वह जहाँ शान्त हो जाती है वह गति वहाँ से ब्रह्माग्नि का प्रारम्भ होता है। उसका अध्यात्मिकवाद कहते हैं। मानो जो प्रकाश में जाने वाला परम साधक है, जो वह साधना करता है वह प्रकृति के जड़वत् को और मुनिवरों! देखो,

चैतन्य ब्रह्माग्नि को इन दोनों का जब समन्वय करता है, तो मानो समन्वय करते ही इस संसार से, इस अन्धकार से उस मानव का उत्थान हो करके एक साधना के क्षेत्र में जा करके बेटा! प्रकाश में चला जाता है। जहाँ आलस्य नहीं होता, प्रमाद नहीं होता, जहाँ रात्रि नहीं होती, उस ब्रह्माग्नि के प्रकाश में बेटा! वह रमण करने लगता है। वह प्रकाशमयी आनन्द को प्राप्त करता है।

आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चाएँ प्रगट करना नहीं चाहता हूँ। विचार केवल यह कि हमारे यहाँ सूर्य की किरणों से, प्रतिभाओं से अपनी आभा में मानव रमण करता रहा है। मुनिवरों! देखो, उस समय मुझे बेटा! बटुक मुनि माहराज का वह काल, वह विद्यालय स्मरण आते रहते हैं जहाँ बटुक मुनि महाराज बेटा! देखो, जो भौतिक अग्नि में, मानो वैश्वानर नाम की अग्नि में, मानव को परणित करा रहा है, वही ऋषि आध्यात्मिक विज्ञान में मानव को ले जा रहा है। अध्यात्मिकवादी बनाने के लिए मानो देखो, ब्रह्माग्नि का चयन कर रहा है। वह दोनों प्रकार के चयन कराने की प्रतिक्रिया, हमारे यहाँ ऋषि मुनियों के द्वार पर प्रायः होती थी। परन्तु आज मैं इस सम्बन्ध में क्या, मानो देखो, बटुक मुनि माहराज के यहाँ, नित्यप्रति ऋषि मुनि बेटा! याग करते थे और यागों के ऊपर अनुसन्धान करते थे। उस अनुसन्धान में वह रत्त रह करके अपने को महान बनाने का प्रयास करते रहे हैं।

आओ मेरे प्यारे! आज मैं देखो, कहाँ आज मैं सम्पाति की चर्चा प्रकट करने लगा हूँ। सम्पाति मानो देखो, अपने माता की दो सन्तानें थीं, दो पुत्र थे। एक का नाम गरूड़ था और का नाम सम्पाति था मेरे प्यारे! देखो, गरुड़ इतना वैज्ञानिक था क्या वह सूर्य की किरणों के साथ मानो सूर्य मण्डल कई समय सूर्य की परिक्रमा कर आया। परन्तु देखो, पुनः वह पृथ्वी मण्डल पर आ गया। इसी प्रकार सम्पाति समुद्र के तट पर उनका एक सूक्ष्म सा एक राष्ट्र था उस राष्ट्र में रहते थे सम्पाति के पिता का नाम मानो देखो, क्रूरली राजा था क्रूरली राजा उसे कहते हैं जो मानो देखो, कुरीतियों को शान्त कर गया हो। राष्ट्र से मानो देखो, वह क्रूरली नाम का राजा था बाल्यकाल जो उसका नाम था वह मंगलेश्वर केतु कहलाता था। मंगलेश्वर केतु, मेरे प्यारे! देखो, वह उनकी पत्नी

का नाम समश्रुति था श्रुति के गर्भ से दो सन्तानों का जन्म हुआ था। दोनों सन्ताने मानो देखो, बटुक मुनि के यहाँ अध्ययन करती रहीं, उनके अध्ययन की जो प्रतिक्रिया थी, वह बड़ी विचित्र और विज्ञान और ज्ञान और मुनिवरों! देखो, यौगिक बनने की उनके हृदय में, सदैव भावना उत्पन्न होती रहती थी।

मेरे प्यारे! देखो, बटुक मुनि महाराज के यहाँ ये नाना शिष्य अध्ययन करते थे। जहाँ हनुमान था, वहीं सम्पाति और गरुड़ था। जहाँ गरुड़ था वहीं श्वेतकेतु था। और जहाँ श्वेतकेतु अध्ययन करता था। वहीं ब्रह्मचारी रोहिणीकेतु था, और जहाँ रोहिणीकेतु अध्ययन करता था, वहाँ रावण के अमृत वंशलज में उनके विधाता कुम्भकरण ने भी कुछ समय बटुक ऋषि के यहाँ, विज्ञान के देखो, उन्होंने अध्ययन किया बहुत से तत्त्वों को अध्ययन किया। जहाँ वह भारद्वाज मुनि के यहाँ अध्ययन करते थे। वहाँ कुछ समय तक बटुक मुनि महाराज के यहाँ भी उन्होंने अध्ययन किया है। तो मेरे प्यारे! देखो, वह नाना यन्त्रों का निर्माण करते रहते थे, विज्ञान में रत्त रहते थे परन्तु देखो, अपने को प्रकाश में लाने का प्रयास करते रहते थे।

वरूण

विचार विनिमय क्या? मेरे पुत्रो! वे नाना प्रकार की आभाओं में गति करते रहते थे। एक समय वह मुनिवरों! देखो, वह महर्षि बटुक मुनि महाराज और शिष्यगण सब उनके चरणों में ओत प्रोत हो करके शिक्षा अध्ययन कर रहे थे, तो कहीं एक वेद आख्याकिया उन के समीप आयी। वेद की, अख्याकिया यह कह रही थी विष्णुश्चं ब्रह्मा अकृते वृधाम अग्नि वरणप्रवेः अस्तोः मेरे प्यारे! देखो, बटुक मुनि महाराज से ब्रह्मचारियों ने कहा कि महाराज! वेद का मन्त्र कहता है, कि अग्नि वरुण है। यह अग्नि वरुण कैसे बन सकती है? उन्होंने कहा, कि वरुण के नाना पर्यायवाची शब्द माने गएं हैं। क्योंकि वरुण नाम जल को कहते हैं, वरुण नाम परमात्मा को कहते हैं। वरुण नाम अग्नि को कहते हैं। मानो देखो, जो उसे वर लेता है मानो देखो, वह वरुण कहलाता है मानो यदि हम जल को वर लेतें है जल के विज्ञान को जान लेते हैं तो जल हमारे लिए वरुण बन

जाता है यदि हम मानो अग्नि को जान लेते हैं, अग्नि के प्रकाश को जान लेते हैं तो अग्नि हमारे लिए वरुण बन जाता है। परमात्मा को अपना हम जब वरणीय बना लेते हैं मानो देखो, यह बाह्य अग्नि, ब्रह्माग्नि में प्रवेश कर जाता है। परमात्मा को अपना वरुण बनाकर उसको वर लेते हैं, वहाँ मानव उसी को प्राप्त हो जाता है। तो परमपिता परमात्मा का नाम भी वरुण है। मानो देखो, इस प्रकार नाना पर्यायवाची शब्द हैं आज वरुण की विवेचना मैं देने नहीं आया हूँ। परन्तु देखो, महात्मा बटुक ने कहा है, मैं बहुत प्रकार से इसका चयन करता रहा हूँ, बहुत अध्ययन करता रहा हूँ। परन्तु उनके यहाँ एक वाक्य और स्मरण आया, एक वेद की जब उन्होंने आख्याकियाओं का निर्णय करा दिया, तो द्वितीय एक वेद का मन्त्र स्मरण आया, ब्रह्मा, विष्णु रेवक प्रवाः राष्ट्रम् रुद्रो भाग अस्ते उन्होंने कहा कि महाराज! यह मानो देखो, वेद की आख्याकि यह कहती है क्या हम एक विष्णु नाम का राजा होता है और विष्णु नाम का राजा होता है वह अपनी प्रजा को सुखद पहुँचाता है।

इसका क्या अभिप्रायः है, कौन ऐसा विष्णु है? कौन ऐसा विष्णु ब्रह्मा वृत्ति बन करके रहता है? मेरे प्यारे! महात्मा बटुक ने कहा कि विष्णु नाम मानो देखो, यहाँ पालन करने वाले को कहते हैं। सतोगुण को विष्णु कहते हैं। जिस मानव के द्वारा सतोगुण आ जाता है, सतोगुण की प्रतिभा आ जाती है, सत् में ही रमण करने लगता है, वह मानव देखो, विष्णु के रूप में परणित हो जाता है। वह विष्णु कहलाता है और वह जो विष्णु है वह हमारा कल्याणकारी है। सतोगुण में रमण करता हुआ मानो देखो, पालन करता है। जैसे माता अपने में जब पुत्रवती हो जाती है नम्र बन जाती है, उसका हृदय उदार में परणित हो जाता है, उसमें पालन करने की शक्ति की प्रबलता आ जाती है तो मानो देखो, उसका पालन सतोगुण में करती है। इसी प्रकार परमपिता परमात्मा को भी विष्णु कहते हैं। विष्णु रूप में वर्णन करते हैं। वह संसार का पालन करता है। इस संसार का जहाँ रचनाकार है वहाँ इसका पालन कर रहा है। परन्तु उसके पश्चात् ऋषि कहता है सम्भो ब्रह्माः मानो देखो, वही विष्णु बन करके हमारा कल्याण करने वाला है। वह मानो स्वस्ति कहलाता है। वह आभा में रमण करने वाला है परन्तु देखो, वह

विष्णु ब्रह्मा है। देखो, विष्णु राजा है राजा कौन सा विष्णु है? जो राजा मानो देखो, अपने में इन्द्रिय विजयी होता है, अपने को विजय करने वाला, समाज को सात्विकता देने वाले राजा को हमारे यहाँ विष्णु कहते हैं। इस प्रकार आभामयी प्रगट करते हुए मानो देखो, ब्रह्मचारी आँगन में परणित हो गये। उन्होंने कहा यही विष्णु है जो मानो देखो, लोक लोकान्तरों की आभा में मानव को परणित करा रहा है आभा में गति दे रहा है। मानो देखो, वही अपनी अपनी क्रियाओं में रमण करता हुआ अपने में सुसज्जित बना रहा है। मेरे पुत्रो! देखो, उन्होंने जहाँ यह वाक्य प्रगट किया तो ऋषि मौन हो गया ऋषि के मौन हो जाने और देखो, ब्रह्मचारी भी मौन हो गये। ब्रह्मचारियों ने एक प्रश्न और किया। उन्होंने कहा कि महाराज! हमने कुछ ऐसा श्रवण किया ब्रह्माः वरण प्रवेः विष्णु रुद्रभागः यह जो विष्णु है यह रुद्रभागा कहलाता है। वह अग्रतां कहलाता है क्या भगवन! यह वाक् यथार्थ है? उन्होंने कहा यह वाक् यथार्थता में रहता है क्योंकि वह सतोमयी रहता है। सत् में रमण करने वाले को हमारे यहाँ यद भागाः मानो यदमय ब्रह्म भागा कहते हैं।

ऐसा उच्चारण करके ऋषि बेटा! इस सब को कह कर मौन हो गया। परन्तु ब्रह्मचारियों ने, एक स्वर में हो करके कहा कि महाराज! हम यह जानना चाहते हैं, कि इस भौतिक अग्नि का, और ब्रह्माग्नि का दोनों का समन्वय आपस में कैसे होता है? मेरे प्यारे! ऋषि बटुक मुनि महाराज बोले कि बाह्य जगत् को जानते हुए, बाह्य जगत् के विज्ञान को जानते हुए परन्तु देखो, अन्तिम स्वर यह होता है, क्या जब वह मृत्यु को विजय करता है, तो बाह्य जगत् वाली जो अग्नि है, यह सिमट करके मुनिवरों! देखो, ब्रह्माग्नि में प्रवेश हो जाती है। यह ब्रह्माग्नि में प्रवेश हो करके, अपने में ओझल अपने में प्रकाशमयी पहुँचा करके एक एक कण गतिशील होने लगता है उस कण कण में जब जिज्ञासु मानो देखो, ब्रह्माग्नि को स्वीकार करता है। वह तेजोमयी, गतिमयी, आभामयी, रुद्रोमयी जब स्वीकार करता है तो मुनिवरों! वह ब्रह्माग्नि कहलाती है। वह ब्रह्माग्नि में प्रवेश कर गया है।

तो मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चाएँ प्रगट करना नहीं चाहता हूँ, विचार विनिमय

क्या? कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए, उसकी ब्रह्माग्नि को जानते हुए हम मानो देखो, इस संसार सागर से पार होना चाहते हैं। जो यह संसार जो हमें दृष्टिपात आ रहा है, यह संसार एक आभामयी हमें दृष्टिपात आ रहा है। जिसके ऊपर मानव परम्परागातों से, एक अनुसन्धान करता रहा है। अनुसन्धानवेत्ताओं ने बेटा! इस संसार की नाना प्रकार की आभाओं में परणित किया है। परन्तु आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने नहीं आया हूँ, विचार यह देने के लिए आया हूँ कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए और महापुरुषों का जो विज्ञान है, उस विज्ञान के ऊपर हम अनुसन्धानित रहें। उसको हम सदैव जानते रहें। यह है बेटा! आज का वाक्। उसको हम सदैव जानते रहें, यह है बेटा! आज का वाक्। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएँ, जो बेटा! देखो, यह मानव यह संसार आभामयी श्रोत्रोमयी दृष्टिपात आने वाला है। ब्रह्माग्नि के लिए उस महान् देव की आभा में हम रमण करते चले जाएँ। यह है बेटा! आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूँगा। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन पाठन होगा। निवास स्थान : सेठ मनसा राम जी मोदी नगर।

५ 19 10 1982 पुष्प 47 महानन्द जी की सम्प्रदायवारी राष्ट्र के प्रति वेदना

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने, पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा हमारा वरणीय माना गया है। मानव परम्परगतों से ही उस परमपिता परमात्मा को वरुण करना चाहता है और वरुण उसको कर लेना चाहिए क्योंकि वह वरणीय है। उसे जो मानव अपने में वरण कर लेता है वह प्रायः उसी को प्राप्त हो जाता है। तो आओ मेरे पुत्रो! हम उसके वरण मानो उसकी

आभा में रमण करते हुए अपने में यह स्वीकार करते चले जाएँ कि हमें उसे वरण करना है। हमें उसे अपना वरणीय देव बनाना है और वह बनेगा उस काल में जबकि आभा में रमण करने वाला गतिशील को अपनाता हुआ और अपने को उसमें समन्वय करने की प्राप्ति में संलग्न हो जाता है।

तो मेरे प्यारे! आज का हमारा वेदमन्त्र बहुत सी प्रेरणाएँ दे रहा था। मानो इस संसार को नाना दार्शनिकों ने बेटा! अपने अपने स्वरूप, अपनी अपनी मीमांसा के अनुसार मानो संसार के ऊपर कल्पनाएँ की हैं, मेरे प्यारे! याज्ञिक पुरुषों ने इस ब्रह्माण्ड को एक प्रकार की यज्ञशाला के रूप में परणित किया है और यह कहा है कि यह जो संसार हमें दृष्टिपात आ रहा है यह एक यज्ञशाला है। परमपिता परमात्मा ने जब सृष्टि का सृजन किया तो मानो एक यज्ञशाला के रूप में इसका निर्माण किया। मेरे पुत्रों! जब इसके निर्माण की चर्चाएँ आती हैं और यह आता है कि यह संसार यज्ञोमयी एक कर्म है, यज्ञोमयी एक शाला है इसमें प्रत्येक मानव याग कर्म करने के लिए आया है। तो आज का हमारा वेद का मन्त्र यह कहता है कि एक मानव सेवा करने से ले करके मुनिवरों! देखो, ऊर्ध्वा में दार्शनिक और योगी बनता हुआ, वह सब यज्ञ के रूप में अपने को ले जा रहा है। यज्ञशाला में अपने को परणित करा रहा है। यह पृथ्वी अपने में नाना प्रकार के व्यञ्जनों को जन्म देती है। यह नाना व्यञ्जनों वाली है। मुनिवरों! देखो, ये सुन्दर एक याग कर रही है। एक दूसरे का समावेश, एक दूसरे की प्रतिभा, मानो देखो, एक दूसरे में परणित होता हुआ एक दूसरे को उद्बुद्ध कर रहा है। और वह उद्बुद्ध हो करके मेरे प्यारे! सुन्दर देखो, यज्ञशाला में अग्नि प्रदीप्त हो करके, सप्त जिह्वा वाली अग्नि, कराली अग्नि बेटा! मानो भद्र रूपों में रमण करती भेदन करती हुई अपने में प्रसारित कर रही है और वह भेदन शक्ति मुनिवरों! देखो, इस संसार का विभाजन इस संसार के भिन्न भिन्न प्रकार के रूपों में दृष्टिपात आती रहती है। यह अग्नि अप्रताम् यह समिधा है। इस ब्रह्माण्ड की एक समिधा का नाम अग्नि है। मानो देखो, यह प्रदीप्त हो रही है। प्रत्येक प्राणी मात्र मुनिवरों! उस समिधा के प्रकाश में प्रकाशित हो रहा है, और अपने को प्रकाशमयी कहता रहता है। परन्तु देखो, हमारे यहाँ यागों का चलन नाना

प्रकार के रूपों में परणित किया है, जैसे हमारे यहाँ अग्निष्टोम याग है, ब्रह्मयाग है, वाजयेयी याग है, रुद्र याग है, विष्णु याग है, देवी याग है, कन्या याग है, मानो देखो, प्रथा याग है, गो मेध है, अश्वमेध याग है, नरमेध याग है, पुत्रेष्टि याग है, वृष्टि याग है, नाना प्रकार के यागों का चलन हमारे वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। उन यागों का भिन्न भिन्न प्रकार का कर्म है। भिन्न भिन्न प्रकार की उसकी प्रतिक्रियाएँ अथवा क्रिया कलाप मानवीय मस्तिष्कों में होता रहा है। इन्हीं यागों से उपराम होने के पश्चात् मानव विज्ञान में रमण करता है। विज्ञान की आभाओं में गति करने लगता है।

तो मेरे प्यारे! आज मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चाएँ देने नहीं आया हूँ। विचार केवल यह है कि हमारा मानवीय जीवन एक यज्ञोमयी कहलाता है। जितना भी कर्म है, माता अपने गर्भस्थल में पुत्र का निर्माण कर रही है। लोरियों में पान कराती हुई उसे शिक्षित बना रही है। तो माता याग कर रही है। मेरे पुत्रों! राष्ट्र अपनी आभा में गति करने वाला प्रजा को सुसज्जित मार्ग पर सुमार्ग पर लगाने वाले का कर्त्तव्यवाद की आभा को आभायित करना ही मुनिवरों! राष्ट्र का एक याग है। वह राजा याग कर रहा है। नियम में चला रहा है, नियमन कर रहा है, जैसे परमपिता परमात्मा सृष्टि का नियमन कर रहा है।

इसी प्रकार राजा अपनी प्रजा का नियमन कर रहा है। माता अपने पुत्र का नियमन कर रही है। मानो देखो, याज्ञिक यज्ञशाला में विद्यमान हो करके यज्ञमान से कहते हैं, तू नियमन कर, तू मानो देखो, इस नियम में अपने को ले चल और यज्ञ में तू वशीभूत हो जा। मेरे पुत्रो! देखो, उसमें वह नियमन कर रहा है, आभा में रमण कर रहा है। अब मैं विशेष चर्चाएँ तुम्हें प्रगट करना नहीं चाहता हूँ। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी बड़े उत्सुक रहते हैं अपने विचार प्रगट करने के लिए इनके हृदय में राष्ट्रीय समाज की बड़ी वेदनाएँ रहती हैं। परन्तु उस वेदना में परणित हो करके अपने विचारों को उद्बुद्ध करते रहते हैं। इनके विचारों से कोई न कोई साकल्य हमें प्राप्त होता है।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् देवा मया वर्णाश्चं ब्रह्मा यम ब्र्व्हे यश्श्चां गतप्प्रमाणां ब्रह्मा वाचन् नमाः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! ये जो हमारी वाणी है ये मृतमण्डल

में जा रही है। परन्तु अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अमृत की वृष्टि कर रहे थे। अमृत बिखेर रहे थे। जिस प्रकार पूर्णिमा के दिवस चन्द्रमा अपनी कान्ति के द्वारा अमृत को बिखेर देते है इसी प्रकार वह ज्ञान और विज्ञान की अमृतमयी धारा वृष्टि के रूप में वह बिखेरते रहते हैं। अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! नाना प्रकार के यागों का चयन कर रहे थे। उनमें अश्वमेध, अजायमेध, गो मेध और भी नाना प्रकार के यागों का वर्णन कर रहे थे। परन्तु जिस स्थली पर हमारी ये आकाश वाणी जा रही है उस स्थली को मैं सदैव वर्तमान के काल में मैं दृष्टिपात कर रहा था। सूक्ष्म रूपों से मानो वहाँ एक याग का आयोजन और याग का चयन हो रहा है। मेरा अन्तरात्मा बहुत प्रसन्न हो रहा है। परन्तु जहाँ आत्मा प्रसन्न है वहाँ कुछ देखो, मैं किसी काल में वंजना में अपने में शोकातुर हो जाता हूँ और मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मानव का जो कर्म फल है, मानव की कर्म की जो आभा है वह मानव को कहीं से कहीं ले जाती है। वह किन्हीं किन्हीं रूपों में कहीं न कहीं मानव को उस कर्म को आभा में बाध्य कर देती है। इसीलिए मैं अपने पूज्यपद गुरुदेव से यह कहा करता हूँ कि प्रभु! यह कैसा विचित्र जगत् है? इसमें कैसा कर्म फल है? कही वनों की आभा है और कहीं मानो देखो, वह भी दृष्टिपात नहीं होता।

हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैं इन वाक्यों में न जाता हुआ, आज मैं सबसे प्रथम जो अपने द्रव्य का यज्ञमान सदुपयोग करता है मेरे अन्तरात्मा की भावना यह कहती रहती है कि उनके जीवन का, सौभाग्य अखण्ड बना रहे। उनके जीवन की धाराएँ पवित्र बनी रहें, जिससे मानो देखो, वह अपने द्रव्य का सदुपयोग करते रहें। धर्म और मानवीयता का प्रसार करते रहें। क्योंकि आधुनिक काल का जो विज्ञान है, आधुनिक काल के जो वैज्ञानिक हैं, वह जिस भी काल में एकत्रित हो करके एक समूह स्थली पर विद्यमान होते हैं तो वह यह अवश्य विचारते हैं कि यह जो परमाणुवाद, यह जो हमने पृथ्वी के खनिज को ऊपरी भाग में ला करके उसको मानो देखो, अग्नि में भस्माभूत कर रहे हैं और वायुमण्डल को अशुद्ध बना रहे हैं, कोई काल ऐसा आ रहा है कि मानव को श्वास लेने मात्र में इसको कठिनाई हो जाएगी। ऐसा आधुनिक काल का वैज्ञानिक कहता है,

मैं नहीं कह रहा हूँ। आधुनिक काल का वैज्ञानिक यह कहता है कि ऐसा कोई हमे मार्ग हमें प्राप्त करना चाहिए, जिससे यह परमाणुवाद वायुमण्डल शुद्ध हो जाए। और अशुद्ध जो तरंगों का, परमाणु शक्ति का प्रादुर्भाव जो हो रहा है, मानो उसका जो चलन हो रहा है वह समाप्त हो जाए। वह निगला जाए किसी रूप में, परन्तु यह विज्ञान जब यह कहता है वैज्ञानिक वह ऋषि मुनियों क्या कर्म काण्ड क्यों नहीं विचारते हैं। ऋषि मुनियों ने बहुत परम्परगातों से ही सृष्टि के सृजन होने के पश्चात् अपना एक क्रिया कलाप बनाया था क्या हम याग कर्म करने वाले बनें। हम घृत और साकल्य के द्वारा, वनस्पतियों के द्वारा उसे हम अग्नि में प्रसारण करें। अग्नि उन परमाणुओं का भेदन करती है। एक एक परमाणु सहस्रों अशुद्ध परमाणुओं को निगलती हुई चली जाती है और वह वायुमण्डल में प्रवेश करके परमाणुओं का उनसे भेदन हो जाता है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी प्रगट कर रहे थे क्या अग्नि के द्वारा ये शक्ति है जो परमाणुओं का भेदन करती है। परन्तु मैं भी यही कहता हूँ, आधुनिक विज्ञान भी यह स्वीकार कर रहा है परम्परा का विज्ञान तो यह स्वीकार करता ही है आधुनिक काल का विज्ञान भी यह कहता है कि इस अग्नि में हम उस भेदन शक्ति को जानना चाहते हैं तो भेदन शक्ति के लिए आधुनिक काल का विज्ञान भी लगा हुआ है, ऋषि मुनि वेद के मन्त्रों के द्वारा अग्नि का अग्न्याधान करके पूजन करते हैं। आज कोई मानव कहता है कि मैं साम्यवादी हूँ, कोई मानव कह रहा है कि मानो देखो, मैं साम्यवाद की आभा में गति कर रहा हूँ। राजा भी भिन्न भिन्न प्रकार के विचारों के हैं। परन्तु उनके हृदय में भिन्न भिन्न प्रकार की विचारधारा हैं। आधुनिक काल में, इस प्रकार की विचारधारा हैं एक राष्ट्र एक सम्प्रदाय का राष्ट्र बना हुआ है, वह यह चाहता है कि अपठित समाज जितना रहेगा, उतना ही हमारा यह राष्ट्र बना रहेगा। एक राष्ट्र यह चाहता है, क्या समाज में मानो प्रजा में जितना विभाजन विचारों का रहेगा, कुटिलता रहेगी, विचारों में उतना तुम्हारा राष्ट्र बना रहेगा। एक राष्ट्रवेत्ता यह चाहता है आधुनिक जगत् का क्या जितना प्रजा को दमन करके हमारी दमनशील हमारी प्रवृत्ति बनी रहेगी तब तक हम धिराज बने रहेंगे। परन्तु इन वाक्यों को विचारने वाला विचार नहीं रहा है कि हमारे

यहाँ ऋषि मुनियों ने याग जैसे कर्म को इस प्रकृति के भयंकर वन में से ऋषि मुनियों ने एक यन्त्र का निर्माण किया था और यह यन्त्र क्या था? पृथ्वी के ही द्वारा उन्होंने एक यज्ञशाला का निर्माण किया था। उस यज्ञशाला में देव पूजा, संगतिकरण, दानेषु यह सब आ जाते हैं और पञ्च यज्ञों का वर्णन आता है, पञ्च याग कहते हैं सबसे प्रथम ब्रह्मयाग है, प्रभु का चिन्तन करना, द्वितीय देव पूजा है, अग्नि होत्र में यज्ञाशाला में आहुति देना। मानो देखो, अपने साकल्य को हम अग्नि को प्रदान करें। अग्नि उन परमाणुओं का भेदन कर देती है। वायुमण्डल और गृह शुद्ध हो जाते हैं उसके पश्चात अतिथि कोई आ रहा है तो मानो अपने भोज्य में से उसको भोज्य कराना मानो एक यज्ञां भविते ब्रह्माः जो अस्वति कहलाता है जो गृणीत कहलाता है, जिसको हम बलिवैश्व कहते हैं, मानो भूत यज्ञ कहते हैं, ये यज्ञों का कर्म इसीलिए माना है जिससे समाज में एक दूसरे से सम्पन्न हो करके, एक दूसरे को मानो देखो, सहायता दे करके प्राणी मात्र का कल्याण करने वाले बनें।

जैसे परमपिता परमात्मा ने यह सामान्य जगत् रचा है। यह सामान्य जगत् कैसा है? एक प्राणी, प्राणी को सहायता दे रहा है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इससे पूर्व काल में उच्चारण कर रहे थे कि एक प्राणी, प्राणी का सहायक बना हुआ है। प्राणी, प्राणी का सहायक बन करके इस संसार का कल्याण हो रहा है। गो दूध देती है मानव के लिए औषधि का कार्य करती है। मानो प्रत्येक प्राणी मात्र इस प्रकार बिंधा हुआ है। प्रत्येक प्राणी अपने विचारों का जो उनके द्वारा हैं वह उसका भेदन कर रहा है। उसको वह प्रसार रूप में प्रदान कर रहा है और उसमें विशेष कर उत्तिष्ठित माना गया है। विचार विनिमय यह कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कल के वाक्यों में प्रगट कर रहे थे हनुमान जी के विज्ञान की चर्चाएँ, सम्पाति के विज्ञान की चर्चाएँ परन्तु जब मैं आधुनिक काल के जगत् के साहित्य को दृष्टिपात करता हूँ, तो मेरा हृदय मानो बड़ा दुःखित होता है और मैं यह कहता हूँ कि हे राजन्! हे आधुनिक काल के राजा! तू अपने साहित्य को ऊँचा बना। हे प्रजाओ! हे रूढ़िवादी सम्प्रदायओं! तुम आकर के प्रभु को उस रूप में स्वीकार न करो जिससे तुम्हारा साहित्य मानो देखो, एक अन्धकार कूप में चला जाए। जैसा

हमारे यहाँ मुझे स्मरण है जैसे आधुनिक काल में सम्पाति को एक गिद्ध के रूप में प्रगट करते हैं, जो गिद्ध नाम का पक्षी है जैसे गरुड़ जो रावण से संग्राम किया था जब सीता को ले जा रहे थे, मानो आधुनिक काल का जो यह मानव समाज है उस गरुड़ को भी एक गिद्ध और गरुड़ के रूप में स्वीकार कर रहा है। मैं यह नहीं जान पा रहा हूँ कि हे भोले साहित्य वालो! तुम्हारे चक्षु क्यों नहीं प्रकाश में आ रहे हैं? क्यों इस मानो देखो, तुम इस साहित्य को प्रकाश में लाने का प्रयास करो। एक राजा को तुम गिद्ध बना रहे हो, एक वैज्ञानिक को जो सूर्य की किरणों के साथ वायुमण्डल में गति करने वाला वैज्ञानिक हो उसे भी मानो देखो, गिद्ध के रूप में परणित किया जा रहा है। हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैं इस संसार के इस आधुनिक जगत के जगत् के साहित्य के ऊपर एक मानो देखो, मैं किसी काल में दुःखित हो जाता हूँ और यह कहता हूँ कि महापुरुषों को जिन्होंने ऋषि मुनियों के चरणों में विद्यमान हो करके, विद्याओं का अध्ययन किया हो, जिन्होंने ऋषि मुनियों के आभाओं में मानो उनके ज्ञान को और विज्ञान को निगल करके ऊर्ध्वा गति को प्राप्त होते रहे हों, मैं यह नहीं जान पा रहा हूँ। इस साहित्य के ऊपर मानव क्यों नहीं विचार विनिमय कर रहा है। क्योंकि आधुनिक काल में मानव अपने को यह कहता है कि मैं सनातन से चला आ रहा हूँ। अरे, जब तुम्हारे पूर्वजों को गिद्ध की श्रेणी में परणित किया गया तो तुम सनातन किस प्रकार के हो? कौन सी सनातनता तुम्हारे हृदयों में है?

मानो देखो, जब मैं हनुमान जी के जीवन में ऊपर प्रकाश लेता हूँ, एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यह आज्ञा दी कि तुम हनुमान जी की विज्ञानशाला दृष्टिपात करके आओ, वे हनुमान जी इतनी गम्भीर मुद्रा में रहते थे क्या मानो देखो, उसकी मुद्रा का मैं वर्णन नहीं कर सकता। जैसे ऋषि मुनियों का पवित्र महापुरुषों का एक जीवन होता है। वह सदैव मैं जब उनके यहाँ दो रात्रि उनके यहाँ विश्राम किया तो वह प्रातः काल मानो देखो, मध्य रात्रि के द्वितीय प्रहर में अपने को जागरूक करना और यह बहुत सूक्ष्म निद्रा में रहते थे। परन्तु देखो, उनकी निद्राएं अस्वान रहती थी अस्वान निद्रा में अपने को परणित करते रहे। उसके पश्चात् जब मुझे उनका जीवन स्मरण आता

है, वह प्रातःकालीन अपनी शारीरिक क्रियाओं से निवृत्त हो करके प्रभु का चिन्तन और देखो, दर्शनों के ऊपर अध्ययन किया करते और अध्ययन करते हुए उसके पश्चात् वह संसार के कार्यों में रत्त रहते। नाना प्रकार के यन्त्रों को ला करके सूर्य की किरणों से उनका मिलान करते थे। सूर्य की किरणों से वह विद्युत लेते थे। उस विद्युत से मानो देखो, उनके यहाँ यन्त्र गति करते थे। वह यन्त्र अपनी आभा में गति करता रहा है परन्तु देखो, सूर्य की किरण के साथ सूर्य से उस यन्त्र का समन्वय रहता था। परन्तु देखो, आधुनिक काल वर्तमान का जो काल चल रहा ऐसे महापुरुष को, ऐसे गम्भीर मुद्रा वाले हनुमान को वानर की संज्ञा दे करके उनके वास्तविक तथ्य को नष्ट किया जा रहा है।

मैं जब इन वाक्यों में जाता हूँ क्या हे भोले राजा! तू अपने साहित्य को ऊँचा बना साहित्य में कुरीति जब आ जाती है तो उनकी सनातन परम्परा समाप्त हो जाती है उस मानो देखो, धर्मज्ञ उसके पूर्वजों को जब गिद्ध की रूप में परणित किया जाता है तो उसकी आभा समाप्त हो जाती है। परन्तु रहा यह अब मैं द्वितीय वाक् पर आता हूँ जब मैं यह विचारता रहता हूँ कि ऋषि मुनियों ने किसी रूप में याग जैसे उत्तम कर्म को, श्रेष्ठतम कर्म को निर्धारित किया है। वेद का मन्त्र वेद की आख्यिका कहती है, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं कि श्रेष्ठ ही महान कर्म हैं इससे ऊँचा कोई भी कर्म नहीं है। याज्ञवल्क्य ऋषि महाराज ने अपने मानो देखो, शतपथ ब्राह्मण नाम की पोथी में जब मैंने उसका अध्ययन किया तो उसमें कोई दो सौ प्रकार के यागों का उन्होंने चयन किया है। एक वाजपेयी याग है, जैसे हमारे यहाँ लोककेतु नाम का याग कहलाता है, अस्वति कहलाता है, अजामेध, अश्वमेध गो मेध, नरमेध नाना प्रकार के यागों का चलन हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में आता रहा है। परन्तु जब याग को जब हम यह स्वीकार करते हैं, सब महापुरुषों ने यह स्वीकार किया कि याग जो कर्म है, वह श्रेष्ठ है और मानव की मुक्ति की एक इकाई कहलाती है। याग के द्वारा मानव के जीवन की आभा का प्रारम्भ होता है एक इकाई का प्रारम्भ होता है। जैसे नाना प्रकार के साकल्य और समिधा अग्नि में भस्म करके संसार को सुगन्धि देते हैं। इसी प्रकार मानव का कर्त्तव्य

है कि मानव अपने को विचारों में सुगन्धित बना करके मानो देखो, अपने द्वितीय को सुगन्धिदायक बनाए अपने को न होने के तुल्य स्वीकार कर लें। तो जब इस प्रकार का निरभिमानता याग कर्म कराता है हमसे तो मानो देखो, यह मुक्ति की इकाई मानी गई है, परन्तु मध्यकाल, महाभारत का काल किस प्रकार का भयंकर काल आया जो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आपने पूर्व कालों में भी वर्णन किया है। आज भी मैं उन वाक्यों की पुनरूक्ति कर रहा हूँ।

आधुनिक काल कुछ इस प्रकार का रहा है कि इस वैदिक साहित्य में नाना प्रकार की सम्प्रदाएँ बनीं। उनमें नास्तिक वाद बना। नास्तिकवाद क्यों बना क्योंकि इसमें नाना प्रकार के स्वार्थी बुद्धिमान बन करके उन्होंने अपने वेद की आभा में वेद की अग्नि में लग गए बाह्य अग्नि को नहीं विचारा। जब बाह्य अग्नि को विचार लेते तो इस साहित्य इस प्रकार नष्ट नही होता। उन्होंने वैदिकता को नष्ट करने के लिए क्या नहीं किया? मानो देखो, उन्होंने गो गेध याग का वर्णन जब वैदिक साहित्य में आया तो गो मेध याग का वर्णन जब वैदिक साहित्य में आया तो गो मेध का अभिप्रायः कि अग्नि में गऊ के मांस की आहुति देना उन्होंने प्रारम्भ कर दिया। जब प्रारम्भ किया तो कुछ सम्प्रदाय उन्होंने कहा कि यज्ञ में जहाँ सुगन्ध में गो माँस की आहुति दी जाती है तो ऐसा याग हम स्वीकार नहीं करेंगे। वह नास्तिक सम्प्रदाय बनी। परिणाम यह हुआ कि याग जैसी परम्परा बुद्धिमानों के महाहस्तों के द्वारा न होने से वो जाने लगी। विचार आया जब मैं इन विचारों को लेता हूँ कि क्या यह कैसा आपत्ति काल आया है समाज पर? जहाँ गो मेध याग का यह अभिप्रायः था क्या विद्यालय में जब ब्रह्मचारी प्रवेश करता है, तो ब्रह्मचारी और आचार्य दोनों मिल करके गो मेध याग करते हैं, गो अन्धकार को कहते हैं। तमं ब्रह्मा प्रकाशं दिव्या वेद की आख्यिका कहती है क्या गो शब्द है गो नाम पशु का है और मेध नाम विद्या का है, जब ब्रह्मचारियों को विद्यालयों में देखो, पशु के तुल्य जो ब्रह्मचारी है, उसे मेध में परणित कराया जाता है तो उसे हमारे यहाँ गो मेध याग कहते हैं। उसको गो मेध उसका ऊर्ध्वा में उसके अर्थो का अनर्थ हो गया। मानो देखो, अश्व मेध याग हमारे यहाँ राजा करते हैं। राजा अश्वमेध क्यों कर रहा है? अश्व नाम

घोड़े का है। अश्व नाम राजा का है, अश्व नाम सूर्य का है। अश्व नाम परमपिता परमात्मा का है, अश्व नाम आत्मा का है, परन्तु जो गति देने वाला मेध है अश्व नाम राजा का है मेध नाम प्रजा का है। जो राजा और प्रजा दोनों मिल करके राष्ट्र का संचालन करते हैं, राष्ट्र को बुद्धिमत्ता देते हैं और वह मानो सुगन्धिदायक यज्ञशाला में यज्ञ होता है वह अश्वमेध याग करता है राजा और प्रजा को एकत्रित करके उसे कहता है तुम अश्वमेध यागी बनो। तो राजा का नाम अश्वमेध नाम प्रजा का, इस प्रकार से मानो देखो, यागों का चलन हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में आता रहा है।

परन्तु जब मैं आधुनिक काल के राष्ट्र की मध्य काल का स्मरण कराता हूँ, तो अश्वमेध याग का उन्होंने यह अर्थ लगाया कि क्या उन्होंने देखो, घोड़े के माँस की आहुति देना याग में प्रारम्भ कर दिया। उसके शुद्ध रूप को न जान करके उन मानो स्वार्थी बुद्धिमानों ने, बुद्धिमान तो मैं नहीं कह सकता उन्होंने केवल उदर की पूर्ति करने का प्रयास किया है। उदर की पूर्ति के लिए यागों का चयन किया है। उनको मैं कदापि बुद्धिमान नहीं कहता। उन्हें हम धूर्त कहते हैं, उन्हें हम पामर कहते हैं। अपनी भाषा में परन्तु देखो, उन्हें हम निष्क्रिय कहते हैं। विचार विनिमय क्या इसी प्रकार नाना प्रकार की सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ। उन सम्प्रदायों में राष्ट्रवाद बना। परन्तु एक जैन समाज हुआ आधुनिकतां ब्रह्मणे व्रता जिन्होंने यह कहा कि हम ऐसे यज्ञ को स्वीकार नहीं करते हैं। हम ऐसे वेद को स्वीकार नहीं करते। परन्तु वेद की आभा में वैदिक साहित्य की जितनी पोथियाँ थी जो शतपथ ब्राह्मण, गो पथ ब्राह्मण और भी नाना प्रकार की पोथियों थी, सूर्य विद्या पर, चन्द्र विद्या पर, परमाणु विद्या पर जो नाना प्रकार की पोथियाँ थी वह जैन काल में अग्नि के मुख में परणित हो गया। परिणाम यह हुआ कि उस सम्प्रदाय ने वेद को नहीं विचारा उन बुद्धिमानों ने। मैं विचारता रहता हूँ कि वेद ऐसा एक प्रकार की ज्ञान को कुञ्जी है जो संसार का ज्ञान और विज्ञान उसमें निहित रहता है। परन्तु देखो, उन्होंने वेद के एक अंग को ले लिया। सर्वांग को त्याग दिया। उस त्यागने का परिणाम यह हुआ कि समाज अन्धकार में चला गया। परन्तु देखो, आज मैं इस आभा

में, द्वितीय काण्ड में नहीं जाना चाहता हूँ।

विचार विनिमय यह कि आधुनिक काल में आज के दिवस में यागों का चयन कर रहा हैं। मेरा अनतरात्मा बड़ा प्रसन्न हो रहा था कि महापुरुष आ करके कोई न कोई किसी पद्धति का चयन कर जाते हैं और वह पद्धति सर्वोपरि बन जाती है। रहा यह कि वह सत्यवाद होता है वह मिथ्या सम्प्रदायों से या मिथ्या वाक्यों से उसका दमन भी नहीं होता। वह सदैव किन्हीं न किन्हीं रूपों में परणित रहते है। हमारे यहाँ वाजपेयी जो याग है वाजपेयी याग का अभिप्रायः यह है कि यज्ञमान सह पत्नी विद्यमान हो करके अपने वाक्यों को वेद के पुरोहित के द्वारा सुगन्धि के लिए याग कराते हैं। उसमें साकल्य भिन्न होते हैं, कील की समिधा होती है, आक की समिधा होती है, मानो देखो, वट वृक्ष की समिधा ले करके याग करते हैं और उन यागों के कर्म काण्ड में पूज्यपाद के समीप वर्णन नहीं कर सकता क्योंकि यह विशेषकर इन यागों के विशेषज्ञ रहे हैं। विचार केवल हमारा तो इतना ही है कि इन वाजपेयी यागों में देखो, आधुनिक काल बैल की बलि देता है। आधुनिक काल की उन पोथियो में बैल की बलि का वर्णन आया है परन्तु विचारा नहीं कि बैल की बलि का अभिप्रायः क्या है? बलि का अभिप्रायः है उससे क्रियात्मक कर्म कराना। मानो देखो, वाजपेयी याग यह है क्या वाजपेयी याग कहते है वाचां वाचस्सुति ब्रो वाचन्न नमा अश्वतं वाचां सुति असुतो यह मानो देखो, व्याकरण की प्रतिभा है जिसमें वाचः वाचम् ब्रह्मणे अस्तोः जब वाचा वाचा होती है तो मानो देखो, वाचा कहते हैं इसको तीव्र गति से उच्चारण करो तो इसको नाम वृष्टि बन जाता है। जब यह वृष्टि बन जाती है, वृष्टि होते ही उस समय बैल की बलि का वर्णन आया है तो उसका अर्थ क्या है कि जब सोम की वृष्टि हो जाती है। वाचं वाचन ब्रहे असुतां मानो देखो, जब मेधों से वृष्टि हो जाती है, उस समय बैल को देखो, इस भूमि के गर्भस्थलों में इसमें मानो बीज की स्थापना करते हैं, यह मानो देखो, इस आभा को ले करके वाजपेयी यागों को न जान करके यहाँ के पामर व्यक्तियों ने स्वार्थी जो अपने को ब्राह्मण कहते थे परन्तु उन्होंने बैल की आहुति देना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु देखो, वाचा न स्वीकार करते हुए इस प्रकार का अज्ञान जब समाज में आ जाता है तो समाज

निष्क्रिय बन जाता है। समाज में नाना प्रकार की जातीयता आ करके राष्ट्र का विनाश हो जाता है। परिणाम यह कि इन वाक्यों को कैसे विशुद्ध रूपों में किया जाए कोई धिराज राजा पवित्र आ जाए तो इस आभा को मानो पुनः से परणित कर सकता है। जब मैं इन वाक्यों में जाता हूँ कि यह जो वाजपेयी याग है, अग्निष्टोम याग है, नाना प्रकार के यागों का चलन मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से किसी काल में प्रार्थना करूँगा कि इनका व्यापक रूप मुझे प्रगट कराएँ किसी काल में जिससे देखो, मैं भी इतना नहीं जान पाता।

परन्तु विचार क्या है कि आधुनिक काल में मैं तुम्हें परिचय दे रहा हूँ और वह परिचय यह है क्या परिचय इसीलिए दे रहा हूँ समाज में शब्दों के अपभ्रंश होने से, शब्दों की प्रतिभा विशुद्ध रूप न रहने से स्वार्थी पुरुषों ने इस धर्म और मर्यादा को, मानो देखो, ज्ञान को किस प्रकार नष्ट करने में परणित हो गए, परन्तु विचार यह आता रहता है, मैं पूज्यपाद गुरुदेव के समीप विशेष चर्चा प्रगट करने के सुयोग्य नहीं हूँ विचार केवल यह कि मैं यह विचार रहा हूँ कि मैं उस यज्ञमान को अपने मुखारबिन्दु से अपने में प्रसन्न होता हुआ कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। मानो तेरे जीवन की धाराएँ पवित्रता में रमण करें जिससे तू अपने द्रव्य का सदैव देव पूजा में, याग जैसे पवित्र कर्मों में तेरे द्रव्य की आभा प्रगट होती रहे और वह देवता के रूप में मानो जिसको मिथ्या आधुनिक काल का वैज्ञानिक इस आभा में लगा हुआ है। यहाँ से उत्तर की दिशा में पृथ्वी पर हिमालय के आँगन में एक राष्ट्र है वहाँ का वैज्ञानिक यह कहता है कि गो के घृत में कुछ ऐसी विशेषता है, अग्नि में प्रवेश करने से भस्म करने से उसमें से कुछ तरंगे ऐसी उत्पन्न होती है कि एक परमाणु उससे उत्पन्न हुआ है तो वह सहस्रों परमाणुओं को निगलता हुआ वायुमण्डल को शुद्ध बनाता है। परन्तु कुछ राष्ट्र के वैज्ञानिकों का यह मन्तव्य बन गया है। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों का इतना महान् परोपकार रहा है उन्होंने इस कर्मकाण्ड को परम्परगतों से ही मानो सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे प्रगट कराया था कि ब्रह्मा के चार पुत्र थे। ब्रह्मा के चार पुत्रों! का नाम एक का नाम अथर्वा एक का नाम ऋषि, एक का नाम सुकेतु

एक का नाम सत्कामेश्वर था। मानो देखो, इन चारों ऋषियों ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही यज्ञ का आयोजन किया। इन्होंने अपने शरीर को जाना, शरीर को जान करके, गुरु ब्रह्मा के चरणों में ओत प्रोत हो करके यज्ञ विद्या को जाना। मानो इस विद्या ने उन्हें प्रभावित किया और ये विद्याएँ परमाणुवाद को शुद्ध बनाने के लिए पवित्र सिद्ध हुईं। परिणाम यह कि वह चलन परम्परगतों से चल रहा है। आधुनिक काल में भी चल रहा है। वो मानो देखो, माँस के भक्षण करने वाले प्राणी अज्ञानता में आते हैं और चले जाते हैं। अज्ञान समाप्त हो जाता है। वेद प्रकाश ज्यों का त्यों बना रहता है। याग जैसा कर्म यदि सुषुप्ति में रहता है असत्यता से दमन हो जाता तो यह हो जाता। परन्तु यह सत्य है, अपने में पूर्ण है, अपने में सार्थक है, अपने में मानो देखो, शुद्ध वायु को प्रसारण करने वाला है यह इसीलिए सत्य में रहते हैं इसको मानो कोई भी अज्ञानी समाप्त नहीं कर सका। कोई न कोई महापुरुष आता रहता है, इसका प्रसार चलता रहता है। एक बुद्धिमान यह विचारता है यह क्या कर रहे हैं? देखो, अग्नि के समीप विद्यमान हो करके वह अग्नेय स्वाहा उच्चारण कर रहे हैं, परन्तु बुद्धि के जब पटल मानो प्रकाश में आते हैं तो यह विचारता है कि यह कोई रहस्य है। उस रहस्य में चला जाता है तो वह महापुरुष उस मानो देखो, यज्ञ की अग्नि के साथ साथ अपने में विज्ञान को ले जाता है और जहाँ विज्ञान में उसकी बुद्धि का मन्तव्य मानो समाप्त हो जाता है परन्तु याग द्यौ लोक में प्रवेश कर जाता है। इस प्रकार देखो, मानवीय अपने में परम्परागतों से विचारता रहा है और विचारना चाहिए। कोई भी मानव कर्म कर रहा है उसके अन्तिम छोर पर जाना चाहिए। उसमें अनुसन्धानित होना चाहिए। परन्तु देखो, द्रव्याणि हमारे यहाँ हमारे ऋषि मुनि मुझे वह काल स्मरण हैं पूज्यपाद गुरुदव तो वर्णन कराते रहते हैं क्या महाजन मंगलम् ब्रहेः ऋषि मुनि काम धेनु गऊएँ रहती थीं उनके आश्रम में उनके दुग्ध का और देखो, घृत के द्वारा याग करते थे और वह स्वयं मानो देखो, उस अन्नाद और पंचांगों को वृक्षों की छालं कृतियों का पिपाद बना करके पान करते थे और गो दुग्ध और घृत के द्वारा याग करते थे। उन यागों से वह आध्यात्मिकवाद भौतिक विज्ञान दोनों

को जानते, यह समाज अन्धकार में नहीं रहता था।

आधुनिक काल का समाज अन्धकार में है। एक वैज्ञानिक कहता है कि आधुनिक काल में अप्रतां देवा सूर्य के अन्तर्गत कई मण्डल, कई लोक एक धारा में आ रहे हैं, एक लाइन में आ रहे हैं। एक धारा में आ करके मानो देखो, इस समाज का अनिष्ट होने वाला है। समाज को त्रास दे रहा है। यह सब इसीलिए है कि विज्ञान में अधूरापन है।

.....शेष अनुपलब्ध। निवास स्थान : श्री मनसा राम जी मोदी नगर।

६ 04 11 1982 पुष्प 46 त्रिगुणात्मक प्रकृति से ही प्रभु द्वारा

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव की महिमा का गुण गान गाया जाता है, क्योंकि वह जो चैतन्य देव है जो इस संसार को धारण कर रहा है, वह अग्नि बन करके इस संसार को तपायमान कर रहा है। वही इन्द्र बन करके इस संसार को विद्युत की धाराएँ प्रदान कर रहा है। वही देव वरुण बन करके मानव के अन्नाद वीर्यत्व को प्राप्त करा रहा है। वही मेरा देव सोम की वृष्टि करने वाला है। बेटा! विचार आते रहते हैं कि वह कोई भी स्थान, कोई भी दिशा ऐसी नहीं है जहाँ वह अग्नि बन करके प्रकाश दे रहा है। कहीं विद्युत बन कर के तेजस्वी बना रहा है। अन्नाद को दे करके यही मेरा प्यारा प्रभु मानव को वीर्यत्व की प्राप्ति करा रहा है। मेरे प्यारे! वही उदीचि में रहने वाला सोम बन के सोम की वृष्टि कर रहा है। नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन करने वाला यह मेरा देव सर्वत्र हमें दृष्टिपात आ रहा है।

जब हम यह विचारने लगते हैं कि हमारा देव इतना महान् है, वह इस संसार का पुत्र बना हुआ है। वह कहीं समुद्र के आँगन में बड़वानल नाम की अग्नि बन करके समुद्रों को तपा रहा है। यदि समुद्र में बड़वानल नाम की अग्नि न हो, तो मेरे प्यारे! यह पृथ्वी भी न रहेगी। वह बड़वानल नाम की अग्नि महान् समुद्रों को तपाती रहती है और समुद्रों में जब विषारोपण हो जाता है कहीं यह अग्नि उग्र रूप धारण करके समुद्रों में जल

पलायरण के रूप में परिणित हो जाती है। वही अग्नि समुद्रों में रहने वाली है। इसे आचार्यों ने बड़वानल नाम की अग्नि से पुकारा है और यह कहा है कि संसार को तपायमान करती हुई, उसी चेतना में यह जगत वेतनामयी दृष्टिपात आ रहा है जिसके ऊपर परम्परागतों से मानव अनुसन्धान करता चला आया है। विचार आते रहते हैं कि मानव अपने में कितना महान् बनना चाहता है? जब तक उसमें महत्ता नहीं आएगी, जब तक वह अपने प्रभु को अपने में दृष्टिपात नहीं करेगा। मानव अपने में दृष्टिपात करता रहे वह जो अन्तं हृदय रूपी गुफा में विद्यमान होने वाली जो चैतन्य आत्मा है उसके ऊपर भी मानव को निहारना चाहिए। प्रातःकालीन साधक अपने आसन पर विद्यमान हो करके उस के विरह में अश्रुपात करता रहता है और वह यह कहता है कि हे प्रभु! तू मेरा सूत्र है। मेरा ही नहीं इस ब्रह्माण्ड का सूत्र है। जैसे माला है, माला में मनके हैं वह धागों में पिरोए हुए हैं परन्तु वह माला के सदृश्य बन करके उसे मानव माला कहता है क्योंकि दोनों के समन्वय का नाम का नाम ही माला है। परन्तु उसी प्रकार हमारा श्वास पर श्वास गति कर रहा है। उसका भी कोई सूत्र होता है। वह भी अपने में माला बनकर के मानव को प्रभु से मिलान कराता है। दोनों का समन्वय हो जाता है। मुनिवरों! वह जो मेरा देव परमपिता परमात्मा है वह सूत्र है और मानव का प्रत्येक जो श्वास है, श्वास पर श्वास गति कर रहा है, वह उस सूत्र के मनके हैं। जब मनके पिरो दिए जाते हैं प्रत्येक श्वास ओ३म् रूपी धागे में पिरो दिया जाता है, सूत्र में पिरोने वाला अपने को धन्य स्वीकार करता है और वह प्रभु की कृति को दृष्टिपात करने लगता है।

तो विचार क्या? बेटा! हमें अपने को पिरोना है जैसे शब्द किसी में पिरोया हुआ है। शब्द की उत्पत्ति हो रही है। शब्द गान रूप में गाया जा रहा है। वेदमन्त्र ध्वनि से गाया जा रहा है। उसका कोई सूत्र है। मुनिवरों! वेद में ओ३म् का उच्चारण किया जाता है हमारे यहाँ, परम्परागतों से सर्वभौम सिद्धांत माना गया है। जब ओ३म् का जब वेद की ध्वनि का उच्चारण करते रहते हैं उसके पश्चात् ओ३म् कहते हैं, म की आभा में मानव रत्त हो जाता है। मुनिवरों! अग्र नाम अ जो है यह ईश्वर का वाची शब्द कहलाता है।

हमारे यहाँ जीवात्मा का वाची शब्द कहलाता है। म यहाँ प्रकृति का वाची शब्द कहलाता है। मेरे प्यारे! जब ओ३म् के आँगन में मानव गति करता है ओ३म् उच्चारण करके वर्चस्व उच्चारण करता है। अग्नि को चेताने का प्रयास करता है। ओ३म् रूपी धागे में ओ३म् रूपी सूत्र में प्रत्येक वेद की जो ऋचा है वह पिरोई हुई है। वह एक माला के सदृश्य बन जाती है। उस माला को कौन धारण कर रहा है? उस माला को वेद का पठन पाठन करने वाला और उसके पश्चात् उसमें विवेक हो, विवेक ही करके वह उसको धारण करता है। अपने में महान् बनने का प्रयास करता है और वह कहता है कि मैंने इस माला को धारण किया है जिस माला को धारण करने के पश्चात् मुझे और माला की आवश्यकता नहीं है। मुझे स्वर्ण के गहनों की आवश्यकता नहीं है। मेरा कण्ठ उस माला से सजातीय बन गया है। मेरा जो अंग अंग है उस माला में पिरोया हुआ है जैसे वेद का प्रत्येक मन्त्र ओ३म् रूपी धागे में पिरोया हुआ होता है और वह जो ओ३म् रूपी धागा है उसमें वेद की ऋचा में ज्ञान है, विज्ञान है, तरंगवाद है, परमाणुवाद है। मुनिवरों! सर्वत्र जो विवेचना उसके गर्भ में विद्यमान है ऋचा के वह ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोई हुई है। इसीलिए हमारे आचार्यों ने यह कहा है कि जितना संसार का ज्ञान और विज्ञान है, उसका कोई सूत्र है और वह सूत्र में पिरोया हुआ कोई नृत्य है, कृत्य हो रहा है जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से ही, कहीं साधना के रूप में, कहीं विज्ञान के रूप में, कहीं भक्ति के रूप में, कहीं सेवा के रूप में, कहीं वह शान्त मुद्रा में विद्यमान हो करके उसको निहारता रहता है, उसको आभायित करता रहता है।

तो विचारना यह है कि उसका कोई सूत्र है और वह सूत्र ओ३म् रूपी धागा है। हम विचारने वाले बनें कि अ जो नाम है वे परमपिता परमात्मा का है, ऊ का जो वाची शब्द है वह जीवात्मा का वाची है और म जो शब्द है इस म में ही मानो सर्वत्र विचार, सर्वत्र जगत् विद्यमान है और मैं ही मैं पुकारता हुआ मानव अपनी प्रतिभा को नष्ट कर देता है। वह कह रहा है कि यह मेरा पुत्र है मेरे प्यारे! कहता है कि यह मेरा पति है। यह मेरा कुटुम्ब है। देखो, मैं ही मैं में जीवन की प्रतिभा समाप्त हो जाती है परन्तु जब वह प्रभु के आँगन में जाता है तो मुनिवरों! वह तीनों गुणों वाला कहलाता है। जब मैं

के क्षेत्र में आता है, वही छत्रणाम् ब्रह्मणो कुटबप्रवः मेरे प्यारे! वह छ आभा को लेकर के आता है। उस छ आभा में सर्वत्र जगत् विद्यमान है। परन्तु जब यह सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के क्षेत्रों में प्रभु के समीप जाता है यह तीनों गुणों को लेकर के वह मानव यदि संसार में आया है तो इन तीनों गुणों के बिना भी मानव का जीवन नहीं चलता। यह तीनों गुण होने चाहिए। जैसे वेद के मन्त्र में सर्वत्र ज्ञान और विज्ञान विद्यमान है परन्तु उसके पश्चात् भी वह ओ३म् रूपी धागे में पिरोया हुआ है। इसी प्रकार मानव तीनों गुणों वाला होना चाहिए, परन्तु उसका कोई सूत्र होना चाहिए। सतोगुण में रमण करने वाला मानव सत् की प्रतिभा में गति करता है। वह सत् कह रहा है, सत् उच्चारण कर रहा है। कह रहा है मैं सत्य हूँ। सत्य में रमण करने वाला प्राणी अपने में सतोगुणी कहता है। सतोगुणी मानव कौन होता है? वह प्रातःकालीन प्रभु की उपासना करता है, प्रातःकालीन जब ब्रह्मयाग करता है, ब्रह्मयाग करते करते उसके अश्रुपात हो जाते हैं। उसके स्नेह में, उसकी आभा में जब अश्रुपात होते हैं तो कहता है, हे प्रभु! मुझे तुम किस काल में अपनाओगे? एक माता का पुत्र क्षुधा से पीड़ित होता है, माता उसे अपने हृदय से आलिंगन करके लोरियों का पान कराके उसकी क्षुधा को दूरी कर देती है। इसी प्रकार वह भक्त कहता है, वह यथार्थी कहता है सत्यवादी हे प्रभु! मुझे किस काल में तुम अपनी गोद में लोगे? मैं तुम्हारे द्वार पर आना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! सतोगुणी जो प्राणी है वह अपने को प्रभु में पिरोने के लिए तत्पर हो जाता है। विचारता रहता है प्रभु! मैं आपको निहारना चाहता हूँ। मैं आपको अपने अन्तर्हृदय में, अन्तरात्मा में धारण करना चाहता हूँ। मेरे पुत्रो! वह सतोगुणी प्राणी है।

रजो गुणी कौन है? रजो गुणी उसे कहते हैं जो मानव सत्य के शासन को ले करके गति करता है। मेरे प्यारे! बिना अनुशासन के मानव का जीवन नहीं चलता। अनुशासन होना चाहिए। परन्तु वह अनुशासन उसका प्रभु में पिरोया हुआ होना चाहिए। प्रभु से उसका समन्वय होना चाहिए। तो मेरे प्यारे! वह एक धिराज बना हुआ है। जो मानव न्याय कर रहा है, रजोगुणी आभा में पिरोया हुआ है। परन्तु सत्य का जो आधार है वह रजोगुण सत् में पिरोया हुआ है। यदि सत्य नहीं रहेगा तो मानव न्याय नहीं कर सकेगा।

वह न्याय उस काल में करता है जब उसके द्वारा सत्य विद्यमान है। यदि सत्य नहीं होगा तो न्यायकारी नहीं हो सकता। तो मेरे प्यारे! इसलिए वह सत्य रजोगुण में पिरोया हुआ है। रजोगुण को अपने में धारण करके सत्य की धारा पर वह प्रभु के ऊपर त्याग देता है, वह हृदय से जब न्याय करता है तो मुनिवरों! उसका रजोगुण धिराज बन करके प्रजा का पालन कर रहा है, धिराज बन करके प्रजा को कह रहा है, हे प्रजाओ! तुम अपने कर्त्तव्य का पालन करो। जब तुम अपने कर्त्तव्य का पालन करोगे तो तुम्हारा यह जो रजोगुण है, सतोगुण है, दोनों का समन्वय होकर एक कर्म की माला बन जाएगी। एक कर्म की माला बन करके मानव अपने में कर्मठ होता चला जाएगा। मुझे स्मरण आता रहता है, बहुत से राजाओं का काल। महाराजा अश्वपति के पिता ने धिराज बना करके उनके पिता भयंकर वन को चले गए। तपस्या में परणित हो गए और राजा अश्वपति ने राज्य का कार्य अपने हस्त में लिया तो उनका क्रिया कलाप क्या? प्रातःकालीन वह अपने गृह में याग करते थे। मुनिवरों! जब गृह में याग होता है तो राष्ट्र में भी याग होता है। राष्ट्र में याग होता है तो प्रत्येक प्रजा में याग होता है।

प्रातःकालीन जब तारामण्डलों की छाया रहती थी, उसके पश्चात् वह अपने आसन का त्याग देते थे। उनकी पत्नी उर्मिला उनके चरणों को स्पर्श करके, आसन पर विद्यमान हो करके गृह में जो बाल्य थे उनको भी आसन दे करके, क्रियाओं से निवृत्त हो करके ब्रह्म का चिन्तन किया करती और अश्व पति के यहाँ बेटा! ब्रह्म का चिन्तन, वह सबसे प्रथम ब्रह्मयाग करते थे। ब्रह्मयाग का अभिप्राय है कि प्रातःकालीन अपने आसनों पर विद्यमान होकर के ब्रह्म का चिन्तन करना, उसके गुणों का बखन करना, हे प्रभु! तुम कैसे हो? तुम न्यायकारी हो, तुम दयालु हो, तुम कृपालु हो, तुम संसार को धारण कर रहे हो। जैसे माता अपने गर्भस्थल में शिशु को धारण कर लेती है जैसे यह पृथ्वी नाना प्रकार के व्यंजनों को धारण करने वाली है, ऐसे प्रभु! आप भी इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड को धारण कर रहे हैं। जब मैं वेद का मन्त्र कहता हूँ तो मुझे आप ही आप दृष्टिपात आते हो। जब मैं प्राची में जाता हूँ तो मुझे तुम अग्नि के रूप में दृष्टिपात आते हो। जब मैं दक्षिण दिशा में जाता हूँ वहाँ तुम मुझे इन्द्र के रूप में दृष्टिपात आते हो और जब मैं

पश्चिम दिशा में जाता हूँ तो वहाँ अन्नादवीर्यत्व के रूप में दृष्टिपात आने लगते हो। जब मैं उदीचि में जाता हूँ तुम सोम बन करके हमें अमृत प्रदान कर रहे हो। जब मैं ध्रुवा में जाता हूँ वहाँ तुम विष्णु बन करके पालन कर रहे हो और जब मैं ऊर्ध्वा में जाता हूँ तो आचार्य बन करके हमारे जीवन का उत्थान कर रहे हो।

मेरे पुत्रो! इस प्रकार राजा अश्वपति के यहाँ प्रातःकालीन ब्रह्म का चिन्तन होता था और वह चिन्तन का विषय कितना महान् और गम्भीर कि मैं कहाँ जाऊँ? जहाँ मैं दृष्टिपात करता हूँ, वहाँ तुम्हारी प्रतिभा मुझे दृष्टिपात आ रही है। मैं तेरे में रत्त होना चाहता हूँ। हे भगवन्! मेरा अन्तरात्मा पिपासी बना हुआ है। तेरे से किसी काल में विच्छेद हो गया था मेरा माता का पुत्र माता की लोरियों का पान करता है परन्तु ज्यों ज्यों संसार का वातावरण उस में वास करता हे वह माता से विच्छेद हो जाता है। कोई समय वह आता है जब माता और पुत्र दोनों दूरी दूरी हो जाते हैं। क्योंकि संसार की प्रतिभा संसार के वातावरण की आभा में, इसी प्रकार है। हे प्रभु! इसी प्रकार यह जो प्रकृतिवाद है मैं इसके बंधन में इतना रत्त हो गया हूँ कि आपको अपने से दूरी कर देता हूँ। तो मेरे प्यारे! महाराजा अश्वपति के यहाँ इस प्रकार की उपासना होती रहती। उसके पश्चात् वह प्रभु का चिन्तन करके याग करते जिसे हम देव पूजा कहते हैं। नाना साकल्य उपस्थित हैं जिससे वायुमण्डल को पवित्र बनाना, मेरे प्यारे! वेद ध्वनियों के द्वारा, अपनी अन्तरात्मा के द्वारा देव याग करना, देवताओं का आह्वान करना, हे इन्द्र! आओ, हे सोम! आओ मेरे इस याग को ले करके द्यौ को पहुँचा दो। द्यौ में मेरी प्रतिभा, मेरा सूक्ष्म शरीर द्यौ मण्डल में चला जाएगा, परन्तु चित्रावली बन करके मैं चित्रों के रूप में गति करता रहूँगा। मेरे प्यारे! आह्वान करता हुआ उद्गीत गाता रहता है। गीत गाता हुआ वह देव पूजा करता है। हुत कर रहा है। देवताओं को प्रसन्न कर रहा है। वह मानव के शरीर में विद्यमान है। जिससे मानव का जीवन संचारित हो रहा है। मानव जिससे महत्ता को प्राप्त करता है। वह देवता हमारे हृदय में विद्यमान है। हमारे इस मानवीय शरीर में परमाणु के रूप में विद्यमान हो करके हमें वह जन जीवन दे रहा है। इस प्रकार राजा के यहाँ देवपूजा के पश्चात् कोई महापुरुष थे वह ज्ञान निहारते रहते थे,

कोई महापुरुष आ जाए तो अतिथि की सेवा करो। अतिथि कर्त्तव्य से पूर्ण हो जाएँ। उसके पश्चात् उनका राज का कार्य रहता था। प्रजा की सभाएँ होना और प्रजा की सभाओं में एकत्रित हो करके राजा कहते, हे प्रजाओ! एक दूसरे का ऋणी नहीं रहना चाहिए। मेरे राष्ट्र में देवपूजा भी हो। ब्रह्मयाग भी हो और माता पिता की आज्ञा करने वाला पुत्र हो और माता पिता पुत्र को सुयोग्य बनाने में कोई माता पिता बाल्य के ऋणी न रहे। एक दूसरे का ऋणी मेरे राष्ट्र में नहीं रहना चाहिए। जब मेरे पुत्रो! कोई ऋणी नहीं रहता तो उस राजा के राष्ट्र में दुर्व्यसन नहीं होता। उस राजा के राष्ट्र में न्यायालय की आवश्यकता नहीं होती। जैसे प्रजा में प्रभु का दिया हुआ उपदेश दे रहा है कर्त्तव्य में लगाने के लिए वह अपनी आभा में रमण करा रहा है। देखो, प्रजा में राष्ट्र का ऋण है राज्य को चलाने के लिए राष्ट्रीय ऋण नहीं रहना चाहिए। तुम्हारे द्वारा माता पिता का ऋण नहीं रहना चाहिए। पति पत्नि एकांत स्थली पर विद्यमान हो करके प्रभु का चिन्तन होना चाहिए क्योंकि जब चिन्तन विशाल होगा तो तुम्हारा पुत्रेष्टि याग भी महान् होगा। पुत्रेष्टि याग करने के लिए संसार में एक दूसरे का समन्वय होता है। वह उससे ऋणी न रह जाए। राजा इस प्रकार का उपदेश देते रहते थे। तो मेरे प्यारे! वह संवत्सर की आभा में गति कराते हुए प्रजा को एक महान् बनाते। उसके पश्चात् वह न्यायालय को त्याग करके, वह सभाओं को त्याग करके बुद्धिमानों के मध्य विद्यमान होते और बुद्धिमानों से कहा करते थे, हे बुद्धिमानों! तुम अपने कर्त्तव्य का पालन करते चले जाओ। तुम्हारे यहाँ विद्यालय में ब्रह्मचारी पवित्र होना चाहिएँ। गारपथ्य नाम की अग्नि की पूजा करने वाले हों। वेद का मन्त्र कहता है सम्भवः ब्रह्मणा पितरे अस्वताम् यह पितर ही गारपथ्य कहलाता है। ब्रह्मजन जिस पथ्य को, जिस मार्ग को अपनाते चले आए हैं उस पथ्य को अपनाने का नाम ही मेरे पुत्रो! गारपथ्य अग्नि कहते हैं। वह गारपथ्य अग्नि बन करके पथ्यों के रूप में परणित रहती है। आचार्य कहते हैं जो मेरे पितरों का मत रहा है, पथ रहा है गमन करने का वही पथ मेरा होना चाहिए। इसके विपरीत न हो जाए। मेरे प्यारे! महाराजा अश्वपति यह कहा करते थे कि हे बुद्धिमानों! तुम्हारे यहाँ तुम्हारा पथ विचित्र होना चाहिए। विद्यालय में ब्रह्मचारी पवित्र हों और वह

वैज्ञानिक हों जिससे परमाणुवाद को जान करके पृथ्वी के गर्भ को जानने वाले हों। प्रकृति के गर्भ में भ्रमण करने वाला जब शिशु होगा ब्रह्मचारी होगा, राजा का राष्ट्र शक्तिशाली बनेगा। राजा के राष्ट में विज्ञान पराकाष्ठा पर होना चाहिए। परन्तु उसका दुरूपयोग नहीं होना चाहिए। जब विज्ञान का दुरूपयोग राजा के राष्ट्र में विज्ञान में आ जाता है वही विज्ञान राष्ट्र को अपने में निगल जाता है। राष्ट्र की प्रतिभा को निगल जाता है। तो इसीलिए वेद के ऋषियों ने कहा है आचार्यों ने कहा है कि हमारे यहाँ रजोगुण सतोगुण से बिंधा हुआ होना चाहिए। जब रजोगुण इस प्रकार सतोगुण से पिरोया हुआ होता है और सत्य में ही प्रभु है, सत्य में ही चेतना है इस चेतना के आधार पर पिरोता रहता है तो जीवन की प्रतिभा एक महान् आभा में गति करती है। मानव को महत्ता में परणित कर देती है।

तो मेरे प्यारे! महाराजा अश्वपति का राष्ट्र मुझे स्मरण आता रहता है। एक समय बेटा! महाराजा अश्वपति के यहाँ वृष्टि का अभाव बन गया जब वृष्टि का अभाव हुआ तो उन्होंने बुद्धिमानों का एक समाज एकत्रित किया और यह कहा कि हे बुद्धिमानों! यह वृष्टि नहीं हो रही, इसके मूल में क्या है? उन्होंने कहा कि प्रभु! हम इसके मूल को नहीं जानते। उन्होंने कहा, इसके मूल में कोई रहस्य है। इससे मुझे प्रतीत होता है कि मेरे राष्ट्र में वैदिक ध्वनि नहीं हो रही है। जब वेद ध्वनि होती है वायुमण्डल सत् वायु से भरन होता है उसके पश्चात् सब कार्य समय पर होते रहते हैं।

मेरे प्यारे! महाराजा अश्वपति ने नाना ऋषि मुनियों को निमन्त्रण दे करके, उन्होंने वृष्टि याग के कर्म काण्ड वाले ऋषि मुनियों को निमन्त्रित करके वृष्टि याग का आयोजन किया। प्रजा से कहा कि अपने विचार बनाओ। तुम्हारा विचार वृष्टि में होना चाहिए। मानव के हृदय से जो विचार हैं हृदय का जो चिन्तन है वही वायु मण्डल में भरन करता है। वही गृहों को पवित्र बनाता है। जैसे माता पिता, पति पत्नि अपने गृह में विचारों को महान् बना लेते हैं, विचारनीय बना लेते हैं तो गृह उन विचारों से पवित्र हो जाता है। यदि दूषित बना लेते हैं, वासनामयी बना लेते हैं तो वासना वाला वातावरण बन जाता है। परन्तु कर्त्तव्य के महान् विचार बनाओ जिन विचारों से यह वायु मण्डल

भरन हो जाए।

मेरे प्यारे! राजा के राष्ट्र की प्रजा ने एक विचार बनाया कि वृष्टि याग होना चाहिए। तो मुनिवरों! वहाँ जब वैदिक ध्वनि होने लगी, साकल्य को अग्नि में प्रवेश कराया जाने लगा वह अग्नि गृहपथ्य नाम की अग्नि थी। गृहपथ्य नाम की अग्नि वृष्टि नामक अग्नि है जो समुद्रों से जलों का उत्थान कर देती है। वह बड़वानल नाम की अग्नि बन करके वह आभा में गति करती रहती है। मुझे स्मरण है बेटा! महाराजा अश्वपति के यहाँ जैसे ही प्रजा ने प्रार्थना की, ब्राह्मणों ने, आचार्यों ने वैदिक ध्वनि का पठन पाठन किया तो अन्तरिक्ष शब्दायमान हो गया। जब अन्तरिक्ष शब्दायमान हो गया तो उस वेदाग्नि को ले करके, उस महान् यज्ञ की अग्नि को ले करके अन्तरिक्ष में देवता तृप्त हो गए और तृप्त हो करके, समुद्रों से जलों का उत्थान हो करके वृष्टि हो गयी। महाराजा अश्वपति ने कहा, हे प्रजाओ! इससे यह सिद्ध हुआ है कि हमारे यहाँ जब अनावृष्टि होती है या अतिवृष्टि होती है तो प्रजा के विचारों में दूषितपन आ जाता है। विचारों में दूषितपन नहीं आना चाहिए यदि मानव को अपने गृह को ऊँचा बनाना हो, प्रजा को अपने गृहों को शुद्ध बनाना हो तो गृह में प्रातःकालीन वैदिक ध्वनि ब्रह्मयाग के द्वारा होनी चाहिए। वैदिक ध्वनि देवपूजा के साथ होनी चाहिए। उसके पश्चात् मध्य और रात्रि के समय जब निद्रा की गोद में जाओ तो श्वास के साथ में ओ३म् रूपी धागे में श्वास को पिरो करके और वैदिक ध्वनि को उच्चारण करके निद्रित हो जाओ। तुम्हें सुखद आनन्द की प्राप्ति होगी। ऐसा अश्वपति महाराज प्रजा को इस प्रकार का उपदेश देते थे। शासन भी करना, उपदेश भी देना, सुषुप्त भी रहना, उसमें रजोगुण की पुट लगा करके न्यायकारी बन करके राजा अपने राज्य को चला रहा है। विचार विनिमय क्या? इस प्रकार की विचारधारा वाला जो राष्ट्र होता है वह समाज को कहीं का कहीं ले जाता है। उसके राष्ट्र में मार्गों की हानि नहीं होती। उसके राष्ट्र में अन्नाद की हानि नहीं होती। उसके राष्ट्र में महत्ता ही महत्ता रहती है।

विचार विनिमय क्या? खनिज वाले खनिज को प्राप्त करते हैं, अन्तरिक्ष से किरणों के द्वारा वैज्ञानिक उन किरणों के ऊपर अनुसन्धान करने लगते हैं। मेरे प्यारे! वनस्पतियों

के विषय धारा प्रवाही अपने में लाने का प्रयास करते हैं। जैसे अश्वनी कुमार थे महात्मा भुञ्जु के पुत्र 101 वर्ष तक उन्होंने आयुर्वेद की भयंकर वनों में औषधियों को वह रसना से स्वादन करते हुए, प्रयोग में लाते हुए उसके आकार को बनाते हुए वह चले गए। विचार विनिमय क्या? मुनिवरों! इस प्रकार का रजोगुण होना चाहिए।

इसके पश्चात् तमोगुण की प्रतिभा आती है। तमोगुण क्या है? मेरे प्यारे! बिना तमोगुण के संसार की उत्पत्ति का मूल नहीं बन पाता क्योंकि तमोगुण होना चाहिए, तमोगुण में, सतोगुण में, रजोगुण दोनों की पुट लगनी चाहिए। मेरे प्यारे! एक मेरी प्यारी माता है, वह यह विचारती है कि मुझे पुत्रेष्टि याग करना है, वह कैसे होगा? वह तपस्या में तल्लीन हो गई है सत्य में अपने मन को ले गई है। उसके पश्चात् पिता भी यह चाहता है मैं पुत्रेष्टि याग करना चाहता हूँ। वह निहार रहा है, अपने जीवन को बना रहा है। वीर्यत्व को प्राप्त हो करके वह तमोगुण की प्रतिमा में पति पत्नी दोनों पुत्रेष्टि याग करते हैं। पुत्रेष्टि याग के पश्चात् वह मन्त्रों का प्रथम उच्चारण याग करते हैं। पुत्रेष्टि याग के पश्चात् वह मन्त्रों का प्रथम उच्चारण करते हैं। मेरे पुत्रो! जैसा वेद ने कहा है, आचार्यों ने कहा है वह तमोगुण की प्रतिभा कहीं चन्द्रमा से उसका समन्वय होता है, कहीं सूर्य से उस का समन्वय होता। कहीं उन्हीं परमाणुओं का बड़वानल नाम की अग्नि से होता है कहीं तमोगुणी तरंगों का समन्वय वशिष्ठ और अरूणधती मण्डलों से होता है। मण्डलों से होता हुआ मेरे प्यारे! एक बिन्दु प्रवेश करता है माता के गर्भ में और वह बिन्दु पुत्र का आकार बन करके माता के गर्भ से आता है संसार में। वही मेरी प्यारी माता तमोगुण उत्पत्ति का मूल कारण बना परन्तु सतोगुण की पुट और रजोगुण की पट लगायी गयी। विचार क्या? माता के समीप तीनों गुण होते हैं। वह शासन भी करना जानती है और मुनिवरों! पालन भी कर रही है अपने कण्ठ से बालक का पालन कर रही है और रजोगुण से उस को शासन में लाना चाहती है। उसको शिक्षित बना रही है। रजोगुणतमोगुण से उसकी उतपत्ति के मूल में सतोगुण है। परिणाम क्या? मुनिवरों! यह तीनों गुण उसके समीप हैं। तीनों गुण एक दूसरे में पिरोए हैं एक दूसरे में गुण पिरोए हुए होने से जब इस प्रकार हम इसको बरतने लगते हैं हमारा जीवन पवित्र बन जाता

है।

विचार विनिमय क्या? परमाणुओं का जब भी मिलान होगा उसमें तमोगुण है। जब वह मिलान हो करके तरंगों में उद्दत गति करता है तो वह रजोगुण है और वह सत्य जब आभा में गति करते हैं वह सतोगुण है। मेरे पुत्रो! मानव के समीप तीनों गुण विद्यमान हैं। तीनों गुणों को ले करके यह अपने जीवन को महान् और पवित्र बनाने वाला बने। मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण आता रहता है, सतो युग का काल था बेटा! एक समय एक राजा थे त्रुण सोमकृति नामक राजा थे वह राजा अपने में उड़ान उड़ता रहता था और वह यह चाहता था कि मेरे राष्ट्र में तपस्वी ऋषि होने चाहिएँ। उनके राज्य कुक्कुट नामक एक ऋषि थे तो तपस्या करते थे। उनको तपस्या करते करते चार सौ वर्ष हो गए। ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करते वेद का अध्ययन करते थे। वह परमात्मा से मिलान करते रहते थे। एक समय वेद के मन्त्रों का अध्ययन करते हुए एकोबहुधा की वार्त्ता जब उनको स्मरण आयी कि वेद का मन्त्र कहता है एक से बहुत हो जाऊँ। वार्त्ता को स्मरण करके ऋषि मौन हो गए। मौन होने के पश्चात् पुनः अध्ययन किया तो वह वार्त्ता पुनः स्मरण आई। वह अपने स्थान को त्याग करके राजा के समीप पहुँचे। राजा ने अपनी स्थली को त्याग दिया और राजा ने कहा, आइए भगवन्! पधारिए। मेरे प्यारे! आसन को जैसे ही ग्रहण किया, नतमस्तक हो करके चरणों को स्पर्श किया। उन्होंने कहा, प्रभु! आपका आगमन कैसे हुआ? उन्होंने कहा कि मैं एकोबहुधा चाहता हूँ। राजा ने कहा, बहुत प्रिय। मेरे प्यारे! राजा बुद्धिमान थे, अपने गृह में उन्होंने प्रवेश किया। उनकी एक कन्या थी। उन्होंने कहा, हे पुत्री! मेरी इच्छा है कि तुम ऋषि के चरणों में चले जाओ। पुत्री ने कहा, प्रभु! यह मेरा सौभाग्य है। मैं बड़ी भाग्यशालिनी हूँ। मेरे पुत्रो! उस राजा ने कन्या को प्रदान कर दिया। ऋषि उस कन्या को ले करके भयंककर वन में पहुँचे। तपस्या में तल्लीन हो गए। ब्रह्मचारिणी अपनी आभा में तपस्या कर रही है। ऐसा मुझे स्मरण है बेटा! उन्होंने पचास वर्ष तक तपस्या की। पचास वर्षों के पश्चात् ऋषि कहता है, देवी एकोबहुधा पुत्रोः अस्ताम्, हे देवी! हम एक से बहुधा तो बन गए हैं परन्तु पुत्र याग भी तो करना चाहिए। देवी ने कहा, हे भगवन्! वेद की विदुषी ने कहा, प्रभु! यह तो

देवताओं का बास है, बन है। यहाँ याग नहीं हो सकता पुत्रेष्टि। यहाँ देवयाग हो सकता है, ब्रह्म याग हो सकता है परन्तु पुत्र याग नहीं हो सकता।

विचार आता रहता है बेटा! यह वाक्य उन्होंने कहा और शान्त हो गए। उन्हें लगभग पंद्रह वर्ष पुनः समाप्त हो गए। उसके पश्चात् पुनः यह वाक्य आया कि पुत्र याग करना चाहिए। मेरे प्यारे! आसन को त्याग करके वह राजा के समीप पहुँचे और राजा ने पुनः स्थान को त्यागा। उन्होंने कहा प्रभु! आप बहुत समय के पश्चात् पधारे हो। मेरे सुयोग्य कोई कार्य हो तो उच्चारण कीजिए। राजा से ऋषि ने कहा, हे राजन्! हमें पुत्र याग करना है। मेरे प्यारे! राजा बुद्धिमान थे, इतना वाक्य श्रवण करते ही उन्होंने उनके गृह का निर्माण कराया। निर्माण करा करके ऋषि और ऋषि पत्नी जलाशय के स्थान में प्रतिपादित हो गए। कुछ समय के पश्चात् उनके गृह में एक पुत्र का जन्म हुआ, जन्म होने के पश्चात् ऋषि कहता है, देवी! इस आसन को त्यागों। क्योंकि जो महान् देवता होते हैं वह माया को ग्रहण करके भी उसको त्यागना जानते हैं। वह त्याग करके अपने को उपराम बनाना चाहते हैं। मेरे प्यारे! वह देवी और पुत्र को ले करके भयंकर वनों में तपस्वी बनाना प्रारम्भ किया। तपस्या में जब तल्लीन हो गए तो वही ब्रह्मचारी, वही ऋषि बालक मार्कण्डेय नाम के रूपा में परिणित हुआ। परिणाम क्या उच्चारण करने का कि तमोगुण की भी कोई सीमा नहीं होती। तमोगुण के बिना उत्पत्ति नहीं है। रजोगुण के बिना शासन नहीं और सतोगुण के बिना मेरे पुत्रो! हम पालन नहीं कर सकते। तो मुनिवरों! जब हम प्रभु की आभा में, प्रभु के विज्ञानमयी जगत् में रमण करते हैं, तीनों गुण हमारे सीमाबद्ध होने चाहिएँ, सीमा में रत्त रहने चाहिएँ। क्योंकि सीमा में रहने वाला प्रत्येक मानव याग कर्म करने के लिए आया है। प्रत्येक मानव तमोगुण में रहे, रजोगुण में रहे, सतोगुण में रहे, तीनों को परणित करने का नाम ही मेरे प्यारे! एक प्रिय याग है।

आओ मेरे पुत्रो! मैं कहाँ चला गया हूँ? विचार विनिमय क्या? प्रभु का गुण गान गाने वाला, ओ३म् की उपासना, सबसे प्रथम ओ शब्द है प्रभु का वाची है, जीवात्मा जो तीनों गुणों वाला है मैं में तीनों गुण प्रकृति के आ करके यह मैं में जो रत्त हो जाता है

इससे मानव को यदि उपराम होगा तो तीनों गुणों को बरतने वाला इस में से उपराम होता रहेगा और ओ के आँगन में गति करता रहेगा। अपने प्रत्येक श्वास को ओ३म् रूपी धागे में पिरोने वाला बनेगा तो उसका कल्याण होगा।

यह है बेटा! आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा, तो मैं शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा। इसके पश्चात् यह वाक्य समाप्त होने जा रहा है। शेष कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त। निवास स्थान : श्रीमती सावित्री शर्मा जनकपुरी

७ 08 10 1983 पुष्प 47 नाना उपाधियाँ एवं उनकी व्याख्या

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ यह पाठ्य क्रम परम्परागतों से ही, विचित्र माना गया है क्योंकि जिस पाठ्य क्रम पराम्परागतों से हो विचित्र माना गया है क्योंकि जिस पाठ्य क्रम में मानवीय का स्रोत गति कर रहा है, क्योंकि जितना भी परम्परागतों से यह पाठ्य क्रम चला आ रहा है यह प्रत्येक मानव के हृदय में स्वर ध्वनियों में ध्वनित होता रहा है। क्योंकि जितनी भी संसार की ध्वनियाँ हैं उन ध्वनियों में पाठ्य क्रम है जिस पाठ्य क्रम में मानवीयता का स्रोत है। क्योंकि संसार में सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक मानवता की चर्चा होती रही है ओर यह उच्चारण होता रहा है कि मानवता होनी चाहिए। परन्तु मानवता का सम्बन्ध मनन करने से होता है। जितना भी मानव ममनशील रहता है, गम्भीर चिन्तन करता है तो उसका एक मानवीय स्रोत बहने लगता है, वह उसकी ध्वनि कहलाती है। क्योंकि संसार की जितनी भी ध्वनियों हैं उनका सम्बन्ध प्राण से होता है और वह जो प्राण है, जहाँ मनस्तत्व और प्राणतत्व दोनों का समन्वय हुआ तो एक शब्द, एक ध्वनि की रचना हो जाती है। वह रचना किसी भाषा में नहीं होती। वह रचना तो एक ध्वनि के रूप में होती है, परम्परगतों से जब ऋषि मुनियों ने यह विचारा।

मुझे बहुत पुरातन की वार्त्ता स्मरण आती है एक समय माता पार्वती ने महाराजा शिव से यह कहा कि महाराज! यह जो ध्वनि है इसकी क्या भाषा है? इसका कौन सा

व्याकरण है? महाराजा शिव ने यह वाक्य श्रवण करके कहा कि देवी! यह जो ध्वनि है यह प्रत्येक मानव के मस्तिष्क के अन्नाद में ध्वनियों की रचना होती रही है। संसार का प्राणी इसी ध्वनि की रचना को ज्ञान करके ही भाषावादी बन गया। महाराजा शिव ने यही वाक्य कहा, अन्नाद की ध्वनि से ही व्याकरणवादी बन जाता है। तो मैं तुम्हें गम्भीर क्षेत्र में नहीं ले जा रहा हूँ। यह गम्भीर विचार विनमय हैं विचार क्या? हम यह उच्चारण कर रहे थे कि मानव परम्परागतों से ही, मानवता की चर्चा करता रहा है। परन्तु मननशील चिन्तन और गम्भीरता का उस मानव के शरीरों में प्रवेश आभा रमण करती रही है। मुझे बहुत परम्परागतों की वार्त्ताएँ स्मरण आती रहती हैं। यहाँ जिस समय मानवता के ऊपर आक्रमण होने लगा तो उस समय ऋषि मुनियों का एक समाज एकत्रित हुआ था किसी काल में और ऋषि मुनियों ने यह विचारा कि समाज को हम कैसे कटिबद्ध करें? तो उन्होंने इस समाज के लिए एक उपाधि का निर्वाचन किया। उपाधियाँ बनने लगीं। जैसे हमारे यहाँ शिव उपाधि है, विष्णु उपाधि है, ब्रह्म उपाधि है, ऋषि मुनियों में ब्रह्म वेत्ताओं की विशिष्ठ उपाधि मानी जाती है। हमारे यहाँ जैसे जमदग्नि की एक उपाधि मानी गयी। परशुराम भी एक उपाधि के रूप में रहा है। उपाधि की परम्पराओं का निर्वाचन हुआ। ऋषि मुनियों ने यह विचारा कि यह उपाधियाँ इस रूपों में रहनी चाहिएँ जिसको ब्रह्मवेत्ता निर्वाचन कर दें, वही उस उपाधि का अधिकारी हो। विचार विनिमय हुआ कि जो सत्य का पालन करने वाला हो वह विष्णु कहलाता है जो सत्य में ही रत्त रहने वाला हो। जो (शब्द ध्वनि से) शासन प्रवृत्ति में ऊर्ध्वा में हो और शासन प्रवृत्ति को जानने वाला हो उसको शिव उपाधि प्रदान की जाए। वह ब्रह्म उपाधि कहलाता है जो वेदों के ज्ञान, वेदों के मर्म को जानने वाला है, वेदों की प्रतिभा को जानने वाला हो। वेद रूपी प्रकाश में रत्त रहने के लिए जो तत्पर हो जाए तो उसे ब्रह्म उपाधि प्रदान की जाए। हमारे यहाँ यूं तो नाना प्रकार के अवान्तर, भेदन माने गए हैं परन्तु आज मैं इन भेदनों में न जाता हुआ केवल यह उच्चारण करने जा रहा हूँ कि यह उपाधियों का जगत् रहा है। मेरे प्यारे! उसके पश्चात् जो ब्रह्मवेत्ता हो, ब्रह्मनिष्ठ हो उसे हमारे यहाँ विष्णु स्वातं वशिष्ठ की उपाधि प्रदान की गयी। वशिष्ठ मुनि और माता

अरुणधति जब अपनी स्थलियों पर विराजमान होते तो वह ब्रह्म की चर्चाएँ, ब्रह्म की रचनाओं की एक माला बना देते थे। ब्रह्म की माला कैसे बनती है? आज मैं तुम्हें एक ब्रह्म की माला बनाना चाहता हूँ।

मेरे प्यारे! एक समय माता अरुणधति और महर्षि वशिष्ठ, पूर्णिमा का समय था, चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त था, अपनी कान्ति से युक्त था। अमृत की वृष्टि कर रहा था। माता अरुणधति और वशिष्ठ दोनों अपनी स्थली पर विद्यमान थे तो अरुणधति और वशिष्ठ दोनों अपनी स्थली पर विद्यमान थे तो अरुणधति ने एक प्रश्न किया कि महाराज! ब्रह्म माला क्या है? मैं ब्रह्म की माला को जानना चाहती हूँ। मेरे हृदय में बहुत समय से उत्कट इच्छा जागरुक हो रही थी कि मैं ब्रह्म की माला को अपने में धारण करना चाहती हूँ और धारण जब की जाए जबकि उसकी जानकारी हो। तो प्रभु! मुझे एक माला की जानकारी कराइए कि ब्रह्म की माला क्या है? तो महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले हे देवी! यह संसार बिन्दु में है और यह संसार व्यापकवाद में है। बिन्दु से विकास होता है और वह नाना प्रकार के रूपों में दृष्टिपात आने लगा। परन्तु जब उसको समेटने के लिए सिमटा गया तो वह नाना रूपों वाला एक ही बिन्दु में प्रवेश हो गया, यह बड़ा विचित्र एक प्रश्न है देवी! मैंने तुम्हे संक्षिप्त तो उतर दे दिया है क्या एक बिन्दु से अनेकता है ओर अनेकता को समेट करके एक बिन्दु में प्रवेश होना ही यह एक महत्व अस्वत् कहलाता है। माता अरुणधति बोली, प्रभु! यह तो मैं जान गयी। परन्तु एक ही मनका मेरी माला में आया है। मैं सर्वत्र मनको की इच्छित बनी हुई हूँ। माता अरुणधति ने जब ऐसा कहा तो ऋषि ने कहा देवी! श्रवण करो जब सृष्टि का प्रारम्भ हुआ तो सृष्टि के प्रारम्भ में एक बिन्दु की रचना हुई जिसे महत्व कहते हैं और वही रचना हो करके अनेक रूपों में, नाना रूपों में जैसे मह से आकाश जिसमें शब्द विद्यमान रहता है उसमें वायु है जो गतियों कराने वाली है। उसके पश्चात् अग्नि है जो तेजोमयी बनाने वाली है, उसके पश्चात् आपोमयी है, जो संसार की रचना का एक मूल बनी हुई है। उसके पश्चात् यह पृथ्वी तत्त्व माना गया है। तो मंच महाभूतों में एक ही मह की आभा रमण कर रही है और उसके भिन्न भिन्न प्रकार के गुण वादन होने लगे। उसी पञ्च महाभूतों की रचना

चली तो भिन्न भिन्न लोकों की रचना हो गयी। लोकों में कैसी सुन्दर माला बनी हुई है यदि हम एक निहारिका में पहुँच जाते हैं।

महर्षि वशिष्ठ ने कहा, हमारे यहाँ अंगिरस गोत्र में जन्म लेने वाले श्वेतकेतु एक समय एक निहारिका में चले गए। एक निहारिका की जब गणाना करने लगे तो उस निहारिका में बृहस्पतियों की गणाना करने लगे औरप सूर्यों की गणाना करने लगे। उसके उपरान्त वह ध्रुवों की गणाना करने लगे। उनकी उन्होंने माला बनायी और कहा इस माला को मैं धारण करूँ। परन्तु हमारे यहाँ माला का जो सूत्र है वह 108 का सूत्र माना गया है। महर्षि श्वेतकेतु जब माला को अपने में धारण करने लगे तो सहस्रों प्रकार की माला बन गयी। वह माला कैसे बनी? सूर्य मण्डलों की माला बनाने लगे तो अरबों खरबों सूर्यों की एक निहारिका में माला बन गयीं जब माला बन गई तो उस माला में शान्ति नहीं हुई। ध्रुवों के लोकों में पहुँचे तो उन्होंने एक निहारिका में, एक ही आकाश गंगा में 72 अरब ध्रुव मण्डलों की आभा की एक माला बनायी इतने एक निहारिका में मण्डल थे। तो देवी! जब वह माला बन गई तो वह शान्त हो गए। शान्त हो करके जब उन्होंने एक निहारिका नहीं, दो निहारिका नहीं, उन्होंने अपने प्राण सूत्र से जब दृष्टिपात किया तो मुनिवरों! इस प्रभु की सृष्टि में लगभग 124 निहारिका उन्हें दृष्टिपात आने लगीं और एक एक निहारिका में अरबों खरबों सूर्य, अरबों खरबों ध्रुव दृष्टिपात आते थे। तो देवी यह माला बनी। परन्तु जब श्वेतकेतु मुनि जब अपने गुरु के द्वार पर पहुँचे, सोमकृति अंगिरस के द्वार पर पहुँचे, अंगिरस मुनि से कहा, प्रभु! मैं कहाँ चला गया हूँ? तो ऋषि ने एक वाक्य कहा कि बिन्दु में सिमट जाओ। तो मुनिवरों! सर्वत्र जगत् का अनुभव करते हुए वह एक बिन्दु में सिमट गए और सिमट करके वही माला एक बिन्दु में प्रवेश हो गयी। तो देवी! मैंने तुम्हें पहले सूत्र में वर्णन कराया है। मुनिवरों! इस प्रकार का ऋषि वशिष्ठ कहलाता है, जो बिन्दु को अनेकता में और अनेकता को बिन्दु में प्रवेश कराने वाला हो। तो विचार विनिमय क्या बेटा! मैं कोई व्याख्याता नही हूं तो बेटा! आज का वेद का पाठ जिसकी विवेना कर रहा हूं विवेचना यह है कि हमारे यहाँ यह सतमयी रमण करने वाला विष्णु है। मैं उसी विष्णु पर आना चाहता हूँ,

जो विष्णु माता के अन्तर्हृदय में विद्यमान रहता है। माता जब बालक का पालन करती है तो उसके द्वारा विष्णु विद्यमान रहता है। बालक व्याकुल हो रहा है, माता के हृदय में करुणा जागरूक हो जाती है, जब करुणा जागरूक हो जाती है तो वह उसको लोरियों का पान करा देती है। जहाँ लोरियों का पान कराया, बालक शान्तना को प्राप्त हो जाता है। वह सतोगुण है, वह पालन है, वह ध्रुवा है, वह महानता की ज्योति पर ले जाता है। यदि माता उसमें एक पुट और लगा लेती है, लोरियों का पान करा रही है, गायत्राणी छन्दों का पठन पाठन करा रही है, प्रभु की सृष्टि को निहार रही है तो वह जो सत् परमाणु, विचारों के परमाणु बालक के हृदय में प्रवेश हो जाते हैं। वह जब हृदय में प्रवेश हो जाते हैं तो माता और सतोगुणी बन जाती है। जब माता द्वितीय रूप को धारण करती है कि पालन करना मेरा कर्त्तव्य है, मोह करना मेरा कर्त्तव्य नहीं है। मुझे अति मोह में नहीं जाना है। यह तो बाल्य है, यह प्रभु की सम्पदा है। क्योंकि जब यह बालक मेरे गर्भ में था मैं यह नहीं जानती थी कि यह पुत्र होगा या पुत्री होगी। मैं अज्ञानता में थी। इस शिशु का निर्माण तो सृष्टि के प्रारम्भ में महतत्व से इसका निकास हुआ है। यह पुत्र मेरी माला का एक मनका बन गया है। यह शिशु तो परम्परागतों से है। इसको वेद आपो कहता है। यह पुत्र तो मेरे द्वार पर आया है यह पुत्र बन गया है संकल्पमात्र से। जब इस प्रकार का ज्ञान मेरी माता को होता है और माता यह विचारती है मोह करना मेरा कर्त्तव्य नहीं। पालन करना मेरा कर्त्तव्य है। शिक्षार्थी बनाना मेरा कर्त्तव्य है। मैं इसको ऊर्ध्वा में प्राप्त करा दूंगी। यह प्रभु की सम्पदा है, यह मेरी सम्पदा नहीं है। प्रभु की, राष्ट्र की, समाज की सम्पदा है। तो मेरी प्यारी माता के जो विचार हैं यह बालक के अन्तःकरण में प्रवेश हो जाते हैं तो उस समय माता कितनी सतोगुणोमयी विष्णु बन जाती है। तो मैं विष्णु को विवेचना इस रूप में नहीं देना चाहता हूँ।

हमारे यहाँ शिव की उपाधि भी मानी जाती है। शिव कौन है, जो धिराज होता है। जिसका राष्ट्र का नामोकरण ऊँचा होता है। मुनिवरों! शिव पालन कर रहा है, वह शासन में युक्त है। एक दूसरे में यह गुण एक दूसरे के पूरक कहलाते हैं। बिना रजोगुण के पालन नहीं हो सकता और बिना सतोगुण के शासन नहीं हो सकता और बिना

सतोगुण, रजोगुण के उत्पत्ति काल भी नहीं हो सकता। दोनों एक दूसरे के पूरक कहलाते हैं वेद का पठन पाठन करने वाला ब्रह्मा कहलाता है वह ब्रह्मवर्चोसि कहलाता है। वेद के पठन पाठन में लगा हुआ है वेद की श्रुतियों को विचार रहा है, चिन्तन कर रहा है, मनन कर रहा है मुद्रित हो रहा है। अपने में अपने को धारण करा रहा है। वेद के चारों मर्मों की जानता है। वेद में तीन प्रकार की विद्या होती हैं। ज्ञान है, कर्म है और उपासना है, ज्ञान किसे कहते हैं? संसार की जानकारी, कर्म किसे कहते हैं? जानकर की विद्या होती हैं। ज्ञान है, कर्म है और उपासना है, ज्ञान किसे कहते हैं? संसार की जानकारी, कर्म किसे कहते हैं? जानकर जो मानव कर्म करता है। और उपासना किसे कहते हैं? जो हमने जाना है, क्रिया कलाप किया है उसकी उपासना करना उसका सदुपयोग करने का नाम उपासना कहलाता है। तो यह तीन प्रकार की विद्या हमारे वेदों में निहित है जिस विद्या के लिए प्रत्येक मानव परम्परागतों से निहित हो रहा है और चतुर्थ जो काण्ड है वह विज्ञान काण्ड माना गया है। उपासना की एक धारा विज्ञान में चली गई है, एक धारा कर्म काण्ड में चली गयी। एक धारा मुनिवरों! उसके भी अवान्तर भेदन माने गए हैं आज मैं उन भेदनों में जाना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय क्या? मुनिवरों! जो इन भेदनों को जानता है वह ब्रह्मा कहलाता है। ब्रह्मा ही जब रजोगुण में प्रवेश होता है तो ज्ञान और उपासना के द्वारा वह न्याय करता है। इसी प्रकार जब यह न्याय करता है और वही तीनों गुण माता के शरीर में, माता की भावनाओं में प्रवेश हो करके वह पालन करके विष्णु कहलाता है।

तो मेरे प्यारे! आज मैं कहाँ चला गया हूँ? विचार देते हुए दूरी चला गया हूँ। विचार केवल यह कि बाहरी जगत् में भी उपाधिया हैं। राजा का नामोकरण विष्णु कहलाता है। राजा कौन विष्णु है जो न्याय, पालन और ज्ञान का प्रसार करता है। मानव समाज को कर्त्तव्यवाद में लाने का प्रयास करता है वही तो आभा में रमण कराने वाला मानवता को ऊँचा बना देता है। बेटा! मैं विचार देता हुआ दूरी न चला जाऊं विचार केवल यह है कि हम अपने देव की महिमा का गुण गान गाते हैं उपाधियों में, जैसे हमारे यहाँ इन्द्र हैं। इन्द्र की हमारे यहाँ उपाधि मानी जाती है। इन्द्र की वैदिक साहित्य में बहुत

से पर्यायवाची शब्दों की विवेचना की है। इन्द्र नाम सूर्य का भी है। इन्द्र नाम वायु का भी है और इन्द्र नाम राजा का भी है। और इन्द्र नाम मेरे पुत्रों! देखो, एक औषध का भी है। जिसको इन्द्र रसा कहा जाता है। इन्द्र नाम आत्मा का भी है। इन्द्र नाम परमात्मा का भी है। इन्द्र के बहुत से पर्यायवाची शब्द हैं परन्तु उपाधि काल में इन्द्र नाम देवताओं का धिराज कहलाता है। देवताओं का धिराज कौन है? देवता कौन हैं? जो मुनिवरों! जो बुद्धिमान होते हैं जो वेद की विद्या का अध्ययन करते हैं और वेद की विद्या का अध्ययन करके वह संसार में अपने लिए चिन्तन नहीं करते, प्रभु से निष्पन्न हो करके समाज के कल्याण के लिए लगे हुए होते हैं। वह देव प्रवृति वाले कहलाते हैं, वह देव प्रवृत्ति वाले प्राणी हैं उनके ऊपर जो धिराज है इसको इन्द्र कहा जाता है। वह इन्द्र एक राजा कहलाता है। हमारे यहाँ जो 101 अश्वमेध याग कर लेता है, वह इन्द्र बन जाता है। अश्वमेध याग का अभिप्राय क्या है? मेरे प्यारे! अश्व नाम घोड़े को भी कहा जाता है, अश्व नाम परमात्मा को भी कहा जाता है, अश्व नाम इस जगत् को भी कहा जाता है। अश्व नाम राजा और कृतियों को भी कहा जाता है। यहाँ अश्व नाम राजा और कृतियों को भी कहा जाता है। यहाँ अश्व नाम राजा को कहा कहा गया है। अश्व नाम याग है। अश्व नाम याग किसे कहते हैं? अश्वे ब्रह्मो देवः देव प्रवेः मेध नाम प्रजा का है। अश्व नाम राजा का, मेध नाम प्रजा का। मुझे स्मरण आता रहता है आलांकारिक शब्दों में बहुत परम्परागतों से यह माना गया है जब शिव ने किसी काल में समुद्र का मन्थन हुआ था तो महाराजा शिव ने समुद्र में से हलाहल विष का एक कलश निकला तो वह विष को शिव को प्रदान कर दिया। शिव ने उसको कण्ठ में धारण कर लिया और धारण करके देवताओं के समाज की रक्षा की। तो देवता कौन होते हैं? जो विष को पान करके भी अमृत देते हैं। वह शिव मंगलोवृत्ति देवः, हमारे यहाँ इस शिव की बहुत सी आलांकारिक चर्चाएँ आती हैं। हमारे यहाँ शिव नाम सूर्य को भी कहा गया है। जहाँ राजा का नाम विष्णु है वहाँ शिव नाम राजा का भी है। मेरे पुत्रो! मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि जब वह काल विष को अपने में धारण कर गए तो वह क्या है जब समुद्र मथा गया? जब यह संसार मथा जाता है तो विष उत्पन्न होता है, तो यह पृथ्वी विष

में अर्पित न हो जाए तो हमारे यहाँ शिव नाम सूर्य का है वह शिव उस विष को अपने में धारण कर लेता है और विषोमयी जितने प्राणी हैं इस पृथ्वी पर जितने विषधर हैं वह विष को पृथ्वी में से अपने में धारण कर लेते हैं और वह सूर्य को प्रदान कर देते हैं। सूर्य की नाना प्रकार की किरणें उसको ऊर्ध्वा में अपने में ले जाती हैं।

तो विचार विनिमय क्या? हमारे यहाँ उपाधियों का एक संघर्ष नहीं है। हमारे यहाँ उपाधियों का एक महा समूह माना गया है। शिव नाम यहाँ सूर्य को कहा गया है जो विष को अपने में धारण करके शुद्ध पवित्र किरणों को देता है, अमृतमयी किरणों को जो विषमयी आती हैं तो विषधर प्राणी उसको अपने में धारण कर लेते हैं। वाह रे प्रभु! तेरी महिमा, तेरी सृष्टि कितनी विचित्र है? विषमयी किरण, विषधर प्राणी अपने में धारण कर लेते हैं। अमृत को देते हैं विष को ग्रहण करते हैं, वह देवता कहलाते हैं। विचार विनिमय क्या? मैं विशेष विवेचना न देता हुआ तुम्हें मैं वही ले जाना चाहता हूँ, अश्वमेध याग, इन्द्र जब 101 अश्वमेध याग कर लेता है। अश्व कहते हैं संसार को जो विजय कर लेता है, संसार में कोई उसका शत्रु न रहे। निमन्त्रण के कथनानुसार जब अश्वमेध याग करता है जब 101 अश्वमेध याग किया और उसे देवता बना देते हैं, वह देवता कहलाता है, उसका इतना ऊँचा क्रिया कलाप होना चाहिए जिससे यह संसार मुनिवरों! उसके चरणों में नत मस्तक हो जाए तो उसे इन्द्र कहते हैं। हमारे यहाँ इन्द्र के बहुत से पर्यायवाची शब्द हैं परन्तु बाहरीय जगत् में इन्द्र नाम उसी का है जो 101 अश्वमेध योग कर लेता है।

तो आज बेटा! मैं विशेष विवेचना न देता हुआ परन्तु देखो, चर्चाएं तो किसी काल में होगी, केवल आज तो यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ क्या हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए इस संसार को एक बिन्दु में, अनेकता को बिन्दु में और बिन्दु को अनेकता में दृष्टिपात करके अपने मानवीय जीवन को ऊँचा बनाएँ। परन्तु यह सब एकता से अनेकता की आभा है। मानो इसी में हम अपने को ले जाएँ जिससे जीवन ऊँचा बने। तो बेटा! मैं विशेष विवेचना न देता हुआ आज का विचार हमारा क्या चल रहा था वेद के पठन पाठन करने वाला, वेद का ऋषि कहता है, वेद का मन्त्र कहता

है कि हम अग्नि की उपासना करें। अग्नि को सर्वत्र दृष्टिपात करें। अग्नि की कोई स्थली ऐसी नहीं जहाँ अग्नि का अग्न्याधान न हो रहा हो। यह अग्नि अपने में महान कहलायी जाती है। तो यह संसार एक उपाधियों का जगत् है उपाधियों के जगत् में हमें उपाधि बना करके अपने मानवीय समाज को ऊँचा बनाना, मानवीयता को एक मानवता के आँगन में ले जाना हमारा कर्त्तव्य है। मैं वेद की प्रतिभा में विशेष जाना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुण गान गाते हुए, एकता की चर्चा करते हुए हम अपने प्रभु की महिमा का गुण गान गाते चले जाएँ। हे विष्णु! तू हमारा कल्याण करने वाला है। तू कहीं यागों में रहता है तो कहीं तू राष्ट्र में रहता है, कहीं तू माता की भावनाओं में रहता है। कहीं तू सूर्य बन करके प्रकाश देता है, कहीं तू प्रभु बन करके संसार को धारण कर रहा है। वह सतमयी रमण करने वाला वह सत् ही विष्णु है। कहीं तू संसार में यागों में परणित हो रहा है, कहीं तू अग्नि में प्रवेश हो करके अग्नि संसार को सतमयी तपा रही है, तपायमान कर रही है। यह है आज का वाक्। आज का वाक् उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय क्या क हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुण गान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएँ और हमारे जीवन का यही उद्देश्य है कि हम सर्वत्र ज्ञान में रत्त रह करके मौन हो जाएँ और मौन को हम सत् में दृष्टिपात करें।

यह है बेटा! आज का वाक्। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हे प्रभु! तू हमारा देव है, तू हमारा कल्याण करने वाला है। तू कहीं शिव बन करके, हलाहल विष को पान करके संसार को अमृत देता हैं कहीं तू शिव बन करके सूर्य के रूप में प्रकाश दे रहा है। कहीं तू अपने में रत्त रह करके जीवन में प्रकाश दे रहा है। कहीं तू शिव बन करके सूर्य के रूप में प्रकाश दे रहा है। कहीं तू अपने में रत्त रह करके जीवन में प्रकाश की आभा परणित हो रही है। आज का वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह कि प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही, मानवता की चर्चा करता रहा है। कल समय मिलेगा तो अपनी आभा में रुद्र भागा अस्वतों की चर्चा प्रकट करेंगे।

आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन पाठन होगा। निवास स्थान : श्री मनसा राम जी मोदी नगर दिनांक 08 10 1983।

८   13 11 1983 पुष्प 47 भौतिक व आध्यात्मिक याग चर्चा

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस पठन पाठन की प्रतिभा में प्रायः हम रमण करने लगते हैं। उसकी महत्ता, प्रभु की महिमा का गुणगान और उसकी आभा का वर्णन होता रहता है। आज का हमारा वेदमन्त्र कुछ, हमें प्रेरणा दे रहा था। यूं तो यह मानव सदैव प्रेरित बना हुआ है, प्रेरणा देता रहता है। प्रत्येक वेदमन्त्र में नाना प्रकार की प्रेरणाएँ प्राप्त होती रहती हैं। परन्तु उन सर्वत्र प्रेरणाओं का जो सूत्र है वह मानव का हृदय माना गया है। क्योंकि हृदय में ही नाना प्रकार के उद्गार अथवा उद्गमता का जन्म होता रहता है। विद्वानों का जीवन प्रेरणा पा करके महान् बना करता है, जिसकी आभा में वह रमण करना चाहता है। तो इसलिए हमारा वेदमन्त्र यह कहता है, यह जो प्रेरणाएँ कुछ प्राप्त हो रही हैं, कुछ मेरे प्यारे! महानन्द जी से भी प्रेरणाएँ प्राप्त होती रहती हैं। वास्तव में इनकी प्रेरणा कोई ऐसी नहीं है परन्तु जो वेदमन्त्रों के आश्रित रहने वाली प्रेरणाएँ है। वह मानव के हृदय को सदैव विदीर्ण करती रहती हैं अथवा हृदय में नाना प्रकार की आभाओं का जन्म होता है और मनस्तव आभा में रमण करने वाला है।

जैसे हमारा वेद का मन्त्र हमें यज्ञोमयी विष्णु की कल्पना करा रहा था। वेद यह कहता है कि यह जो याग है यह विष्णु है क्योंकि विष्णु हमारा कल्याण कारक है। हमें महत्ता की प्रदान करने वाला है। तो इसीलिए वेद के मन्त्र ने कहा कि यज्ञोमयी विष्णु यह जो याग है यह विष्णु है। जितना भी संसार का सुकर्म है, आत्मीय कर्म है वह सर्वत्र एक प्रकार का याग माना गया है। उन यागों में परणित होने के पश्चात्, मानव महान् बनता रहता है और परमपिता परमात्मा की इस भव्य यज्ञशाला में विद्यमान हो करके, मानव ऊँची ऊँची उड़ान उड़ता रहता है। किसी भी काल में दार्शनिकों का जब समूह एकत्रित

हो जाता है तो दो वाक्यों पर दार्शनिक विचार विनियमय करते रहे हैं। एक विचारधारा तो दर्शनिकों की यह रही है? और आन्तरिक जगत् में क्या क्या भरण हो रहा है? इसके ऊपर दार्शनिक परम्परागतों से अनुसन्धान करते रहे हैं अथवा अन्वेषण करते रहे हैं और विचारते रहे हैं कि यह संसार क्या है? किन्हीं आचार्यों ने इस संसार को यज्ञशाला के रूप में परणित किया। किसी ने चिन्तन का एक समूह माना है। किन्हीं आचार्यों ने विज्ञानशाला के रूप में इसको परणित किया। इस संसार के प्रति मानव का अपना अपना दृष्टिकोण रहा है। कोई इस संसार को आदान प्रदान संस्कारों का जगत् स्वीकार कर रहा है। परन्तु जब हम यह विचारते हैं कि प्रायः इस संसार को यज्ञशाला के रूप में परणित किया है। हमारे यहाँ यज्ञों को यज्ञाशाला के रूप में परणित किया है। हमारे यहाँ यज्ञों के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार की कल्पनाएँ होती रही हैं। हमारे यहाँ अश्वमेध यागों का भी वर्णन होता रहा है।

मुझे स्मरण है, पुत्रो! एक समय राजा रावण के यहाँ किसी काल में, एक अश्वमेध याग हुआ था, जो महर्षि लोमश और काग भुषुण्ड जी ने किया था जिसमें महर्षि वैशम्पायन भी पधारे थे। परन्तु इसको अश्वमेध याग माना है। अश्वमेध याग का अभिप्राय यह है, कि वेदों का एक मन्त्र आता है। अश्वः राजं भ्रतेः देवः एक आख्यिका आई है, यह कहती है कि राजा का नाम अश्व माना है। परन्तु वैदिक साहित्य में अश्व जहाँ राजा को माना है वहाँ अश्व नाम पशु को भी माना है, जहाँ सूर्य का नाम अश्व है वहाँ आत्मा का नाम भी अश्व माना है, परन्तु जहाँ आत्मा का नाम अश्व है वहाँ परमपिता परमात्मा का नाम भी अश्व माना गया है। यहाँ इस प्रकार के याग का नाम भी अश्व है।

तो विचार विनिमय क्या? कौन से याग का नाम अश्व माना गया है जहाँ राजा अपने राष्ट्र के सुखद के लिए, अग्नि से राष्ट्र को ऊँचा बनाता हैं, अग्नि ऊर्ध्वा को जानने की इच्छा प्रकट करता है। वह अपनी प्रजा को महान् बनाता है। संसार की यह परम्परगतों से नियमावली मानी गई है कि पूर्वज जिस क्रिया कलाप को करते रहते हैं उस क्रिया कलाप के संस्कार गृहों में प्रवेश हो जाते हैं। जैसा महर्षि स्राकेतु ने एक समय एक वाक्य कहा था कि एक समय, वह उद्दालक गोत्र के वाचक नामक ऋषि के द्वार पर

पहुँचे, और वाचक केतु ऋषि महाराज को कहा कि मैं अपने गृह को स्वर्ग बनाना चाहता हूँ। और मैं स्वर्ग कैसे बना सकता हूँ? तो कुछ ऐसा स्मरण है, उन्होंने कहा कि तुम उस क्रिया कलाप को करने लगो, जिस क्रिया कलाप से तुम्हारे आगे आने वाला, जो समाज है उसके समीप शुद्ध और विचित्र क्रिया कलाप को करो, जिससे वह भी तुम्हारा अनुसरण करने वाले हों। उन्होंने वहीं किया कि वह प्रातःकाल अग्नि की पूजा करने लगे। वह गृहपथ्य नाम की अग्नि की पूजा करने लगे। गृहपथ्य नाम की अग्नि वह होती है जो गृह में प्रदीप्त रहती है। उसे विचार की अग्नि कहते हैं। उनके विचारों में जब दर्शनों की भाषा माता पिता के हृदयों में पनपती रहती है, अध्ययन की विचारधाराएँ पनपती रहती हैं तो बाल्य उसी का अनुसरण करते हैं और वह गृह स्वर्ग बन जाता है, ऐसा ऋषियों ने कहा है।

मैं अश्वमेध याग की चर्चा कर रहा था। अश्व नाम गृहस्वामी को भी कहते हैं, परन्तु अश्व का अभिप्राय केवल इतना है कि अश्व नाम याग को माना है। जो राजा अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता है राजा अपने राष्ट्र को महान् और प्रजा को सुखद में दृष्टिपात करना चाहता है, तो वह राजा अश्वमेध याग करता है। अश्वमेध याग का अभिप्राय अश्व नाम राजा का और मेध नाम प्रजा का है, दोनों एक दूसरे की सम्मति में रहने वाला जब राष्ट्र बन जाता है, तो उस राष्ट्र में महत्ता की प्रतिभा का जन्म हो जाता है।

तो परिणाम यह है अश्वमेध नाम के, याग की चर्चाएँ हो रही हैं तो ऋषियों ने कहा है कि हमारे याग का वैदिक साहित्य में बड़ा वर्णन आया है। हमारे यहाँ यागों के चलन में भिन्न भिन्न प्रकार की प्रतिभा मानी गई है। जितना सुकल्याणकारक, एक दूसरे की सम्मति वाला क्रिया कलाप है, द्रव्य का सदुपयोग होना है उस सबका नामोकरण, एक याग में परणित माना है। परन्तु याग के दो प्रकार के स्वरूप बन जाते हैं। दो प्रकार का याग मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था। एक याग हमारे यहाँ भौतिक याग कहलाता है, जो अग्नि को प्रचण्ड करना है, अग्न्याधान करना है। साकल्य प्रदान करना है और उसमें संगतिकरण करना है। उसमें दानेषु करना है। वह देव पूजा

के रूप में परणित होता रहता है। परन्तु इसी का एक सूक्ष्म रूप बन जाता है, जो याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के यहाँ ब्रह्मचारिओं का और याज्ञवल्क्य मुनि महाराज का सम्वाद हुआ था, किसी काल में। जब ब्रह्मचारियों ने ऋषि के चरणों में ओत प्रोत हो करके कुछ चर्चाएँ कीं तो चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि प्रभु! यह भौतिक याग जो हो रहा है, परन्तु इसका जो आध्यात्मिक याग हो रहा है वह क्या है? उस आध्यात्मिक याग की प्रतिक्रिया को हम जानना चाहते हैं, तो ब्रह्मचारी यज्ञदत्त ने और ब्रह्मचारी कवन्धि नें ने यह प्रश्न किया था। तो ऋषि इसका उत्तर देने लगे, ऋषि ने कहा कि यह जो भौतिक याग हो रहा है, इसके सूक्ष्म याग का नाम आध्यात्मिक याग कहलाता है। आध्यात्मिक याग वह कहलाता है, जो मानव अपनी अन्तरात्मा में प्रभु का दिग्दर्शन करता है, और आत्मा को जानने का प्रयास करता है। आत्मा के भिन्न भिन्न प्रकार के स्वरूप हैं। यह जो मानव का शरीर है, इसी में भौतिक याग और आध्यात्मिक याग हो रहा है। आध्यात्मिक याग में, प्रत्येक इन्द्रियों को, उनके स्वरों को जानना होगा, जैसे वाणी से उद्गार का जन्म होता है। नेत्रों से ज्योति का जन्म होता है और श्रोत्रों से दिशा का जन्म होता है और घ्राण से वायु की प्रतिभा अपने में रत्त रहने लगती है। इसको हमें जानना है।

हमारा यह जो मानव शरीर रूपी यज्ञशाला का निर्माण, किसी काल में, सृष्टि के प्रारम्भ में, मेरे प्यारे! प्रभु ने किया था, मेरे प्रभु ने जब इस शरीर का प्रादुर्भाव किया तो यह जो शरीर है इसमें अष्ट चक्र और नौ द्वार कहलाते हैं। इन नौ द्वारों पर, नौ देवता कहलाते हैं। अष्ट चक्रों को ऋषि गतियाँ कर रहे हैं। यह जब शरीर की रचना की तो प्रत्येक देवता का वास हो गया, जब देवता का वास हो गया तो इस मानव शरीर को अश्व के रूप में परणित करने लगा। अश्व के रूप में इसे प्रकट करने लगे। तो मेरे पुत्रो! कुछ ऐसा स्मरण है याज्ञवल्क्य ने कहा, ब्रह्मचारी एक पंक्ति में विद्यमान हैं, निर्णय करा रहे हैं कि सम्भवः वेद प्रमाणस्ते कि हे ब्रह्मचारियों! तुम आध्यात्मिकवाद में रत्त रहना चाहते हो, परन्तु भौतिक विज्ञान तो उड़ान है उड़ती रहती है। आध्यात्मिक विज्ञान में उन्होंने कहा कि मानव के शरीर में 24 तत्त्व माने जाते हैं, 24 अंकुर माने जाते हैं,

24 धाराएँ मानी जाती हैं, जिसमे दस प्राण हैं, और दस इन्द्रियाँ हैं, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार कहलाते है। यह रथ के होता बने हुए हैं, इस रथ में कोई यज्ञमान विद्यमान है, जो इस याग को करा रहा है, जो इस याग में मानव को परणित करा रहा है, तो यह एक याग हो रहा है। चौबीस आभाओं में याग हो रहा है। चौबीस प्रकार की आहुति दी जा रही है तो याग चल रहा है यह मानव शरीर रूपी एक प्रकार की यज्ञशाला कहलाती है। इस यज्ञशाला में प्रत्येक देवता आ करके इसकी रक्षा में लगे हुए हैं, परणित हो रहे हैं। इसी के 17 तत्त्व भी माने गए हैं क्योंकि सत्रह तत्त्वों का सूक्ष्म शरीर कहलाता है जो इस स्थूल के अन्तर्हृदय में विद्यमान रहता है। सत्रह की आभा में जैसे हमारे यहाँ दस प्राण हैं, पञ्च महाभूत, मन और बुद्धि यह सत्रह व्यवसायी कहलाते हैं। उन में याग हो रहा है।

मेरे पुत्रो! हमारे यहाँ एक कारण लिंग कहलाता है, वहाँ कारण लिंग में ज्ञान और प्रयत्न, यह आत्मा का स्वाभाविक गुण रहता है। परन्तु वह लिंगोमयी कहलाता है। जब तक दोनों लिंग, ज्ञान और प्रयत्न एक सूत्र में नहीं आ जाते, इनका समावेश एक दूसरे में नहीं आता तब तक परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। परमात्मा के द्वार पर हम नहीं जा सकते। तो परिणाम क्या? मुनिवरों! यह विज्ञान है, यह आध्यात्मिक कहलाता है। इसमें मानव को रत्त रहना है। आज मैं विशेष विवेचना प्रकट नहीं करूँगा, मेरे प्यारे! महानन्द जी, भी बड़े उत्सुक रहते हैं अपने दो शब्दों की विवेचना करने के लिए। आज केवल मैं तो इतना उच्चारण कर रहा हूँ कि बाह्य याग और आध्यात्मिक याग दोनों का समन्वय होना चाहिए। दोनों का जब समन्वय होता है, तो यह जो राष्ट्र है, अश्वमेध याग हो रहा है, जिसको राजा करता है, मुनिवरों! दोनों का समावेश करता हुआ अपने राष्ट्र में प्रजा के सुखद के लिए वह नाना प्रकार का उच्च क्रिया कलाप करता है। राजा जिस क्रिया कलाप को करता है राष्ट्र की प्रजा उसी क्रिया कलाप को करती है तो राष्ट्र महान् बन जाता है।

विचार विनिमय क्या? महाराजा रावण ने महर्षि लोमश, काग भुषुण्ड जी से याग की रचना कराई। वहाँ याग की आभा का जन्म हुआ था। परन्तु क्योंकि साहित्य में अश्व

का वर्णन आता रहता है, विष्णुमयी यागः यह याग विष्णु है। विष्णु कहते हैं सत् को, और वह सतोमयी याग है। राजा के राष्ट्र में मानव सत् में रमण करने लगेगा। अग्न्याधान करने वाला राष्ट्र एक महान् राष्ट्र कहलाता है। मैं आज तुम्हें विशेष विवेचना न देता हुआ केवल इतना ही वाक्य उच्चारण करना है कि हमारा याग पवित्र होना चाहिए। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी दो शब्दों की विवेचना करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, आध्यात्मिक याग और भौतिक याग की चर्चा कर रहे थे। परन्तु वह उस काल की चर्चा करते रहते हैं जिस काल में ऋषि मुनि अपने आसनों पर विद्यमान हो करके अनुसन्धान (शब्द ध्वनि से) करते रहते थे और राष्ट्र उनके चरणों की वन्दना करता रहता था। परन्तु जो वर्तमान का है वह इसके महान् विपरीत है। पुरातन जो काल था अतीत में प्रायः पूज्यपाद गुरुदेव सदैव रमण करते रहते हैं। और जहाँ विद्यमान हो करके अनुसन्धान करते रहे। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से परिचय कराया था बहुत पुरातन काल हुआ जब मैंने यह परिचय कराया था कि आधुनिक जिस काल में हमारी यह आकाशवाणी जा रही है, जिस स्थली पर यह आकाशवाणी जा रही है, मेरा अन्तर्हृदय तो सदैव प्रसन्न रहता है, और यज्ञमान के साथ रहता है। मैं अपने यज्ञमान को पूज्यपाद गुरुदेव के आँगन ब्रहे सो मानो मैं एक अपनी शुभ कामना प्रगट करता रहता हूँ, और हम यह कहा करते हैं हे यज्ञमान! जिस गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता है जिस गृह में द्रव्य को देवताओं को प्रदान किया जाता है, जिस गृह में द्रव्य का महान्, ऊर्ध्वा में कर्म रहता है, वहाँ यज्ञमान का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। क्योंकि सौभाग्य की अखण्डता ही, मानवीयता कहलाती है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव सदैव आत्मा परमात्मा की चर्चा करते रहते हैं। परन्तु आज भी वह दोनों यागों का समावेश करना चाहते हैं, आध्यात्मिक याग का और भौतिक याग का। भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान दोनों का समन्वय करना चाहते हैं। यह बहुत प्रियता है जिस भी काल में दोनों यागों का समन्वय रहा है, दोनों विज्ञान का समन्वय करना चाहते हैं। यह बहुत प्रियता है जिस भी काल में दोनों यागों का समन्वय रहा है,

दोनों विज्ञान का समन्वय रहा है, वह काल भव्य काल रहा हैं उस काल में कुरीतियाँ और एक दूसरे मानव में विडम्बना का जन्म नहीं होता। जहाँ प्रत्येक गृह में अग्निहोत्र, अग्नि की पूजा की जाती हो, ब्रह्म का चिन्तन किया जाता हो वह गृह सौभाग्यशाली होता है क्योंकि वह काल था, जिस काल की मेरे पूज्यपाद गुरुदेव वाक्य प्रकट करते रहते हैं। वाक्यों में चले जाते हैं परन्तु जब मैं महाभारत काल के पश्चात् की वार्त्ताएँ, प्रगट करता रहता हूँ, तो साहित्य भी कहाँ चला गया, मानव का? मानव का विचार कहाँ चला गया? क्योंकि महाभारत के काल ही नाना प्रकार की रूढ़ियों का जन्म हुआ और नाना प्रकार की रूढ़ियों का जन्म होने के पश्चात् नाना सम्प्रदायों में, रूढ़ियों में इस मानव का विभाजन हो गया और मानव की प्रवृत्तियों का जब विभाजन हो गया तो आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद, भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान दोनों पर आक्रमण होना प्रारम्भ हुआ। दोनों पर आक्रमण होता है, जिस भी काल में रूढ़ियाँ बनती हैं क्योंकि रूढ़ि उस काल में बनती हैं, जब परमात्मा, मानव अपने को स्वीकार कर लेता है। जब मानव यह विचारता है, अहम् ब्रह्मस्मि एक शब्द वैदिक साहित्य में आता है। अहम् ब्रह्मस्मि परन्तु देखो, ब्रह्म की पाया नहीं और पहले ही प्रथम अहम् ब्रह्मस्मि कहने लगा। उसमें रूढ़िवाद बन गया। उस रूढ़िवाद का परिणाम यह हुआ, कि आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद दोनों विज्ञान पर आक्रमण होना प्रारम्भ हो गया। जब दोनों प्रकार के विज्ञान पर आक्रमण होना प्रारम्भ हुआ, तो कृतिभा बन गयीं।

मैं आधुनिक काल के कुछ वैज्ञानिकों की कुछ चर्चा भी प्रकट करूँगा। जो भौतिक विज्ञानवेत्ता हैं। वह समुद्र के तट पर किसी किसी काल में, अपनी सभाएँ करते हैं। मानो अपना एक समूह एकत्रित होता है, तो चिन्तन होता रहता है। यह समुद्र में दक्षिणी ध्रुव के आँगन में एक स्थली इस प्रकार की है जहाँ भौतिक वैज्ञानिकों का यन्त्र, जहाँ गया, वह यन्त्र समाप्त हो जाता है। परन्तु किसी किसी काल में, वह यन्त्र समाप्त नहीं होता है। परन्तु आधुनिक काल के वैज्ञानिकों का ऐसा मत है, कुछ वैज्ञानिकों का तो यह मत है कि पूर्व काल के वैज्ञानिकों की एक स्थली यहाँ बनी हुई है। कुछ वैज्ञानिकों का यह मत है कि कुछ लोकों की किरणें इस प्रकार की आती हैं। कुछ वैज्ञानिकों का

यह मत है, क्या मंगल वृत्ति देवाः समुद्र में एक अग्नि का भण्डार है। जो समुद्रों में किसी काल में अग्नि के भण्डार में से तरंगों का जन्म होता है वह विषैली तरंगों का जन्म हो करके यन्त्र को भस्माभूत कर देता है। परन्तु आधुनिक काल के वैज्ञानिकों का नाना प्रकार का मन्तव्य मैं स्वीकार कर रहा हूँ। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा करता हूँ कि पूर्वकाल में जब यहाँ महर्षि भारद्वाज या महर्षि सुकेता इत्यादियों का काल था वैज्ञानिकों का जिन्होंने एक एक यन्त्र में देखो, भ्रणी नक्षत्रों में यान गति करते थे, उनके यानों की प्रतिभा आधुनिक काल का कुछ वैज्ञानिक यह कुछ स्वीकार करता है कि पूर्व काल का विज्ञान विशाल रहा है। कुछ वैज्ञानिक यह कहते हैं कि नहीं, इस विज्ञान की उपलब्धि अभी हुई है। परन्तु जब महर्षि कणाद और महर्षि सुकेता इत्यादियों की विवेचनाएँ आती हैं, तो इस पर कुछ वैज्ञानिक जन मौन हो जाते हैं। तो विचार यह आता है कि वैज्ञानिकों का जो मन्तव्य है, उसमें भिन्न भिन्न प्रकार की भिन्नता मानी जाती है। परन्तु जब मैं यह विचार अपने पूज्यपाद गुरुदेव के समीप लाता हूँ, तो पूज्यपाद गुरुदेव यह कहते हैं कि आधुनिक काल के विज्ञान की जो तुम चर्चा करते हो, वह विज्ञान तो आधुनिक काल का इकाई में रमण कर रहा है। यह तो इकाई वाला विज्ञान है।

पुरातन काल में एक समय महर्षि मार्कण्डेय ऋषि ने पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराया था, कि एक समय मार्कण्डेय ऋषि ने एक मानो चन्द्रमा और पृथ्वी के मध्य में, एक स्थली का निर्माण किया था। उस स्थली पर यन्त्र विद्यमान रहते थे। एक समय किसी काल में माता पार्वती और शिव ने यह दृष्टिपात किया, अपने यन्त्रों के द्वारा यहाँ कोई छाया आ रही है। दोनों अपने यान में विद्यमान हुए और वह मार्कण्डेय मुनि के यान में प्रवेश हो गए। यान में प्रवेश हो करके पुनः जब पृथ्वी पर आए, तो उसके ऊपर चिन्तन का एक समूह होने लगा। तो इसलिए मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को इनकी विज्ञानमयी जो चर्चाएँ हैं उनका मैं उद्गार प्रगट कर रहा हूँ। परन्तु आधुनिक काल का विज्ञान, कोई यन्त्र ऐसा निर्माणित नहीं कर सका है, जिस विज्ञान की धाराएँ चन्द्रमा और पृथ्वी दोनों को आकर्षण शक्ति में विद्यमान हो करके कोई यन्त्र वहाँ कोई स्थली

का निर्माण हो सके। पूर्व के वैज्ञानिकों ने अतीत के वैज्ञानिकों ने, पूर्व काल में उन्होंने ऐसे यन्त्रों का निर्माण किया था। महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज की चचाएँ मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अब तक कोई प्रगट नहीं कीं। परन्तु वह करते ही रहते हैं। कोई इस प्रकार का यन्त्रों का नही, निर्माणित किया मानो देखो, जो भारद्वाज की विज्ञानशाला से उड़ान उड़ करके, वह अपनी स्थली पर भारद्वाज मुनि के काल में तीन स्थली ऐसी थीं, जिस पर जा करके भारद्वाज मुनि के शिष्यगण अनुसन्धान करते रहते थे और वह अनुसन्धान कैसे थे? पृथ्वी और चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति में एक स्थल बना हुआ था। एक स्थल जहाँ मंगल और बुद्ध की जहाँ दोनों स्थलियों का मिलान होता था, एक स्थल वहाँ नियुक्त किया गया था। एक स्थान जहाँ शुक्र और श्वेनकेतु एक मण्डल कहलाता है, दोनों का जहाँ मिलन होता है, वहाँ एक स्थली का निर्माण किया गया था। तो भारद्वाज का यान उड़ान उड़ता, चन्द्रमा और पृथ्वी की आकर्षण शक्ति में स्थिर हो जाता। परन्तु देखो, वही मंगल और बुद्ध की स्थलियों पर स्थिर हो जाता परन्तु यान अन्तरिक्ष में रहते रहे। उनकी आयु भी विशाल मानी गयी। आज मैं उस विज्ञान में जाना नहीं चाहता हूँ। यह तो मेरे पूज्यपाद विज्ञान को चर्चा करते ही रहते हैं। परन्तु मैं तो पूज्यपाद गुरुदेव की आधुनिक काल का विज्ञान की कुछ चर्चा करा रहा हूँ, जो आधुनिक काल का विज्ञान लगभग सहत्रों यन्त्र इस प्रकार के हैं जो अग्नि के मुख में चले गए हैं और आधुनिक वैज्ञानिकों को यह प्रतीत नहीं हो रहा वह यन्त्र मेरा कहाँ चला गया? हमारा यन्त्र कहाँ चला गया? वह अग्नि के मुख में चला गया है, या समुद्र की आन्तरिक गति में चला गया है या अवाशेष ऊर्ध्वा में गति कर गए हैं? आधुनिक काल के वैज्ञानिकों को यह प्रतीत नहीं हो रहा है।

परन्तु मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को ये प्रगट कराने के लिए मैं एक परिचय करा रहा हूँ और वह परिचय यह है कि दक्षिण ध्रुव के आँगन में एक स्थली है, जहाँ यन्त्र समाप्त हो जाते हैं। मुझे तो कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि द्वापर काल के कुछ वैज्ञानिकों की एक स्थली बनी हुई है जो चन्द्रमा और पृथ्वी दोनों की आकर्षण शक्ति जहाँ मिलान करती है। वहाँ एक स्थली बनी हुई है, वहाँ एक यन्त्र विद्यमान है। वहाँ मानो देखो,

भीम और घटोत्कच्छ और अर्जुन और भगवान कृष्णा चारों विद्यमान हो करके, अनुसन्धानशाला में यन्त्रों का निर्माण करते रहे हैं। तुम्हें यह प्रतीत होगा, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आपको तो यह प्रतीत है, कि महाभारत के काल में जिस समय जयद्रथ को नष्ट करने की प्रवृत्तियाँ, भगवान कृष्णा के हृदय में जन्म हुई, तो उस समय उन्होंने दूरभाष से अपने गृह में दूरभाष से कहा कि इस समय सूर्य की कृत्यों का समाप्त किया जाए। तो उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया था, और यन्त्र से सूर्य की किरणें रात्रि का रूप धारण कर गई थी। परन्तु जब अर्जुन उसकी मृत्यु शैय्या पर विराजमान हुए, उस समय भगवान कृष्णा बोले सोभवातः जयद्रथ इत्यादि जब सर्वत्र आ गए, आ जाने के पश्चात् उन्होंने दूरभाष से भगवान कृष्णा ने कहा शवांगनी यन्त्र का प्रहार कर दिया जाए जिससे सूर्य की किरणों से, यह रात्रि समाप्त हो जाए। महारानी रुक्मिणी ने ऐसा ही किया। रात्रि का काल समाप्त हो गया था। सूर्य उदय हो गया था। उन्होंने कहा, हे अर्जुन! सूर्य, उदय हो रहा है सूर्य अपनी पराकाष्ठा पर है। जयद्रथ विद्यमान है, इसको शस्त्रों से छेदन किया जाए। तो उस समय अर्जुन ने अपने शत्रु को नष्ट किया था। यह विज्ञान की प्रतिभा जो आधुनिक काल में इस प्रकार का विज्ञान अब तक नहीं उपलब्ध हुआ। इस प्रकार का विज्ञान द्वापर के काल में था। इसी विज्ञान की धाराएँ, कुछ चन्द्रमा और पृथ्वी की आकर्षण शक्ति में, उनकी स्थलियों का कृत्य हो रहा है। उन्होंने कुछ यन्त्र वहाँ विद्यमान किए हैं और जिस भी काल में उनकी सीधी छाया समुद्र में, उस स्थली पर आती है जहाँ दक्षिणी ध्रुव की छवि का अक्रोतों में प्राप्त होती रहती है। जब आधुनिक काल के विज्ञान के यन्त्र उस स्थली पर उसी प्रकार की आभा में परणित उसी प्रतिक्रिया में जब गति करते हैं तो वह जो यन्त्र ऊर्ध्वा में गति कर रहा है वहाँ का जो विज्ञान अप्रोत कर रहा है समुद्र में उनका सूक्ष्म अग्नि का काण्ड बन करके, उनका एक एक धातु का कण बन करके वायु मण्डल में मिश्रित हो जाता है। आधुनिक काल के वैज्ञानिकों को इसलिए उसकी प्रतीति नहीं होती।

तो आज मैं विज्ञान के युग में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को परिचय देना चाहता हूँ जिससे मुझे कुछ विज्ञान की चर्चाएँ प्राप्त हों। परन्तु आज हे

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! आधुनिक काल का विज्ञान, समाज को मैंने पुरातन काल में भी कहा है कि आधुनिक वैज्ञानिक समाज को त्रास दे रहा है, भय की प्रतीति करा रहा है। अरे, भाले प्राणियों! जब यह आत्मा शरीर में रहता है, तो आत्मा के दृष्टिपात करने का, वैज्ञानिकों के समीप कोई यन्त्र का निर्माण अब तक नहीं हुआ है, जब से सृष्टि का प्रारम्भ हुआ है, कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं है जो अन्तर्हृदय में जो आत्मा गति कर रहा है उसका चित्र लिया जाए, कोई यन्त्र ऐसा नहीं निर्माणित हुआ है। यह जो मन है यह मानव के शरीर में गति कर रहा है, इसका कोई चित्र नहीं लिया जाता। जैसे बुद्धि है, बुद्धि मेधा बन करके रहती है, ऋतम्भरा बन करके रहती है, और प्रज्ञावी बन करके रहती है। परन्तु बुद्धि का कोई यन्त्र नहीं बन सका है अब तक जब से सृष्टि का प्रारम्भ हुआ है, नाना वैज्ञानिक हुए हैं, नाना वैज्ञानिक आगे आएँगे, परन्तु कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ। इसीलिए हे मानव! यह जो विज्ञान है यह तुम्हारी बुद्धि का प्रखर उस तक सीमित रहता है, बुद्धि तक सीमित रहता है, जहाँ सीमा बद्ध हो गई वहाँ बुद्धि का भी यन्त्र नहीं आता। परन्तु मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यागों की चर्चा कर रहे थे। महाभारत के काल में, नाना प्रकार की सम्प्रदाय रूढ़ियों का जन्म हुआ। उन रूढ़ियों में याग जैसे उत्तम कर्मों को, मांस की आहुति देना प्रारम्भ कर दिया। उसमें पशुओं की बलि देना प्रारम्भ कर दिया, बलि के मन्तव्य को समाज ने नहीं जाना। बलि के मन्तव्य का अभिप्राय यह है कि किसी कार्य में सत क्रिया से रमण करना और उसमें पुरुषार्थ करने का नाम बलि कहा जाता है। परन्तु यहाँ मानव को, प्राणी को नष्ट करने का नाम बलि स्वीकार कर लिया। यह बलि नहीं कहलाती है, बलि नाम है सुक्रियता में अपने में देखो, इसको समाज में संलग्न कराने का नाम ही बलि कहलाया जाता है। बलि का अभिप्राय केवल इतना ही है और आगे जो बलियों का मन्तव्य चला है, याग हो रहा है गो के मांस को ले करके, गो की इन्द्रियों को ले करके, गो मेध का अभिप्रायः याग उन्होंने जाना। अश्वमेध याग की, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव सुन्दर विवेचना दे रहे थे, जो वेद का मन्त्र कहता है। परन्तु देखो, मध्य काल रूढ़ियों

में, इस प्रकार का हुआ, इन रूढियों ने अश्व के अंगों को ले करके आहुति देना प्रारम्भ कर किया। परन्तु अश्व नाम जहां वैदिक साहित्य में राजा का आता है, मेध नाम जहाँ प्रजा का आता है। अरे, यहाँ पामर प्राणियों ने महाभारत काल के पश्चात् नाना प्रकार की रूढ़ियाँ बन करके यागों के ऊपर उर्ध्वा में कर्मकाण्ड की प्रतिभा उसके ऊपर आक्रमण होना प्रारम्भ हो गया। यह आक्रमण होना ही, नाना प्रकार की रूढ़ियों बन गईं। वह रूढ़ियाँ का जन्म होता रहा, रूढ़ियों के जन्म होने का परिणाम यह हुआ कि सात्विकवाद के ऊपर आक्रमण होना प्रारम्भ हो गया। मानो देखो, कोई भी राजा आए, वह राजा रूढ़ियों में रत्त रहने वाला, क्योंकि राजा कोई भी हो, किसी न किसी रूढ़ि को तो वह स्वीकार करता ही है, और जिस रूढ़ि को स्वीकार करता है उसी का वह प्रचार करता है, उसी का प्रादुर्भाव करता है, उसी का अधिपथ्य करने लगता है। परन्तु राजा का कर्त्तव्य है कि वह सर्वत्र प्रत्येक रूढ़ि के बुद्धिमानों को एकत्रित करने वाला हो, और एकत्रित करके उनकी विचारधारा को ले करके, और जो विचारधारा ऊर्ध्वा में मान्य हो, जो विचारधारा तर्कसंगत हो, जो प्रकाश के उपर स्थिर रहने वाली हो, उसको स्वीकार करके राष्ट्र का उत्थान हो सकता है। राजा अपने राष्ट्र को ऊँचा बना सकता है आज कोई राजा यह कहे कि मैं अपने राष्ट्र को महान् बना सकूँ, यह असम्भव है। क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में भिन्न भिन्न प्रकार के विचारों के मानवीय विचारधारा बनी हुई है, भिन्न भिन्न प्रकार की रूढ़ियाँ बनी हुई हैं और वह रूढ़ि राष्ट्रों की प्रतिभा को जन्म दे रही हैं। आज कैसे राष्ट्र को ऊँचा बनाया जा सकता है?

जब मैं यह विचारता रहता हूँ तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह संसार अग्नि की धाराओं में रमण करने जा रहा है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने बहुत पुरातन काल में, यह वाक्य कहा था, कि अग्नि की धाराओं का जन्म हो गया है, अग्निकांड उत्पन्न हो गए हैं। क्योंकि यह सम्प्रदाय ही अग्नि के काण्ड बन करके रहे ये सम्प्रदाय ही राष्ट्र की प्रतिभा को ले करके, राष्ट्र के अभिप्रायः को ले करके अपनी रूढ़ियों को ऊर्ध्वा में लाना चाहता है, ये रूढ़ियाँ नहीं होनी चाहिएँ। मैं तो यह कहता हूँ, हे राजन्! यदि तू रूढ़ियों को समाप्त करने वाला है, तो ज्ञान का आश्रय लेना होगा। ज्ञान और विज्ञान का आश्रय

लेना होगा, यह जो ज्ञान है यह रूढ़ियों को समाप्त कर सकता है। यदि ज्ञान नहीं है, तो रूढ़ि समाप्त नहीं होगी। यदि मानो देखो, उसकी केवल पद की लोलुपता ही बनी रहेगी, तो पद की लोलुपता समाज को ऊँचा नहीं बना सकती, पद की लोलुपता देखो, मानवीयता को ऊँचा नहीं बना सकती।

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कई काल में ये प्रगट कराया था कि यह राष्ट्र कहाँ चला गया, वैदिक साहित्य कहां जहाँ रूढ़ियों का आक्रमण हुआ तो अग्नि के (पुस्तक से) मुख में पोथी चली गई, विज्ञान चला गया? मुझे स्मरण है महाराजा हनुमान जो सूर्य की किरणों के साथ उनका यान गति करता था। सूर्य की किरणों के साथ उनके विचार सूर्य मण्डल में प्रवेश करते थे। उनकी धाराएँ, उनका विज्ञान गति करता था। उसके ऊपर उन्होंने एक लेखनीबद्ध की थी, एक पोथी का निर्माण किया था जो विज्ञान महाभारत काल के पश्चात् जब रूढ़िवादियों का आक्रमण हुआ तो ऐसे विचार अग्नि के मुख में परिणित हो गए, अग्नि की धाराओं में चले गए। आज मैं इन दुःखद वाक्यों को प्रकट कराने नहीं आया हूँ, केवल विचार यह देने आया हूँ कि राजा को अपना राष्ट्र ऊँचा बनाना हो तो रूढ़ियों को समाप्त करना होगा। भिन्न भिन्न प्रकार के विचार तो होने चाहिएँ परन्तु भिन्न भिन्न प्रकार की रूढ़ि नहीं होनी चाहिएँ। रूढ़ि राष्ट्र का विनाश करती है, रूढ़ि सत्य पर आक्रमण करती है। जहाँ सत्य पर आक्रमण होता है वहाँ रूढ़ियाँ पनप करके राष्ट्र का विनाश हो जाता है। आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह प्रकट करने के लिए नहीं आया हूँ। केवल अपने विचार यह देने आया हूँ कि रूढ़ियाँ समाप्त होनी चाहिएँ। रूढ़ियाँ ही मानव के मस्तिष्क का ह्रास कर देती हैं। राष्ट्रीय पद्धति का ह्रास कर देती हैं। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से विशेष समय लेना नहीं चाहता हूँ। केवल विचार यह है आज का हमारा, जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है वहाँ भव्य याग की रचना हुई। याग को दृष्टिपात करके मेरा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न हुआ, क्योंकि ऋषि मुनि पुरातन काल में प्रत्येक गृह में याग करते रहते थे। याग होते रहते थे। गृह में सुगन्धि होनी चाहिए। अरे, जिनके वंशलज यागों की सुगन्धि करते थे वहाँ मांसो का भक्षण हो करके, दुर्गन्धि हो रही है। आज मैं इन विचारों को लेना नहीं चाहता हूँ।

क्योंकि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कहेंगे यह रूढ़ि के वाक्यों को प्रकट करने लगे हैं, क्योंकि बिना रूढ़ि के वास्तव में कल्याण नहीं है, और रूढ़ि जब बलवती हो जाती है तो विनाश के मार्ग पर ले जाती है।

तो विचार विनिमय क्या? मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊँगा कि हे यज्ञमान! मेरे हृदय की यह कामना है कि तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे और तेरे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे देवपूजा होती रहे। देवजन तेरे गृह में वास करते रहें, ऐसी मेरी सदैव कामना रहती है। मेरे हृदय की यह वेदना है कि तेरा हृदय सदैव महानता में परणित होता रहे। यह आज का वाक् अब मैं समाप्त करने जा रहा हूँ। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से अब आज्ञा पा रहा हूँ।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे! ऋषिवर! मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अपनी वेदनामयी विचारों को प्रकट किया। उनका विचार एक वेदनामयी है। रूढ़ियों के प्रति इन्होंने कई कालों में बहुत सी चर्चाएँ कीं। आज इन्होंने कुछ विज्ञान की चर्चाएँ ली हैं। वास्तव में विज्ञान परम्परागतों में बहुत महत्ता में रहा। क्योंकि ऋषि मुनियों का जीवन या ऋषि मुनि उन्हीं को कहा जाता है जो भौतिकवाद और आध्यात्मिकवाद दोनों के ऊपर उनका अन्वेषण होता रहा है, विचार विनिमय होता रहा। ऋषि कहते ही उनको हैं जो इस संसार के ऊपर चिन्तन और मनन करते हैं। यह उन्हें एक यज्ञशाला के रूप में दृष्टिपात आता है। यज्ञशाला के भिन्न भिन्न रूप बनें। हमें रूढ़ियों को जैसा मेरे पुत्र ने कहा है कि रूढ़ियों समाप्त होनी चाहिएँ अन्यथा इनका आक्रमण सत्यता के ऊपर होता है। अनाधिकार बलवती होता है। विज्ञान का दुरूपयोग होता है तो यह संसार अग्नि के मुख में चला जाता है। रक्तभरी क्रान्ति राजाओं के राष्ट्र में आ जाती है। इसलिए रूढ़ि के ऊपर विचार विनिमय विज्ञान के सहित होना चाहिए। तो यह आज का विचार अब समाप्त होने जा रहा है। मैं भी अपने हृदय से हे यज्ञमान! सौभाग्य की कामना, सदैव महानता यह आज का विचार समाप्त। अब वेदों का पठन पाठन होगा। निवास स्थान : श्री

ओंकार नाथ, मोदी नगर।

९ 01 10 1984 पुष्प 46 आध्यात्मिक एवं भौतिक विज्ञान

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महत्ता का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा सदैव एक आभा में निहित रहते हैं। जितना भी जड़ जगत अथवा चैतन्य जगत् हमें दृष्टिपात आता है उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रायः वह मेरा देव दृष्टिपात आ रहा हैं जितना भी यह ब्रह्माण्ड है उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड का जो मूलक है वह मेरा देव ही तो कहलाता है, जिसके ऊपर परम्परागतों से ही, ऋषि मुनि अपना अध्ययन करते रहे हैं। प्रत्येक वेदमन्त्र को लेकर अपनी विचारधारा व्यक्त करना यह प्रायः महापुरुषों का एक क्रिया कलाप रहा है। एक वेदमन्त्र के शब्दों की विवेचना में अथवा उस शब्द के कर्म में प्रवेश करना और समुचित्त एक शब्द में समुद्रों की कल्पना करते रहते थे और भी गम्भीरता में जब वे परणित हुए तो ब्रह्माण्ड की कल्पना करने लगे। ऐसा दृष्टिपात, ऐसा कुछ अनुभव में भी आया है कि ऋषि मुनि अपनी अपनी विचारधारा में एक अनूठे, महान् और पवित्र रहे हैं जिसके ऊपर ऋषि मुनि प्रायः उस प्रभु को ही निहारते रहते थे, जिस प्रकार माता अपने पुत्र को निहारती रहती है, शिशु को निहारती रहती है। अन्तर्हृदय में मग्न होती रहती है। इसी प्रकार यह जो ऋषि मुनियों का अनुपम क्षेत्र रहा है इसमें वह अनुपमता हमें दृष्टिपात आती हैं और ऋषि मुनियों का ब्रह्माण्ड की और पिण्ड की कल्पना में समय व्यतीत होता रहता था।

आज के हमारे वेद के पठन पाठन में अग्नि का बड़ा विशेष वर्णन आ रहा था और अग्नि की विवेचना में हम कई समय अपनी विवेचना कर पाए हैं परन्तु आज भी हम वह अग्नि जो मानव को प्रकाश, मानव को एक अनुपमता देने वाली है अथवा जो काष्ठों में, समिधा में रत्त रहने वाली है, समिधा ही एक काल में अग्नि कहलाती है। जैसे यह

सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक अग्नि ही अग्निमय, आपो में अप्रत ज्योतियों का एक गहन पुंज, अपने में एक मानवीयता की आभा रत्त रहती है। उसका एक अनुपम तारतम्य, एक अग्नेय ब्रह्म से समन्वय हो करके एक महत्ता की ज्योति की प्रतिष्ठा और उसी में रत्त रहने वाली आभा कहलाती है। आज मैं तुम्हें एक आलौकिक ऋषि मुनियों की सभा में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ ऋषि मुनियों का समाज एकत्रित हो करके एक एक वस्तु, एक एक वाक्य के ऊपर, मानव की आनन्द और आत्म शान्ति के लिए बहुत ऊँची उड़ाने उड़ते रहते थे।

आज मैं तुम्हें उस उड़ान में ले जाना चाहता हूँ जहाँ ऋषि मुनि विद्यमान हो करके आत्म चिन्तन और संसार की समूहिक वार्त्ताओं के ऊपर विचार विनिमय करते रहते थे। एक समय ऋषि मुनियों का एकत्रिकरण हो करके एक भयंकर वन में सभा हुई। महात्मा अर्थभाग की अध्यक्षता में वह सभा हुई। महर्षि अर्थभाग, महात्मा दिग्ध, चाक्राणि गार्गी, महात्मा अश्वल, और भी नाना ऋषि मुनियों का समाज एकत्रित हुआ। महर्षि भारद्वाज मुनि को भी उसमें निमन्त्रित किया गया। याज्ञवलक्य मुनि महाराज उस सभा में विशेष आभा में, ज्योति में विचारधारा को देने वाले थे। सभा में यह कहा गया कि राजा जनक का आगमन होना चाहिए। राजा जनक को निमन्त्रित किया गया तो राजा जनक भी सभा में आ पहुँचे। वह सभा एक राष्ट्रीय, मानवीय अहिंसा परमोधर्मः की वेदी पर उस सभा की अपनी अपनी उड़ान एक विचित्र कहलायी जाती थी।

सभा में सब अपने अपने आसनों पर विद्यमान थे। महात्मा अर्थभाग ने यह कहा कि हम सब यह चाहते हैं कि हम मृत्यु से पार हो जाएँ। कोई मानव, कोई प्राणी यह नहीं चाहता कि मृत्यु होनी चाहिए। यह वार्त्ता हो रही थी, इतने में कहीं से भ्रमण करते हुए महात्मा भुंजु भी वहाँ आ पहुँचे। महात्मा भुंजु के साथ महर्षि सोमवृत्तिका, ब्रह्मचारी कवन्धि, ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी रोहिणी कृतिका आदि आदि उस सभा में विद्यमान हो गए। महात्मा भुंजु ने यह वाक्य श्रवण कर लिया कि मृत्यु पर विजय पाने के लिए यह समाज एकत्रित हुआ है, इनमें दार्शनिक है, विचारक हैं, वेद की आभा में रत्त रहने वाले ऋषि मुनि हैं। महात्मा भुंजु ने कहा, हे अर्थभाग! आप अपने विचारों को व्यक्त

कीजिए। अर्थभाग ने यह कहा, यहाँ राजा भी विद्यमान हैं और राजा जो होता है वह प्रजा का स्वामी कहलाता है। प्रजा का स्वामित्व करने वाला अग्नि के तुल्य होता है जैसे पञ्चमहाभूतों वाला यह अग्नि अपने प्रकाश को दे करके सर्वत्र पाँचों तत्त्व इसके गर्भ में नृत्य करते रहते हैं, इसी में सूत्रित होते रहते हैं। इसी प्रकार, जिस प्रकार पवित्र, महान् राजा होता है उसी प्रकार नाना बुद्धिमान भी उसके गर्भ से समाहित हो जाते हैं। इसलिए राजा जो राष्ट्र का स्वामी है वह राष्ट्र मृत्यु से पार होना चाहता है। तो उस समय याग की रचना की गई नाना प्रकार का साकल्य उन्होंने एकत्रित किया। साकल्य को एकत्रित करने के पश्चात् नाना समिधाओं को ले करके एक ऐसा याग किया जिसमें प्रत्येक प्राणी की भावनाएँ, प्रत्येक प्राणी की विचारधारा यन्त्रों में यन्त्रित हो जाए। महर्षि भारद्वाज मुनि से कहा गया कि हे भगवन्! आप अपने यन्त्रों में हमें उन प्राणियों की भावनाओं को दृश्य कराओ, क्योंकि आपका जो यन्त्रवाद है, आपका जो भौतिक विज्ञान है वह बड़ा विशाल और विचित्र माना गया है। तो महात्मा भराद्वाज मुनि महाराज ने अपने ब्रह्मचारियों को कहा, जाओ यन्त्रों को लाओ। यन्त्रों को लाया गया। प्रत्येक प्राणी जितने भी संसार में कुछ योनियाँ हैं उनके दृश्य आने लगे, जिनमें विषैले प्राणी भी थे, अहिंसा परमोधर्मी प्राणी भी थे। उन सबकी जो आह, सबकी जो दाह थी वह मानव के लिए आकुलित हो गई थी और वह उसको अपने में निगलना चाहती थी मानो सर्पराज है, सर्पराज मार्ग में विद्यमान है। कोई भी मानव अपने में प्रति अकृतो कर देता है तो उस वह अपने विषैले तीखे अवृतों से अपने में लाना चाहता है। इसी प्रकार जितने भी विषैले प्राणी हैं, चाहे वह वायुमण्डल में रत्त रहने वाले हों, चाहे पृथ्वी के गर्भ में हों, चाहे वृक्षों पर रहने वाले हों, प्रत्येक प्राणी मानव को निगलना चाहता है। मुनिवरों! इस सन्दर्भ में ऋषि मुनियों ने कहा कि महाराज! यह नाना प्रकार की तरंगें आ रही हैं और यह तरंग सब मानव के लिए तरंगित कर रही हैं। अब यह विचारा जाए कि मानव को इन तरंगों को समाप्त करने के लिए, इन धाराओं को समाप्त करने के लिए मानव को कौन सा क्रिया कलाप करना है? कौन से क्रिया कर्म को अपना

करके मानव इन तरंगों को समाप्त कर सकता है।
तो उस समय वहाँ जब यह विचारधारा हो रही थी तो चाक्राणि गार्गी ने एक वाक्य कहा था। चाक्राणि गार्गी बोली जब मैं महर्षि रेतु ऋषि महाराज के यहाँ अध्ययन कर रही थी तो उस समय मुझे वेद के गान के लिए कहा गया। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे जो गान की युक्ति युक्त की थी, उसी के आधार पर मैं अपने में गान गाने लगी। भयंकर वन में जब गान गाती रही, गाते गाते इतना स्वर पवित्र बन गया, इतना हृदय स्वच्छ बन गया, क्योंकि वेद ईश्वरीय वाणी है उसमें संसार का ज्ञान और विज्ञान विद्यमान है। इतना मेरे हृदय में अहिंसा परमोधर्म छा गया कि सर्पराज भी चरणों को चुम्बन करने लगे और सिंहराज भी चरणों को चुम्बन करने लगे, तब यह विचार मेरे हृदय में आया कि मानव को अपने को स्वच्छ बनाना हैं उस समय चाक्राणि ने कहा कि मेरे विचार में तो इन तरंगों से कोई मानव पार हो सकता है तो प्रभु! को सर्वत्र स्वीकार करके कवच को हमें धारण करना है। यदि कोई मानव परमपिता परमात्मा के कवच को धारण कर लेता है तो जितने भी प्राणी मात्र हैं वह कवच के गर्भ में समाहित हो जाते हैं और वह जो विषैली तरंगें आ रही हैं उन तरंगों का अपने में समावेश हो जाता है।
ऋषि कन्या ने जब यह वाक्य प्रकट किया तो ऋषि मुनियों में विचार का एक विषय बन गया। महाराजा सुतेति ऋषि महाराज ने अपने पूज्यपाद गुरुदेव का भी ऐसा ही वर्णन किया। उन्होंने कहा कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक समय अपने आसन पर विद्यमान थे, आसन पर विद्यमान होते होते कुछ कर्मपफल ऐसा आया कि उनके पगों में प्राणी अभ्यताम् आभा में रत्त हो गए। उस समय में भी यह कहता रहता है कि पूज्यपाद यह जो प्राणी है यह आप से दूरी हो जाएँ ऐसा कोई यत्न किया जाए। तो पूज्यपाद गुरुदेव यह कहते थे नहीं, यह मेरा कर्मफल है। यह मेरा इसी जन्म में निवारण हो जाए। इन प्राणियों को मेरे माँस का भक्षण करने दीजिए। अहिंसा परमोधर्मः की आभा में पूज्यपाद गुरुदेव रत्त रहते थे। परन्तु कुछ समय के पश्चात् जब आचार्य का हृदय स्वच्छ बन गया, अन्तर्हृदय में अहिंसा परमोधर्मः की तरंगें इतनी महान् बन गई, इतनी स्वच्छता आ गई,

प्राणीमात्र ने उस आसन को त्याग करके अपने गृह को गमन किया।
तो परिणाम क्या? एक द्वितीय विचार ऋषि मुनियों को प्राप्त हुआ। महात्मा अर्थभाग ने यह कहा, भगवन्! यह तो वाक्य मुझे यथार्थता में प्रतीत होता है। एक समय जब मैंने अपने पूज्यपाद के विद्यालय को त्यागा तो मैं भयंकर वनों में तपस्या करने के लिए चला गया। जब मैं तपस्या करने लगा तो मैंने पत्र और पुष्पों का आहार किया और जल के आहार पर अपने जीवन का निर्वाह करता रहा। मुझे पूज्यपाद के आसन को छह माह के त्यागने के पश्चात् मेरे हृदय में अहिंसा परमोधर्मः की प्रतिभा का प्रादुर्भाव हो गया। हृदय में एक भी रजोगुणी, तामोगुणी तरंगें नहीं रहीं। सतोगुणी तरंगों का जन्म हो गया। मेरे अंग संग जो भी छूने लगता वही पवित्रता की वेदी पर विद्यमान होने लगा। जब विद्यमान होने लगा तो मैंने यह विचारा कि मानव का हृदय जितना स्वच्द होता है, मानव के हृदय में जितना महत्ता का दिग्दर्शन होता है उतना ही अहिंसा परमोधर्मी बन करके, परमपिता परमात्मा क्योंकि अहिंसा परमोधर्मी है, वे परमपिता परमात्मा के निकट चला जाता है और वहाँ जा करके यह कहता है जितने विषैले प्राणी हैं यह भी मेरे अंग हैं। मेरी प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित रहते हैं। इस आभा को उच्चारण करके महर्षि भारद्वाज मुनि भी मौन हो गए।
ऋषि मुनियों को विचार विनिमय करने का एक और वाक्य स्मरण आया। अर्थ भाग ने पुनः महात्मा भुंजु से कहा कि महाराज! आपका इसमें क्या मन्तव्य है? महात्मा भुंजु आयुर्वेद के मर्म को भी जानते थे। आयुर्वेदाचार्य भी थे और योगाचार्यों में रत्त रहने वाले थे। वह महात्मा दधीचि के अंग संग रहने वाले थे। महात्मा भुंजु ने कहा, मैं आपको क्या उच्चारण करूँ? समय सम्भवः देवाः ब्रह्मः एक समय जब मैं युवा काल में था, अपने गृह में याग करता रहता था, मेरी पत्नी भी याग करती रहती थी। याग करते करते जब देवी के गर्भ में अश्वनी कुमारों का शिशु प्रवेश हो गया तो उस समय मैंने यह उपदेश दिया कि तुम आयुर्वेद का अध्ययन करो और चन्द्रमा की कान्ति में करो। क्योंकि चन्द्रमा जो है वह आयु का प्रतीक कहलाता है। वह अमृत को बहाने वाला है, अमृतमयी देने वाला है। इसलिए अमृतमयी बनना है। हमें अमृतधारा को अपनाना है। जब मैंने यह

वाक्य कहा तो मेरी देवी ने यही कहा अमृतो अमृताम् देवः चन्द्रमा वह चन्द्रमा की कान्ति में आयुर्वेद का अध्ययन करती रही। वह पत्तियों के पंचांगों का पान करती रही। जब उनका हृदय वनस्पति तुल्य दूसरों के परोपकार में रत्त हो गया, क्यों वृक्ष जो होता है वह दूसरों के लिए छाया देता है, वह दूसरों के लिए अमृत देता है, अपने में सूर्य की किरणों में तपता रहता है। जब इस प्रकार वनस्पतियों वाले मर्मज्ञ विचार बन गए तो उन्हें स्वप्नवत् में एक ऋषि का दर्शन हुआ और यह कहा कि तुम्हारा हृदय स्वच्छ हो गया है। तुम चन्द्रमा की कान्ति द्वारा उनके रसों का स्वादन किया करो। पत्नी ने ऐसा ही किया। पत्नी ने जब दो माह तक चन्द्रमा की कान्ति का स्वादन किया तो हृदय इतना पवित्र बन गया, इतनी महत्ता, शीतलता आ गई कि उस समय सर्पराज भी पत्नी के समीप आते। उनके श्वासों की सुगन्धि ले करके वह अपने अपने आसनों को गति करते रहते थे। तो परिणाम यह कि जितना मन स्वच्द होगा उतना ही मानव अहिंसा परमोधर्मी बनेगा और विषैले प्राणी भी उस समय अहिंसा परमोधर्मी बनेगा और विषैले प्राणी भी उस समय अहिंसा परमोधर्मी की वेदी पर आ जाएँगे। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने दो शब्दों की विवेचना करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अभी अभी मेरे पूज्यपाद भौतिक याग और आध्यात्मिक याग की चर्चा कर रहे थे। परन्तु यह उस काल की चर्चा करते रहते हैं जिस काल में ऋषि मुनि अपने आसनों पर विद्यमान हो करके अनुसन्धान करते रहते थे और राष्ट्र उनके चरणों की वन्दना करता रहता था। परन्तु जो वर्तमान का काल है वह नितान्त विपरीत है। पुरातन काल जो काल था अतीत, वह प्रायः पूज्यपाद गुरुदेव सदैव वर्णन करते रहते हैं और जहाँ विद्यमान हो करके अनुसन्धान करते रहे। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव को परिचय कराया था। बहुत पुरातन काल हुआ जब मैंने यह परिचय कराया था कि जिस काल में हमारी यह आकाशवाणी जा रही है, जिस स्थली पर यह आकाशवाणी जा रही है, मेरा अन्तर्हृदय तो सदैव प्रसन्न रहता है और यज्ञमान के साथ रहता है। मैं यज्ञमान को अपनी शुभकामना प्रकट करता रहता हूँ और हम यह कहा करते हैं हे यज्ञमान! जिस गृह में द्रव्य का

सदुपयोग होता है, जिस गृह में द्रव्य को देवताओं को प्रदान किया है, जिस गृह में द्रव्य का महान् ऊर्ध्वा में कर्म करता रहता है, वहाँ यज्ञमान का सौभाग्य अखण्ड बना रहे क्योंकि सौभाग्य की अखण्डता ही मानवीयता कहलाती है।
मेरे पूज्यपाद गुरुदेव सदैव आत्मा परमात्मा की चर्चा करते रहते हैं। आज भी वह दोनों योगों का समावेश करना चाहते हैं, आध्यात्मिक याग का और भौतिक याग का भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान दोनों का समन्वय करना चाहते हैं। यह बहुत प्रियता है। जिस भी काल में दोनों यागों का समन्वय रहा है, दोनों विज्ञानों का समन्वय रहा है वह काल भव्य काल रहा है। उस काल में यहाँ कुरीतियाँ एक दूसरे मानव में विडम्बना का जन्म नहीं होता। जहाँ प्रत्येक गृह में अग्निहोत्र, अग्नि की पूजा की जाती हो, ब्रह्म का चिन्तन किया जाता हो तो वह गृह सौभाग्यशाली होती है, क्योंकि वह काल था जिस काल का मेरे पूज्यपाद वाक्य प्रकट करते रहते हैं। परन्तु जब मैं महाभारत काल के पश्चात् की वार्त्ताएँ प्रकट करता रहता हूँ तो वह साहित्य कहाँ चला गया मानव का? मानव का विचार कहाँ चला गया? क्योंकि महाभारत काल के पश्चात् ही नाना रूढ़ियों का जन्म हुआ और नाना प्रकार की रूढ़ियों का, सम्प्रदायों का जन्म होने के पश्चात् मानव में विभाजन हो गया और मानव की प्रवृत्तियों का जब विभाजन हो गया तो आध्यातिमक विज्ञान, भौतिक विज्ञान दोनों पर ही आक्रमण होना प्रारम्भ हुआ। जिस भी काल में रूढ़ियाँ बनती हैं दोनों पर आक्रमण होता है। क्योंकि रूढ़ि उस काल काल में बनती है जब मानव अपने को परमात्मा स्वीकार कर लेता है जब मानव यह विचारता है अहम् ब्रह्ास्मि एक शब्द वैदिक साहित्य में आता है अहम् ब्रह्मास्मि ब्रह्म को पाया नहीं और पहले ही ब्रह्मास्मि कहने लगा तो उसमें रूढ़िवाद बन गया। उस रूढ़िवाद का परिणाम यह हुआ कि आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद दोनों विज्ञान के ऊपर आक्रमण होना प्रारम्भ हुआ। जब दोनों प्रकार के विज्ञान पर आक्रमण होना प्रारम्भ हुआ तो कृतिका बन गयी। मैं आधुनिक काल के वैज्ञानिकों की चर्चा भी प्रकट करूँगा।
भौतिक जो विज्ञानवेत्ता हैं वह समुद्र के तट पर किसी किसी काल में अपनी सलाहें करते हैं। मानव समूह एकत्रित होता है और चिन्तन होता रहता है। समुद्र के आँगन में

दक्षिणी भू में एक स्थली इस प्रकार की है कि भौतिक वैज्ञानिकों का यन्त्र जहाँ गया वह यन्त्र समाप्त हो जाता है। आधुनिक काल के वैज्ञानिकों का ऐसा मत है कि पूर्व काल के वैज्ञानिकों की यहाँ कोई स्थली बनी हुई थी। कुछ वैज्ञानिकों का यह मत है कि लोकों की किरणें कुछ इस प्रकार की आती हैं। कुछ वैज्ञानिकों का यह मत है कि समुद्र में अग्नि का एक भण्डार है जो किसी काल में, अग्नि के भण्डार में से तरंगों का जन्म होता है विषैली तरंगों का जन्म हो करके यन्त्र को भस्मीभूत कर देता है। आधुनिक काल के वैज्ञानिकों का नाना प्रकार का मन्तव्य मैं वर्णन कर रहा हूँ। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा करता हूँ कि पूर्वकाल में जब यहाँ महर्षि भारद्वाज महर्षि सुकेता इत्यादियों का वैज्ञानिकों का काल था जिनके एक एक यन्त्र, एक एक यान कई नक्षत्रों में गति करते रहते थे। उनके यानों की प्रतिभा, आधुनिक काल का वैज्ञानिक यह स्वीकार करता है कि पूर्वकाल का विज्ञान विशाल रहा है और कुछ वैज्ञानिक यह कहते हैं कि नहीं, इस विज्ञान की उपलब्धि अभी हुई है। परन्तु जब महर्षि कनाद और महर्षि सुकेता इत्यादियों की विवेचनाएँ आती हैं तो कुछ वैज्ञानिक मोन हो जाते हैं तो विचार आता है कि वैज्ञानिकों का जो मन्तव्य है उसमें भिन्न भिन्न प्रकार की भिन्नता मानी जाती हैं। परन्तु जब मैं यह विचार अपने पूज्यपाद गुरुदेव के समीप लाता हूँ तो पूज्यपाद गुरुदेव यह कहते हैं कि आधुनिक काल के विज्ञान की जो तुम चर्चा करते हो यह आधुनिक काल का विज्ञान तो एक इकाई में रमण कर रहा है। पुरातन काल में महर्षि मार्कण्डेय ऋषि ने पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यह वर्णन कराया था कि एक समय मार्कण्डेय ऋषि ने चन्द्रमा और पृथ्वी के मध्य में एक स्थली का निर्माण किया था। उस स्थली पर यन्त्र विद्यमान रहते थे। एक समय किसी काल में माता पार्वती और शिव ने यह दृष्टिपात किया अपने यन्त्रों के द्वारा कि यहाँ कोई छाया आ रही है। दोनों अपने यान में विद्यमान हुए और मार्कण्डेय ऋषि के यान में प्रवेश हो गए। यान में प्रवेश हो करके पुनः जब पृथ्वी पर आए तो उसके ऊपर चिन्तन का एक समूह होने लगा।

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को इनकी विज्ञानमयी जो चर्चाएँ हैं उनका मैं उद्गार प्रकट कर रहा हूँ। परन्तु आधुनिक काल का विज्ञान कोई यन्त्र ऐसा निर्माणित नहीं कर सका

है जिस विज्ञान की धाराएँ चन्द्रमा और पृथ्वी दोनों की आकर्षण शक्ति में विद्यमान हो करके वहाँ कोई स्थली निर्माण हो सके। अतीत के वैज्ञानिकों ने पूर्व काल में ऐसे यन्त्रों का निर्माण किया था। महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज की चर्चाएँ मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अब तक कोई प्रकट नहीं की। परन्तु वह करते भी रहते हैं। भारद्वाज मुनि के काल में तीन स्थली ऐसी थीं जिस पर जा कागे भारद्वाज के शिष्यगण अनुसन्धान करते रहते थे और वह कैसे अनुसन्धान थे? जो पृथ्वी और चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति में एक स्थल बना हुआ था। जहाँ मंगल और बुद्ध दोनों का मिलान होता है। एकस्थल वहाँ नियुक्त किया गया था, एक स्थान जहाँ शुक्र और श्वेणकेतु एक मण्डल कहलाता है दोनों का जहाँ मिलन होता है वहाँ एक स्थली का निर्माण किया गया था। तो भारद्वाज का यान उड़ान उड़ता तो चन्द्रमा और पृथ्वी की आकर्षण शक्ति में स्थिर हो जाता। वही मंगल और बुद्ध की स्थलियों पर स्थिर हो जाता। परन्तु यान अन्तरिक्ष में रहते रहे। उनकी आयु भी विशाल मानी गयी। आज मैं उस विज्ञान में जाना नहीं चाहता हूँ। मेरे पूज्यपाद विज्ञान की चर्चा करते ही रहते हैं। परन्तु मैं तो पूज्यपाद को आधुनिक काल के विज्ञान की कुछ चर्चा कर रहा हूँ कि जो सहस्रों यन्त्र अग्नि के मुख में चले गएं हैं और आधुनिक काल के वैज्ञानिकों को प्रतीत नहीं हो रहा कि यन्त्र मेरा कहाँ चला गया है? वह अग्नि के मुख में चला गया है या समुद्र की आन्तरिक गति में चला गया है या उसके अवशेष ऊर्ध्वा में गति कर गएं हैं आधुनिक काल के वैज्ञानिकों को यह प्रतीत नहीं हो रहा है। आज मैं अपने गुरुदेव को यह प्रकट करा रहा हूँ।

महाभारत काल में घटोत्कच्छ और बर्बरी ने भगवान कृष्ण की सहायता से एक ऐसा यन्त्र पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच स्थित कर रखा है जो इतना शक्तिशाली है कि उसकी छाया समुद्र में एक स्थान पर जा रही है। जो यान उस छाया के अन्तर्गत आ जाता है उसका एक अंकुर भी नहीं रहता। मैं विज्ञान में अधिक नहीं जाना चाहता। हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। तेरे गृह में द्रव्य का इसी प्रकार सदुपयोग होता रहें अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊँगा।

मेरे प्यारे! ऋषि मण्डल! अभी अभी मेरे प्यारे! महानन्द जी कुछ विज्ञान की चर्चा कर

रहे थे। आधुनिक काल के विज्ञान के बारे में तो हम नहीं जानते परन्तु पुरातन काल में भौतिक विज्ञान बहुत ऊर्ध्वा में था। परन्तु दोनों विज्ञानों का समन्वय रहा है। जैसे मेरे पुत्र ने कहा है हम भी यज्ञमान को, हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे और तू अपने द्रव्य का सदुपयोग करता रहे और देवताओं की पूजा होती रहे। अब हमारा यह वाक्य समाप्त होने जा रहा है। हमारे वाक्यों का अभिप्राय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, उस देव का गुण गाते हुए इस भव सागर से पार हो जाएँ। यह है आज का वाक्। अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ हम कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा इसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी। निवास स्थान : प्रिंसीपल रघुवीर सिंह तोमर, कासिमपुर खेड़ी

१० 14 10 1984 पुष्प 46 महानन्द जी का सम्प्रदाय और

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ यह जो पठन पाठन का कर्म है यह परम्परागतों से ही, विचित्रत्तम माना गया है, क्योंकि हमारे वैदिक साहित्य वालों ने प्रत्येक वेदमन्त्र की ध्वनि पर अपना विचार विनिमय किया है। हमारे यहाँ उसी ध्वनि के लिए हम सदैव ध्वनित रहते हैं और विचारते रहते हैं कि हमारी जो वैदिक ध्वनि है इसमें प्रायः एक महत्ता का दर्शन होता है और यह जो ध्वनि है यह मानव को एक पथ पर अग्रसर करा देती हैं तो इसीलिए हमें विचारना है कि जिस भी काल में हम वेदों के पठन पाठन में परणित होते जाएँ तो उसी काल में हमारा विशुद्ध रूप हमारे समीप होना चाहिए। क्योंकि वेदों के गायन के सम्बन्ध में बहुत पुरातन काल हुआ जब ऋषि मुनि अपने अध्ययन करते रहे हैं और उन्होंने यह कहा कि वेदों का जो जटा पाठ है, माला पाठ है, विसर्ग पाठ है, यह जो नाना प्रकार की वेदों की जो ध्वनियाँ हैं, यह स्वरों से कटिबद्ध होती हैं और वह जो स्वरों का कटिबद्ध होना है, यह हमें एक मार्ग के लिए प्रेरित करता रहता है। उस मार्ग में जाने के लिए एक शब्द ही है जो मानव को ऊँचा बना देता है। तो इसीलिए प्रत्येक मानव का परम्परा गतों से यह प्रायः विचार

रहा है कि प्रत्येक रूप में हमारा शब्द महान् और पवित्र होना चाहिए। इस शब्द विज्ञान के सम्बन्ध में बहुत से महापुरुषों ने एक नहीं, अनन्य हुए हैं, इस प्रकार के जिन्होंने अपनी मानवीयता का दिग्दर्शन किया है। और एक एक वेदमन्त्र की ध्वनि को अपनाते हुए वह अपने को प्रकाश में लाने के लिए सदैव तत्पर रहे हैं।

आज मैं विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ। केवल तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए कि हमारा वेद का मन्त्र क्या कह रहा है? वेद के मन्त्रों में विष्णु की बड़ी विवेचना आती रहती है, माता वसुन्धरा की बड़ी विवेचना आती रहती है। क्योंकि वह जो परमपिता परमात्मा, जो जगत् नियन्ता है अथवा इसका निर्माण करने वाला है वह महान् एक एक कण कण में विद्यमान रहता है। यह संसार उसका आयतन जब बन जाता है तो कोई मानव यह नहीं उच्चारण कर सकता कि यह इसका आयतन नहीं। संसार का एक एक कण कण उसका आयतन माना गया है। तो उस परमपिता परमात्मा को वैदिक साहित्य में वसुन्धरा के नामों से वर्णन किया हैं वसुन्धरा के नामों से वर्णन करते हुए उन्होंने कहा कि यह संसार बड़ी विचित्र एक शाला है। प्रत्येक मानव इस शाला में विद्यमान हो करके अपने विचारों की उड़ान उड़ने लगता है।

मैं आज तुम्हें उस काल में ले जाना चाहता हूँ जिस काल में उद्दालक गोत्र के ऋषियों के यहाँ उनके वंशजों में यागों के प्रति भिन्न भिन्न प्रकार की विवेचना होती रही हैं और वह अपनी उड़ान उड़ते रहते थे, याग से परमाणु को जानते रहते थे। तो हमारे यहाँ भिन्न भिन्न काल में इस विज्ञान और याग को मापने का अपना दृष्टिकोण भी रहा है और वह दृष्टिकोण बड़ा विचित्र रहा है। हमारे ऋषि मुनियों ने एक वाक्य बड़ा ऊर्ध्वा में उड़ान उड़ते हुए कहा, यदि हम भौतिक विज्ञान, भौतिक यज्ञशाला को हम आध्यात्मिकशाला से उसका समन्वय नहीं करते तो याग हमसे विमुख हो जाएगा। याग की प्रतिभा एक भिन्न बन जाएगी। तो यह वाक्य बहुत पुरातन काल हुआ जब इस वाक्य के ऊपर चिन्तन किया गया। तो महर्षि स्वेणकेतु ने एक समय कहा था वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में कि महाराज! याग तो आध्यात्मिकवाद का एक रूप माना गया है। क्योंकि याग का नाम ही सगतिकरण कर लेता है तो उस संगतिकरण के करते ही

वह आख्याकियाएँ हमारे समीप आने लगती और विचारने लगते हैं हमारा आध्यात्मिकवाद और भौतिकयाद दोनों ही विचित्रतम माने गए हैं।

आज मैं विशेष विवेचना प्रकट नहीं करूँगा। केवल तुम्हें यह विचार देता चला जाऊँ कि मानव का आध्यात्मिकवाद ऊँचा रहना चाहिए। क्योंकि आध्यात्मिकवादी प्राणी ही मृत्यु से विजयी होना चाहता है अथवा मृत्यु को अपने निकट नहीं लाना चाहता। हमारे यहाँ भिन्न भिन्न प्रकार के याज्ञिक हुए। परन्तु उन याज्ञिक पुरुषों ने मृत्यु को विजय करने की घाषणा की। जैसे राजा जनक के यहाँ यह घोषणा हुई एक समय कि मृत्यु को विजय करना है, आध्यात्मिकवाद याग के द्वारा। यही प्रश्न किसी काल में महाराजा अश्वपति के यहाँ हुआ था। महाराजा अश्वपति के यहाँ एक समय महर्षि कवन्धि, महर्षि प्रवाण, महर्षि शिलभ्य, महर्षि दालभ्य, महर्षि सोमकेतु और ब्रह्मचारी कृतिभानु और महर्षि अष्टावक्र इनका एक समय बड़ा विचार हुआ और यह विचार विनिमय होता रहा। अष्टावक्रजी ने यह कहा कि ब्रह्माण्ड का आध्यात्मिकवाद से समन्वय करो। परन्तु कुछ ने कहा, यह जो याग है यह ब्रह्माण्ड की एक सूक्ष्म कल्पना है इसको अपने आध्यात्मिकवाद से और भौतिकवाद दोनों का समन्नवय करके अपने हृदय, अपने समाज में एक शान्ति की स्थापना करो। यही प्रसंग महाराजा अश्वपति के यहाँ उत्पन्न हुए। तो महर्षि प्रवाहण ने यह कहा, यदि हम आध्यात्मिक विज्ञान और भौतिकवाद दोनों का समन्वय नहीं करते तो दोनें भिन्न भिन्न होकर अज्ञानता का मूलक बन जाएगा। बहुत सुन्दर वार्त्ता ऋषि ने कही। प्रवाहण ने यह महाराजा अश्वपति से भी कहा था कि हम दोनों को एक दूसरे के पूरक जब तक स्वीकार नहीं करेंगे तब तक हमारा कल्याण, हमारे राष्ट्र की महत्ता, समाज में एक महत्ता का हम दर्शन नहीं कर सकेंगे।

तो यह वाक्य बहुत पुरातन काल हुआ जब विद्यालयों में भी यह प्रसंग आया। विद्यालय वालों ने यह कहा कि विद्यालय उस काल में ऊँचे बनेंगे जब हमारी चरित्र संहिता विचित्र बन जाएगी और यदि चरित्र की संहिता न हीं बन पाती, उसका हम संगतिकरण नहीं कर पाते तो विद्यालय कदापि भी ऊँचे नहीं पाते। तो राजाओं के समीप, अश्वपति के समीप यह वाक्य आते रहे। आज तो मैं केवल इतना उच्चारण करने के लिए आया

हूँ कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन के लिए ऊँचा बनाने के लिए प्रत्येक रूपों में अपना संगतिकरण करना है और वह जो संगतिकरण है वही मानव को ऊँचा बनाता है। अब मैं अपने विचारों को विराम दे रहा हूँ। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी दो शब्द, उत्कट इच्छा, सदैव इनकी कोई पिपासा जागरूक रहती है। अब यह अपने दो शब्द उच्चारण करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् भयः सम्भवः सर्वाम् गच्छम् भवतिः मानम् रथेषहुः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव बड़ी एक गम्भीर मुद्रा में हमें ले जा रहे थे। वास्तव में प्रायः इनके विचारों की जो मुद्रिका है वह हमारे हृदय में प्रवेश कर जाती है और हम उन विचारों को जब अन्तःकरण में, उनकी विचारधाराओं का मनन करना प्रारम्भ करते हैं तो प्रायः हमें ऐसा दृष्टिपात आता है जैसे परमपिता परमात्मा के विशाल भवन में विद्यमान हो करके हमारा अस्तित्व कुछ नहीं रह पाता। आज का हमारा वाक्य जहाँ यह हमारी वाणी जा रही है वहाँ मैं एक याग का दिग्दर्शन कर रहा था। मेरा अन्तर्हृदय सदैव प्रसन्न रहता है और उन यागों में एक ही मेरी कामना रहती है कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। क्योंकि प्रत्येक मानव अपने सौभाग्य की कामना ही चाहता रहता है। और यह विचारता रहता है कि सौभाग्य अखण्डता में परणित होता रहे। जिस धारा को अपनाने के पश्चात् मानव के जीवन में एक महत्ता का दिग्दर्शन होता है। परन्तु आज मैं तुम्हें वहाँ ले जाना चाहता हूँ, अपने पूज्यपाद को परिचय कराना चाहता हूँ, महाभारत काल के पश्चात् कोई काल ऐसा आया है जिस काल में याग का क्रिया कलाप और मानव के जीवन का संगतिकरण यह दो रूपों में विभाजित हो गए और यह विभक्त कैसे हुआ? यह विभक्त हुआ है अज्ञानता के कारण। क्योंकि जब यहाँ हिंसा का सम्बन्ध याग में परणित रहा है, मेरे पूज्य पाद गुरुदेव यह प्रकट करा रहे थे कि मानव के जीवन में हिंसा नहीं रहनी चाहिए, अहिंसा परमोधर्मी बनना चाहिए। क्योंकि जो मानव अहिंसा परमोधर्म की कल्पना और उसमें ऊर्ध्वा उड़ान उड़ता रहता है तो वह मानव याग के ऊर्ध्वा स्वरूप में रत्त हो जाता है और जिस काल में महाभारत के काल के पश्चात् इन यागों को दो रूपों में

विभक्त कर दिया। मानव का आध्यात्मिकवाद भिन्न बन गया और भौतिक विज्ञान भिन्न हो गया। जो भौतिकवादी थे उन्होंने याग को एक हिंसा का केन्द्र बनाया। परन्तु यहाँ ब्राह्मण समाज ने दो वेदियों का चलन किया याग के सम्बन्ध में परम्परागतों से एक वेदी होती है जिसमें अग्न्याधान होता है, जिसमें अग्नि प्रदीप्त होती है। परन्तु कुछ ब्राह्मण समाज ने, वाम मार्ग समाज ने उसको द्वितीय रूप दे दिया। एक वेदी हिंसा से निर्माणित है और एक वेदी अहिंसा से निर्माणित है। तो जो हिंसा से है वह तो यज्ञ कुण्ड हो गया। उस वेदी का नाम यज्ञ कुण्ड कहने लगे। परन्तु जो वेदी रह गई उसे देवताओं का पूजन कहने लगे। यह दो स्वरूप बने महाभारत काल के पश्चात्।

परन्तु कोई मानव यह उत्तर मुझे नहीं दे पाता कि जब तुम याग करते हो तो याग में दो वेदियों का अभिप्राय क्या है? आधुनिक जगत् का प्राणी तो इसे खण्डणीय स्वीकार करेगा परन्तु यह खण्डनीय नहीं। यह केवल एक विचार है और जब हम उस यज्ञशाला के निकट, यज्ञकुण्ड के निकट परमात्मा की उपासना करते हैं, अग्न्याधान करते हैं तो वास्तव में पूजा वह कहलाती है। परन्तु जहाँ तक पूजा का यह प्रसंग आया, हमने वेदों से दूरी हो करके अपने तारतम्य के कुछ शब्दों को ले करके यह कहने लगे कि यह देव पूजा है। देवपूजन होगा, क्रिया कलाप पश्चात् होगा। परन्तु मैं इसका भी कोई विरोध नहीं करना चाहता। मेरा कोई विरोध का तात्पर्य नहीं है, केवल जानकारी के लिए। हमारे यहाँ जब महाभारत के काल में अश्वमेध याग हुआ तो अश्वमेध याग में एक वेदी का निर्माण किया गया। यज्ञ कुण्ड का जब निर्माण किया तो उसके अंग संग विद्यमान हो करके याग हुआ। वह राजेश्वरी याग कहलाता है।

मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के साथ बहुत से यागों में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, राजाओं के यहाँ। मुझे वह काल स्मरण है जब महाराजा रघु के यहाँ एक याग हुआ था। वह भी काल स्मरण है जब महाराजा अश्वपति के यहाँ वृष्टि याग हुआ था। परन्तु उन यागों में मुझे एक महत्ता का दर्शन होता रहा, परन्तु महाभारत काल के पश्चात् जो हिंसा का चलन हुआ, वाममार्ग का चलन हुआ, उन्होंने पशुओं की बलि देना प्रारम्भ कर दिया। जब पशुओं की बलि देने लगे, बलि को समाज ने जाना नहीं बलि को कोई

भी समाज नहीं जान रहा है। बलि का अभिप्राय यह है अपने को समर्पित कर देना। किसी वस्तु को समर्पित कर देने का नाम और उस क्रिया कलाप में रत्त रहने का नाम बलि कहलाता है। समाज में न जान करके अज्ञानता की प्रतिभा आ गई और उस अज्ञानता में हुआ क्या कि यज्ञ की दो वेदी बनीं। एक हिंसा से प्रेरित है, एक अहिंसा से प्रेरित हैं यहाँ अज्ञानता जब बलवती हुई तो धर्म और मानवता का ह्रास होने लगा। इसी का महाभारत काल के पश्चात् इस याग को आत्मा का अंग, आध्यात्मिक अंग न स्वीकार करके दो रूप बन गए, इसी से संसार में नाना प्रकार के मत मतान्तरों का जन्म हो गया। नाना सम्प्रदायों का जन्म हो गया। उन सम्प्रदायों में कोई हिंसा के अंग को ले करके चल दिया। कोई अग्नि की पूजा करने एक अंग को लेकर के चल दिया। कोई यह स्वीकार करने लगा प्रभु का चिन्तन करना हमारे लिए पर्याप्त है। हम इस क्रिया कलाप में नहीं जाना चाहते जहाँ हिंसा का प्रादुर्भाव होता रहता है। जब यह विचार समाज का बना तो उसी के अनुसार नाना प्रकार के सम्प्रदाय बने। क्योंकि राजा ने उन सम्प्रदायों को नहीं विचारा। जब सम्प्रदायों को, मत मतान्तरों को नहीं विचारात ो आज उन्हीं मत मतान्तरों में नाना प्रकार की रक्तभरी कान्ति का सञ्चार हो रहा है। क्योंकि यदि मत मतान्तर नहीं होते यह रूढ़ियाँ नहीं होतीं तो एक दूसरे के रक्त को पान करने के लिए यह मानव तत्पर न होता। यह राष्ट्र की सूक्ष्मता रही है। क्योंकि महाभारत के काल से राष्ट्र केवल स्वार्थी बना और राजा प्रजा के वैभव को संग्रह करने वाला बना। तो संग्रह करने वाले बनने से ही वह सम्प्रदायों के ऊपर विचार विनिमय नहीं कर सका। वह किसी भी विचार को ले करके कि वेद क्या है, याग क्या है? आध्यात्मिकवाद क्या है? इससे मानव उपराम चला गया। जब मानव इससे भ्रमित हो गया, समाज में घृणा हुई और नाना प्रकार के मत मतान्तरों की प्रतिभा का जन्म हो गया।

हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैंने कई काल में वर्णन कराया जो उल्टे मार्ग के पथिक बन जाते हैं वह हिंसा के मार्ग में प्रवेश कर जाते हैं और जो यह विचारते हैं कि प्रभु अनन्तता में है, प्रभु को अनन्तमयी दृष्टिपात करने वाला विचारते रहो अन्त में उसका

छोर प्राप्त नहीं होता। जैसे बहुत से सम्प्रदाय इस प्रकार के हैं आधुनिक जगत् में पूज्यपाद जो कहते हैं कि बुद्धि से क्रिया कलाप न करना ही यह ईश्वरीय कृत्य है। मैं यह कहा करता हूँ हे भोले प्राणियो! यदि तुम बुद्धि से कार्य नहीं करोगे, यदि तर्क सिद्धान्त तुम्हारा नहीं रहेगा, तो बिना तर्क के तुम्हारे जीवन की सार्थक्ता क्या है? तो इसीलिए धर्म हो, मानवता हो, किसी भी क्षेत्र में जाने वाले हों, उनमें एक विचार विनिमय होना चाहिए। उसमें एक तर्क सिद्धान्त होना चाहिए, जिस तर्क सिद्धान्त को ले करके हम अग्रणीय बन करके समाज को ऊँचा बना सकें और अपनी बुद्धि का जो नृत्य है वह नृत्य होना चाहिए। उस नृतिका में ला सकें। तो परिणाम हमारे विचारों का यह है मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह परिचय देना चाहता हूँ कि महाभारत काल के पश्चात् जो अज्ञानता का प्रादुर्भाव हुआ, नाना प्रकार के सम्प्रदाय बन गए। उससे राष्ट्र दूषित हो गया। विचारों में दूषितपन आ गया। यह प्रायः आना नहीं चाहिए था। क्योंकि इसमें सबसे सूक्ष्म राजाओं का क्रिया कलाप ऊँचा न रहा क्योंकि वह अपने कर्त्तव्य से विहीन हो गए और जब कर्त्तव्य से विहीन हुए तो तर्क शास्त्र को अपना नहीं सके, जब तर्क शास्त्र को अपनाया नहीं तो केवल सम्प्रदाय बन गए। उन सम्प्रदायों का जो प्रतिशोध है वह राष्ट्र और समाज के ऊपर आ गया। जहाँ राष्ट्र और समाज दोनों सम्प्रदायों के आँगन में प्रवेश कर जाएँगे रूढ़िवाद में, तो व्यापक विचारों की सूक्ष्मता हो जाएगी। प्रायः होती रहती है और प्रायः ऐसा हुआ। प्राणी प्राणी के रक्त को पान करने के लिए तत्पर रहा इन सम्प्रदायों में प्रायः ऐसा रहा है कि प्राणी प्राणी को विनाश के मार्ग पर ले जा रहा है। मैं यह विचारता रहता हूँ कि यह विचार प्रायः आने नहीं चाहिए थे और यह केवल मैं जानता रहता हूँ कि याग को अपने अपने से अवहेलनित किया है। याग को अवहेलना में लाए हैं और उसके हिंसक रूपवन करके अशुद्ध प्रवृत्ति बन गयी। इसलिए मुझे यह जानकारी समाज से प्रतीत होती रहती है। मैं वायु मण्डल से जानता रहता हूँ। परन्तु उस आभा में मानव को सदैव लाना चाहिए जैसे हम भौतिक याग में परिणत हो करके आध्यात्मिकवाद में प्रवेश कर जाते हैं और वही आध्यात्मिक और भौतिकवाद दोनों का समन्वय हो करके मानव समाज का कल्याण हो जाता है इसलिए

प्रत्येक मानव को समाज में प्रतिभाषित रहना चाहिए।

एक समय मुझे स्मरण आता रहता है मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि महर्षि लोमश और काग भुषुण्ड जी महाराज रावण के यहाँ अश्वमेध याग करा रहे हैं। चलो उस याग में गमन करेंगे। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव और मैं, हम दोनों उस याग में पहुँचे तो काग भुषुण्ड जी और महर्षि लोमश मुनि महाराज याग कर रहे थे। याग प्रारम्भ हो रहा था। उस अश्वमेध याग का अभिप्रायः था कि अश्व नाम राजा का और मेध नाम प्रजा का, जिसमें दोनों में सुख और शान्ति की महत्ता की स्थापना का दिग्दर्शन होता रहे। तो यह दोनों का एक ही अभिप्राय था। उस याग को हमने दृष्टिपात किया। अश्वमेध याग प्रजा के सुखार्थ किया जाता है और यदि उसमें आध्यात्मिकवाद नहीं होगा तो याग से प्रजा का कल्याण कैसे होगा? यह हम नहीं जान पाए हैं परन्तु प्रायः ऐसा होता रहा है कि प्रत्येक मानव अपने में मानवीयता का जहाँ दर्शन करता रहता है वहाँ नाना की रूढ़ियों के ऊपर भी विचार करता रहता है। मैं आधुनिक काल का जो राष्ट्रवाद चला हुआ है यह तो कोई मैं राष्ट्रवाद स्वीकार नहीं कर रहा हूँ। यह तो स्वार्थवाद की परता कहलाती है। इसको राष्ट्रवाद की संज्ञा देना मेरे लिए बड़ी अशोभनीयता रहेगी। परन्तु मैं यह कहता हूँ कि आधुनिक काल में राष्ट्र की कोई प्रतिभा नहीं है। जहाँ हिंसा की प्रतिभा बलवती होती हो और अहिंसा की प्रवृत्ति में सूक्ष्मवाद आ गया हो, उस राष्ट्र का राष्ट्र स्वीकार नहीं करना चाहिए। यह हमारा मन्तव्य रहा है। जब मानव अपने उदर को माँस भक्षण की एक धारा बना लेता है तो वह क्या मानव कहलाएगा? उस मानव की मानवीयता क्या है? जब मानव केवल रसना के रसोस्वादन में लगा हुआ अपने उदर को माँस की आहुति बना लेता है। सुरा और सुन्दरी में यह राष्ट्रवाद की प्रवृत्तियाँ लगी हुई हैं। यह समाज कैसे ऊँचा बनेगा? मैं राष्ट्रवाद से यही कहता हूँ हे राष्ट्रवाद, तू अपने राष्ट्र से इस रूढ़िवाद को नष्ट करता चल। यदि तेरे राष्ट्र में रूढ़िवाद पनपता रहा तो प्रत्येक रूढ़ि एक दूसरे में रक्त को पान करने के लिए पिपासी हो रही है, तत्पर हो रही है। विचारधारा बनती चली जा रही है। वायुमण्डल में दूषित परमाणुओं का प्रादुर्भाव हो गया है जब मैं वायुमण्डल की प्रतिभा में जाता हूँ, मैंने अपने पूज्यपाद

गुरुदेव को कई काल में यह वर्णन कराया था, महाभारत काल का एक यान अन्तरिक्ष में विद्यमान है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह प्रकट कराया कि महाराजा! घटोत्कच्छ और भीम, श्वेतवाचक, बर्बरीक और बभ्रुवाहन पाँचों ने एक यन्त्र का निर्माण किया था और समुद्र के तप रस उसकी छाया आती रहती है। आज से 5500 वर्ष पूर्व उस यन्त्र का निर्माण हुआ था और वह अन्तरिक्ष में विद्यमान है। और इस आधुनिक काल का यहाँ के वैज्ञानिकों का यन्त्र जब गति करता है और उसकी छाया में आ जाता है तो उस यन्त्र का एक अंकुर भी नहीं रह पाता क्योंकि वह इस प्रकार का यन्त्र है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि प्रभु! समुद्रों के तटों पर वैज्ञानिकों का समाज एकत्रित होता है। वह विचारता है कि यह कोई देव की ही कृति है। कोई कहता है कि पूर्वकाल के वैज्ञानिकों का यह क्रिया कलाप है। आधुनिक काल में इस प्रकार के यन्त्रों का निर्माण नहीं हो सका जो उस यन्त्र की अग्नि को अपने यन्त्र की अग्नि से समावेश करा सके। परन्तु यहाँ प्रत्येक राष्ट्र के वैज्ञानिक लगे हुए हैं कि हम उस समुद्रों के तट वाले विज्ञान को जानना चाहते है। परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव वह यन्त्र ऐसा है उसकी जहाँ भी छाया जाती है चाहे वह जल में जाने वाला यन्त्र हो, चाहे वायु में गति करने वाला हो, जहाँ भी उसकी छाया आ गई वहाँ वह यन्त्र समाप्त हो जाता है। आधुनिक काल के वैज्ञानिकों को यह प्रतीत नहीं हुआ है कि वह जो हमारा यन्त्र भस्माभूत हो गया है उसका हम एक अंकुर प्राप्त कर लें। वह मौन हो जाते हैं। धाराएँ बनती रहती हैं, वैज्ञानिकों का विचार बनता रहता है कि प्रदूषण, दूषित वायु मण्डल को किस प्रकार समाप्त किया जाए?

तो यहाँ याग में विश्वसनीय वह अपने को लाना चाहते हैं। परन्तु वह जो बाहरीय जगत् के विज्ञान को निर्माणित कर रहा है वह आन्तरिक जगत् के विज्ञान को उपलब्ध नहीं होने देता। इसकी उपलब्धि जब होगी जब मानव आध्यात्मिक याग का भौतिकवाद में परणित करता हुआ वह इस क्रिया कलाप में आ जाए तो यह प्रदूषण समाप्त हो सकता है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैं कोई विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ। यज्ञमान के सम्बन्ध में मेरा

हृदय यज्ञमान के साथ रहता है। हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। तेरे जन्म की धाराएँ विचित्रतम, जन्म जन्म के संस्कारों की प्रतिभा मानव के हृदयों में नृत्य करती रहती हैं। परन्तु यह चर्चा तो मैं किसी काल में ही करूँगा। आज तो केवल इतना उच्चारण करना है, हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे और वह यज्ञमान महान् पवित्र होता है जिसके द्रव्य का सदुपयोग होकर के वायु मण्डल की धाराओं में रत्त करने वाला हो। इससे ऊँचा और सौभाग्य प्राणी का क्या हो सकता है। बहुत पुरातन काल हुआ मेरे पूज्यपाद को भयंकर वनों से लाया जाता था। राजा ला रहे हैं याग के लिए। याग प्रारम्भ किया तो वृष्टि हो रही है। वह तपस्वियों के द्वारा ही याग होना चाहिए। तपो ब्रह्म वाचः तपो हिरण्यम् रथः तप ही अपने रथ को लेकर के द्यौ मण्डल में त्याग देता है। तो आज मैं विशेष विचार न देता हुआ केवल यह एक ही मेरी प्रार्थना रहती है, हे प्रभु! तू आधुनिक काल के राष्ट्रवेत्ताओं को सुबुद्धि प्रदान कर जिससे उनकी सुबुद्धि में यह आ जाए कि याग करना हमारा कर्त्तव्य है। रूढ़ियों को नष्ट करना है, यह भिन्न भिन्न प्रकार की जो रूढ़ियाँ हैं यह रक्तभरी क्रान्ति के अवशेषों का निर्माण कर रही हैं। रक्तभरी क्रान्ति कुछ काल में आने को तत्पर है। धीमी धीमी क्रान्ति आ रही है। सम्प्रदाएँ एक मूल हैं उनमें। कोई मोहम्मद के मानने वाला है, कोई नानक के मानने वाला है। परन्तु यह सब रूढ़ियाँ एक दूसरे के रक्त को पान करने के लिए तत्पर हो रहीह ै। ऐसा क्यों है, क्योंकि राजा पवित्र नहीं है। यदि राजा पवित्र है तो प्रत्येक आचार्य को अपने समीप एक विचारधारा वाले प्राणियों का प्रादुर्भाव करके रूढ़ियों का विनाश कर सकता है और यदि रूढ़ियों का विनाश नहीं हुआ तो वह समय दूरी नहीं है जब एक एक प्राणी प्राणी का भक्षण करने जा रहा है। तो इस प्रकार मैं गुरुदेव को निर्णय करा रहा हूँ कि प्रत्येक मानव अज्ञज्ञनता में लगा हुआ है। धर्म के नाम पर धर्म को अग्रणीय बना करके क्या क्या कर रहा है? इसको मैं उच्चारण करने में असमर्थ हूँ।

मेरे पूज्यपाद धर्म की विवेचना करते रहते हैं। कोई भी ऐसा वाक्य नहीं गुरुदेव का जो धर्म से पिरोया हुआ न हो। धर्म क्या है? धर्म मानव की इन्द्रियों में समाहित हो रहा

है। धर्म केवल परमात्मा के बाहरीय जगत् को अपना करके राष्ट्रीयता है और राष्ट्रीयता नीचे स्तर पर रहता है और धर्म उपराम है। इस राष्ट्रवाद को सीमित जो भी सम्प्रदाय स्वीकरता है तो जानो कि रक्तभरी क्रान्ति के अवशेषों को जन्म दे रहा है। यह जो धर्म है यह राष्ट्र से ऊँचा होता है, राष्ट्र से ऊर्ध्वा में गति कराने वाला होता है। इसका संगतिकरण जब किया जाता है तो संगतिकरण से यह प्रतीत होता है कि धर्म राष्ट्र नहीं होता। राष्ट्र तो धर्म की रक्षा करने के लिए होता है। धर्म को ऊँचा जानने के लिए, धर्म क्या है? मानवप का धर्म दृष्टिपात करना। सुदृष्टिपात करोगे तो तुम्हारा पूजन होगा, कुदृष्टिपान करोगे तो तुम्हारी अवहेलना होगी संसार में। तुम्हारी आत्मा ही तुम्हें अवहेलनित बना देगी। इसी प्रकार धर्म क्या है? धर्म मानव की ज्ञानेन्द्रियों में समाहित हो रहा है। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय के साकल्य को एकत्रित करके यज्ञमान अपने याग को परणित होता है और ऋषि मुनि इन्द्रियों को एकत्रित करके हृदय में याग करता है तो मोक्ष को चला जाता है। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मेरे हृदय में दाह बनी रहता है, मानव अपने विचारों में कहाँ चला गया है? नाना प्रकार के सम्प्रदाय अपने जीवन में बना करके केवल सत्यता को चिन्तन में नहीं लाता, यह उसका कितना दुर्भाग्य हो रहा है? प्रत्येक वस्तु को सत्यता की दृष्टि से सत्यता पर अंकित करना चाहिए। जब सत्यता से उसे अंकित किया जाता है तो उसे चिन्तन का विषय बनाया जाता है। कुछ सम्प्रदाय ऐसे हैं जो धर्म को चिन्तन का विषय नहीं बना रहे हैं। क्योंकि नहीं बनाना चाहते? क्योंकि यदि उसको अपनाते हैं तो उसमें व्यापकवाद आ जाएगा। धर्म आएगा, धर्म आएगा तो रूढ़ि त्यागी जाएगी। इसलिए रूढ़ियों को त्यागना बहुत अनिवार्य है और धर्म और मानवता की रक्षा के लिए मानव को सदैव तत्पर रहना चाहिए। आज का विचार मैं विशेष न देता हुआ, केवल यह हे यज्ञमान! तेरे जीवन की प्रतिभा महान् बनी रहे। इसके पश्चात् मैं अपने वाक्यों को विराम दे रहा हूँ।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अपने दो शब्दों में अपने हृदय की दाह, अपने हृदय में जो अग्नि प्रदीप्त हो रही है उसके उद्गार प्रकट किए। उनके विचारों में एक विचित्रता रहती है। आज का हमारा विचार इतना ही है कि आज मैं यज्ञमान

इत्यादियों के सम्बन्ध में उनके जीवन की धारा विचित्र बनी रहे। यह आज का वाक् अब समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह कि रूढ़ियों को समाप्त करना, धर्म और मानवता की आभा को ले करके ऊँचा बनाना है। हिंसा हमारे जीवन का कोई अंग नहीं। अहिंसा अंग बना करके अपने जीवन को ऊँचा बनाएँ क्योंकि यह बहुत अनिवार्य है। यह है आज के वाक्यों का अभिप्राय। अब मुझे समय मिलेगा, शेष चर्चाएँ कल प्रकट करेंगे। स्थान : खतौला

११ 04 02 1985 पुष्प 46 अन्न की महत्ता

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महत्ता का वर्णन किया जाता है क्योंकि वह अनुपम है। वह पुरोहित है, पराविद्या में ले जाने वाला है, उसका जितना भी ज्ञान अथवा विज्ञान है वह इसके सर्वत्र एक रूप का दिग्दर्शन कराता रहता है। जब हम यह विचारते रहते हैं कि परमपिता परमात्मा की जो महती है अथवा उसका ज्ञान और विज्ञान है वह इस अखंड की आत्मा में निहित हो रहा है जिसके ऊपर प्रत्येक मानव परम्परागतों से एक महानता का दिग्दर्शन, एक मानवीयता में सदैव दृष्टिपात आता रहता है। आज का हमारा वेद का मन्त्र भिन्न भिन्न प्रकार की वार्त्ताएँ अथवा भिन्न भिन्न प्रकार की आभाओं का वर्णन करा रहा था।

आज के हमारे वेद के पठन पाठन में ज्ञान और विज्ञान की धाराएँ अथवा उसके स्वरूपों का वर्णन आ रहा था और वेदमन्त्र मानो अपने में पूर्णता का दर्शन कराता रहा है और यह विचार प्रायः हमारे मानवीय दर्शनों में अथवा एक एक आभा में निहित होता रहा है। हमारे यहाँ प्रत्येक शुभकार्यों का जो क्रियाकलाप है वह प्रायः मानवीय मस्तिष्कों में होता रहता है। संसार का कोई प्राणी ऐसा नहीं है जिसकी मनोनीत आभा में मानवीय दर्शनों की प्रतिभा का दर्शन अथवा मानवीयता की आभा का दर्शन और याग का दर्शन

न हो रहा हो। किसी भी पञ्चमहाभौतिक तत्त्वों में जब मानव प्रवेश होता है तो उनमें भी प्रायः ऐसा ही दिग्दर्शन कर रहा है।

तो विचार यह कि परमपिता परमात्मा का जो अमूल्य जगत् है, इस जगत् में जो क्रिया कलाप मानव को दृष्टिपात आ रहा है, वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में दृष्टिपात आ रहा है वह सर्वत्र अद्भूत एक परमपिता परमात्मा की महानता और पराविद्या दिग्दर्शन हो रहा है। मैं विशेष आभाओं में ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय केवल यह आज का हमारा वेदमन्त्र कहता है कि मानव को गान गाना चाहिए। गान के लिए मानव को प्रेरित कर रहा है। वेदमन्त्र कहता है कि मानव को गान गाना चाहिए परन्तु वह तन में गाना चाहिए। गान गाने वाला मानव जब हृदय से गान गाता है, हृदय से उद्गीत गाता रहता है तो अग्नि भी अपने में प्रचण्ड हो जाती है। हमारे यहाँ एक वाक्य स्मरण आ रहा है, एक समय महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ एक याग होने लगा, तो ब्रह्मचारी सुकेता, कवन्धि दोनों उस याग में उद्गाता बने। जब उद्गीत गाने लगे और उद्गीत गाते गाते याग में जो आहुति दी जा रही थी वह पृथ्वी को प्राप्त हो रही थी। ब्रह्मचारी सुकेता ने कवन्धि से कहा कि महाराज! यज्ञ की आहुति तो देव लोक को जानी चाहिए, द्यौ में प्रवेश होनी चाहिए क्योंकि यज्ञमान की ज्ञान की जो प्रेरिकता है उसका भाव अभी सिद्ध होता है। जबकि वह द्यौ लोक में सध जाता है, द्यौ लोक में अग्नि जाती है द्यौ लोक में साकल्य का सूक्ष्म रूप जाता है। तो उद्गाता गीत गाने लगा। ब्रह्मचारी कवन्धि ने जब उद्गीत गाया उस समय यज्ञशाला में अग्नि प्रचण्ड हो गई होता जब वहाँ उच्चारण करने लगे, स्वाहा की ध्वनि आन्तरिक जगत् से बाह्य जगत् से स्वरूप को धारण करने लगी तो अग्नि महान् प्रचंड बन बैठी और वह अग्नि उद्गाताओं के शब्दों को श्रोताओं के स्वाहा शब्दों को वह अपनी तरंगों में विद्यमान करा करके द्यौ लोक में प्रवेश होने लगी विचार क्या? द्यौ लोक में जब वह अग्नि प्रवेश हो गई तो वह शब्द द्यौ लोक में स्थिर हो जाता था वे जब द्यौ लोक में स्थिर होते तो समय आने पर जिस प्राणी के शब्द होते हैं वे प्रायः उसी प्राणी को प्राप्त होने लगते हैं। तो यह हमारा उद्गीत ऐसा है कि उद्गीत मानव को गाना चाहिए मानव जब उद्गीत गाता है उद्गीत गाने वाला वृष्टि करा लेता है। जब

उद्गीत गाने वाला उद्गीत गाने वाला वृष्टि करा लेता है। जब उद्गीत गाने वाला उद्गीत गाता है तो हिंसक प्राणियों को अहिंसा में परिवर्तन कर देता है जब उद्गीत गाने वाला उद्गाता गाने लगता है अन्तर्हृदय में प्रकाश हो जाता है वही प्रकाश मानव की मानवीयता में प्रवेश हो जाता है।

आओ मेरे प्यारे! मैं आज तुम्हें गान की महिमा वर्णन करने नहीं जा रहा हूँ। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है कि जब गान गाने वाला, उद्गीत गाने वाला उद्गीत गाता गाता वह आन्तरिक शब्दों को, अपने को महावाहन रूप में आवाहन करने वाला अपने पूर्वजों के शब्दों की ध्वनियों को अपने श्रोत्रों में पान कर लेता है तो देखो, विचार क्या प्रत्येक वस्तु को साधना चाहते थे यह भी साधना का एक विषय है। अनुष्ठान का विषय है यह प्रायः प्राणों का विषय कहलाता है बहुत पुरातन काल में हमने यह वर्णन करते हुए कहा था। मेरे प्यारे! महानन्द ने मुझे कई काल में यह प्रकट करारया कि आधुनिक काल का प्राणी महात्मा यह कागभुशुण्ड जी को केवल वह पक्षियों के रूप में स्वीकार करता है मैंने अपने पुत्र से वर्णन करते हुए कहा कि यह मानव की धृष्टता है, यह मानव का एक विचार है। पक्षीगणों की वार्त्ताओं का इनके विचारों को अपने हृदय में तो अनुष्ठानिक लोकों से उनके शब्दों को अपने हृदय में तो अनुष्ठानिक लोकों से उनके शब्दों को अपने हृदय में मनन करता है। परन्तु देखो, एक समय की वार्त्ता है सम्भव भवाः एक समय सात्य ऋषि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे, तो सात्य ऋषि एक समय उद्गीत गाने लगा। उनकी माता बाल्यकाल में यह कहा करती थी कि हे बालक तुम उद्गीत गाना उद्गीत माता भी जानती थी और जब सात्य ऋषि उद्गीत गाता था तो उनके अंग संग सर्पराज आ जाते थे। वह इस प्रकार का उद्गात था जब वह गीत सात्य, ऋषि ने गान के रूप में गाया तो एक सर्पराज आ गये, एक दूसरे सर्पराज आ गएं उनकी भाषा क्योंकि प्रत्येक प्राणी की अपनी भाषा होती है। उनकी भाषा में, अपनी भाषा में जब वे अपना उद्गीत गाते हैं अथवा शब्दों का उच्चारण करते रहते तो दूसरा प्राणी वह अपनी जातीयता के शब्दों को जातीयता में अपने में पान करने लगता है। तो जब सर्पराज एक दूसरे की भाषा में अनुष्ठान कर रहे थे तो सत्य ऋषि महाराज

उन सर्पराजों की भाषा को जानने लगे। उन सर्पराजों की भाषा को जब जानने लगे जान करके एक सर्पराज ने कहा कि महापुरुष का केसा उद्गीत गा रहा है? सर्पराज ने कहा, बहुत प्रिय यह हमारी अन्तरात्मा को प्रिय लगा रहा है। तो दोनों की एक दूसरे की अन्तरात्मा उसके उद्गीत गाने से दोनों प्राणी, दोनों सर्पराज प्रसन्न हो रहे थे।

वह उसका जो उद्गीत है उसका जा गान है महर्षि सात्य ऋषि महाराज नित्यप्रति उद्गीत गाते रहते थे। इसलिए हमारे यहाँ यज्ञों में भी उद्गीत का, उद्गाता का विशेष महत्व माना गया है। जब यज्ञशाला में विद्यमान हो करके, दक्षिणा मुखारबिन्दु हो करके जब वह गीत गाता है तो उस यागकर्त्ता का हृदय, श्रोताओं का हृदय उनकी जो स्वाहा कहने की जो विचित्र शैली है वह अन्तरिक्ष में प्रवेश हो जाती है। तो आज मैं इस क्षेत्रों में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता, विचार केवल यह कि मुनिवरों! हम उच्चारण कर रहे थे। महर्षि भारद्वाज मुनि की चर्चाएँ। तो कागभुशुण्ड जी वास्तव में देखो, वे पशु या पक्षी नहीं थे वह एक महान् ऋषि क्या अस्प्रहो वाचम् वहीवृता मुनिवरों! देखो, मुझे ऐसा स्मरण है कि कागभुशुण्ड की जो माता थी उसका नाम सुसवेत्री था। तो सुसवेत्री का अभिप्राय यह जो अपने प्रिय क्रिया कलापों में स्वतंत्र हो तो उनका नामोकरण स्वतंत्रीय था। परन्तु देखो, पिता का नाम सोम कात्यांग कहलाता था। तो सोम कात्यांग ऋषि के यह पुत्र कह लाते थे। तो सोम कात्यांग ऋषि थे वह बड़े महान् और कई प्रकार के गान को जानते थे वह सुसवेत्री में भी कई प्रकार के ज्ञानों को जानती थी। वह जब गान गाती रहती थी। तो वह किसी काल में मल्हार रागों की प्रतिभा का एक चलन हमारी माताओं में रहा है और देखो, पुरुषों में, ऋषि मुनियों में एक विद्या रही इसको दीपावली गान कहते थे। दीपावली उद्गीत करते थे। वह उन्होंने गान गाया तो प्राणायाम किया और वो प्राणायाम शीतली प्राणायाम् और खेतरी मुद्रा दोनों प्राणायामों का मिलान किया, अपान और प्राण दोनों एक सूत्र में लाना, लाने से जो गान गाते थे। उसका मत्स्य कुल की वाणी में कलाप हो जाता है। उस कलाप में एक अग्नि की प्रतिभा का जन्म हो करके प्राण अग्नि का द्यौतक कहलाता है वही उन्हीं गान से दीपावली बन जाती है तो यह सब विद्याएँ हमारे वैदिक साहित्य में हमें प्रायः प्राप्त होती हैं जब वेदों

का अध्ययन किया जाता है तो वेदों के अध्ययन में स्वर होता है एक व्यञ्जन होता है। तो स्वर और व्यंजन नदोनों का जब समन्वय करता हुआ अप्राण और प्राण का दोनों का समन्वय करता हुआ उद्गाता उद्गीत गाता है तो अनुपमता में इस प्रकार प्राप्त हो जाता है।
तो मैं आज उस क्षेत्र में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। परन्तु विचार केवल यह उच्चारण कर रहा था कि महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ उद्गाता उद्गीत गाने लगा। यज्ञशाला में अग्नि प्रचण्ड हो गई, शब्द द्यौ लोक में प्रवेश हो गया। उद्गीत गाने लगा उद्गीत गीत आनन्द उद्गीतता में परणित होता रहा है। तो विचार विनिमय क्या? मेरे प्यारे! देखो, अभी अभी हम उच्चारण कर रहे थे महर्षि कागभुषुण्ड जी के पिता का नाम कात्याग और माता का नाम सुसवत्री था। माता लोरियों का पान कराती रहती जैसे कागा अपनी चंचल प्रवृत्तियों में निहित रहता है इसी प्रकार मुनिवरों! देखो, काग भुशुण्ड जी की प्रवृत्तियों में इस प्रकार की आभा माता निहित करती रहती थी। पिता उसी प्रकार की विद्या का पान कराता रहता। महर्षि लोमश मुनि महाराज का भी उनका दोनों का बड़ा विचित्र समन्वय रहता। दोनों विचारों का अपने में संगतिकरण करते रहते।
तो इस विचार में तुम्हें नहीं ले जाना चाहता हूँ, जहाँ हमने अपने विषय को शान्त, विराम दिया था और हमारा विषय क्या था? मेरे प्यारे! हमारा विषय था। प्राणायाम की प्रतिभा। प्राणायाम कैसे संकल्प से परमब्र में प्रवेश कर जाता है? कैसे इंगला, पिंगला, सुषुम्णा नाड़ी का एक रूप होता है। यह भी प्राणमयी सत्ता होती है, जब वह प्राणायाम में विशिष्ट बन जाता है तो एक वर्ष का संकल्प करता है और संकल्प करके वह उसी संकल्प में उसका उपचार, उसी संकल्प के आधार पर हो जाता है। क्योंकि संकल्प में एक विचार है, संकल्प में जगत् है, एक ऋषिवर, गुरुजन जब शिष्य को प्राणायाम की प्रतिक्रिया में ले जाते हैं तो इंगला पिंगला के द्वारा, मानव सुषुम्णा के द्वारा उसे संकल्प कराते हैं। उसी संकल्प से उसका उपचार उत्तीर्ण भी हो जाता है। अपनी अपनी धराओं में रत्त हो जाता है। जैसे हमारे एक वृती प्राणायाम है, एक वृतीका का प्राणायाम है, एक सोमवृती का प्राणायाम है, एक हमारे यहाँ संकल्पमय प्राणायाम है, एक वाचसम्भूत

प्राणायाम हैं तो ये भिन्न भिन्न प्रकार के प्राणायाम कहलाते हैं जैसे हमारे यहाँ शीतली प्राणायाम है, आज हमें देखो, जल का अभाव बन गया है। शीतली प्राणायाम को जब खेंचरी मुद्रा प्राणायाम में मिलान करते हैं तो ऐसा हमें प्रतीत होता है जैसा कि जल को सिंचन कर रहे हैं। एक समय एक महापुरुष जब क्षुधा से पीड़ित होता है और वह यह जानता है कि अब मुझे क्षुधा लग रही तो सोमकृतिका प्राणायाम करता है और खेचरी मुद्रा से उसका समन्वय करता है और अन्तरिक्ष में, अपने में रमण करता रहता है तो मुनिवरों! देखो, क्षुधा का विनाश हो जाता है। तो परिणाम क्या? यह जो अन्तरिक्ष यह सर्वत्र तत्त्वों का जगत् कहलाता है। सब इसमें विद्यमान रहते हैं।

तो जब ऋषि ने प्राणों का वर्णन कराया तो उस समय देवी शकुन्तका ने कहा कि प्रभु! जब यह मानव अस्तित्व में भी नहीं तो यह परमाणु उवाच नहीं होता, तब यह परमाणु उवाच कहाँ रहता है? तो ऋषि ने वर्णन किया कि जब अस्तित्व में नहीं होता तो यही परमाणु मुनिवरों! देखो, अन्डम् ब्रह्माः अन्डम् गृहे वाचम् वृती देवाः यह जो मन है, मन की उत्पत्ति क्या है? प्रत्येक मानव के हृदय में यह आशंका है, मेरे हृदय में, हमारे हृदयों में कोई आशंका नहीं है परन्तु निवारण करना है। प्रत्येक आभाओं में ये जन्म होता रहता है। कि यह मन क्या है? क्योंकि मन एक संकल्प है, मन एक प्रवृत्ति का सूक्ष्मत्तम तत्त्व माना गया है। इसकी प्रतिभा इसका रूप अन्न के रूप में रहता है। तो यह मानव के द्वारा जब अन्न की उत्पत्ति, अन्न को जो पान करता है तो मन प्रबल हो जाता है, मन नाना प्रकार के रूपों को लाना प्रारम्भ कर देता है। अन्न के द्वारा ही कहीं यह दार्शनिक बन जाता है, कहीं संकल्पवादी बन जाता है, कहीं यह प्राण में प्राणायाम करने लगता है। यह मन एक ऐसा विचित्र बन जाता है। अन्न के पान से ही यह पुत्र यज्ञ की भी कामना करता है। यह मन जब अन्न के द्वारा अन्न में, अन्न में तन्मय हो जाता है, अन्न के रूप में प्रगट हो जाता है तो यही नाना प्रकार के संकल्पों को लाल ला करके अपने हृदयों में प्रवेश करा देता है।

तो विचार विनिमय क्या अन्नं ब्रह्मा देखो, ये परमाणु अन्न में विद्यमान रहते हैं। यह अन्न वह है जो प्रभु के रूप परणित होता है, पुत्र इस अन्न को पान करके ही पशु के हृदय

में ही एकोबहुधा की प्रवृत्ति जागरूक हो जाती है। अन्न को पान करके ही मानव को हृदय में भी देव प्रवृत्ति आनी आरम्भ हो जाती है। कहीं पुत्र यज्ञ करने की कामनाएँ जागने लगती हैं। एक विचित्र रूप धारण करने लगता है, विचित्र रूप बन जाता है। तो परिणाम क्या? हम इस अन्न को जानें कि यह अन्न क्या है? इस अन्न को प्रत्येक मानव पान करने से यह नाना प्रकार की प्रवृत्तियों का रूप बन जाता है। यह जो अन्न है, यह पञ्चमहा जो भूत हैं इनका सूक्ष्म स्वरूप माना गया है, मेरे पूरे! जब यह अन्न पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश करता है तो उसमें पञ्चमहाभूत की उपलब्धि है। यदि पञ्चमहाभूत की पुट नहीं लगेगी तो पृथ्वी नाना प्रकार के व्यंजनों वाली नहीं बन सकती। यह नाना प्रकार के व्यंजनों वाली जभी बनती है जब जल इसे प्राण देता है, जल इसे प्राण सत्ता प्रदान करता है, अग्नि प्राण को अति ऊष्ण बनाने लगती है, आकाश इसे अपने स्थलियों में तरंगित करने लगता है, वायु इसमें नाना प्रकार के रूपों को भरण करा देती है।

तो परिणाम क्या? मुनिवरों! देखो, अमृत भी बहाने वाला वही देवस्थल है। तो मुनिवरों! यह पृथ्वी के रूप में, आकाश अन्तरिक्ष में प्रवेश करता है। उसके पश्चात् यह देवस्थल के रूप में परणित होता रहता है। नाना प्रकार के अन्न ही नहीं, नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म प्रायः इसी प्रकार हुआ करता है। तो विचार विनिमय क्या? इस अन्न को हमें जानना है, अन्न को हमें पान करना है। बाहरीय जगत् में यह अन्न आता है, अन्न में भावनाओं की उपलब्धि होती है। जब माता की भावना प्रायः दूषित होती है तो अन्न के परमाणु माता के गर्भ में प्रवेश कर जाते हैं।

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है एक समय महर्षि तत् मुनि महाराज के विद्यालय में अन्न को पान करने पर विचार हुआ। जब अन्न को पान करते करते उन्होंने एक अनुष्ठान किया और अन्न को उन्होंने दर्शनों में, वेद के कुछ मन्त्रों में यह पाया कि अन्नमय विचार की दूषितता आ जाती है और मन की पवित्रता भी अन्न में आती है। जब इस प्रकार का विचार हृदयस्थली पर प्रवेश हुआ, तो ऐसा मुझे स्मरण है, महर्षि तत् मुनि महाराज ने दूषित विचार वाले अन्न को वो पान करते रहे। चालीस दिवस के पश्चात् मन की प्रवृत्ति दूषित हो गई। उन्होंने वहाँ से गमन किया और गमन करके वो

भारद्वाज गोत्र में सोम्यकेतु वाचक ऋषि द्वार पर पहुँचे। उनकी पत्नी सदैव गायत्री और छन्दों का, उच्चारण करती हुई, शुद्ध हृदय से ध्वनि करती हुई जब अन्न का पान कराती थी, तब एक आभा का जन्म होने लगा। तो ऋषिवर अपने में जब पान करने लगे और ऋषि ने जब उस गृह में चालीस दिवस अन्न का पान किया तो मुनिवरो, उसके हृदय में एक आभा का जन्म हो गया, पवित्रता का जन्म हो गया और ऐसी पवित्रता कि वह साधक साधना के लिए बन में चले गए।

तो विचार क्या? बारह वर्ष तक उन्होंने गायत्री छन्दों का जप करते हुए, उद्गीत गाते गाते वह पत्रों, आभाओं का पान करते हुए अपने विद्यालय में प्रवेश हुए। अन्न का, अन्न जहाँ उपजता है वह उपजने के साथ पवित्रता लाता है और जब गृह में आता है, बाह्य जगत् में आता है वह विचारों को पवित्रता में अग्नि की तरंगों में परणित होता है। नाना प्रकार की तरंगें मानव को दूषित भी करती रहती हैं और वह विचार पवित्र बनाते रहते हैं। तो विचार विनिमय क्या? अन्न को हमें ऊँचा पान करना है। मेरी प्यारी माता भोजनालय में अन्न को तपा रही हैं। माता मल्दालसा का जीवन मुझे स्मरण आता रहता है। माता मल्दालसा अपने तीनों पुत्र जिनको ब्रह्मवेत्ता बनाना चाहती थी, माता दर्शनों को विचारों में लाती रहती है, अन्न को अग्नि में तपाती रहती और अग्नि में भी विशेषता होती है। अग्नि में जो वृक्ष होते हैं इनकी जो समिधा होती है उन समिधाओं की अग्नि का भी प्रभाव होता है।

यह तो विचारों का वन है जिसमें मैं चला गया हूँ। मैं एक विचार देना चाहता था जैसे पीपल का वृक्ष उसकी समिधा अपना महत्व लाती हैं। वट वृक्ष का अपना महत्व होता है। उसकी समिधा की अग्नि अपना महत्व लाती है। जैसे आम का वृक्ष उसका अपना महत्व है। एक चन्द्रीका वृक्ष होता है। उसका अपना महत्व है। जिस मानव को यक्ष्मा रुग्ण हो गया हो, तो चन्द्री का के वृक्ष की समिधा और आम के वृक्ष की समिधा और पीपल की समिधा तीनों समिधाओं के एक एक समिधा के उस अन्न को तपाने से एक वर्ष तक उस तपे हुए अन्न को पान करने से यक्ष्मा को समाप्त कर देता है। तो इस प्रकार आयुर्वेद विज्ञान में जब मैं प्रवेश करता हूँ तब ऐसी ऐसी तरंगें मेरे समीप आती

हैं जिससे मैं आश्चर्यचकित हो जाता हूँ।
जैसे एक मानव का उदर छिन्न भिन्न हो गया है उदर में छिन्न भिन्नता देखो, उदर में जो सूक्ष्मता अन्यणा हो गई है, यदि उसमें रक्त बहने लगता है तो उस समय बेलाम् एक वृक्ष होता है जो भयंकर वनों में प्राप्त होता है, एक सुन्दरी का वृक्ष होता है, एक तेजपाती का वृक्ष होता है, एक सुन्दरी वाचप वृक्ष होता है। चारों प्रकार की समिधाओं को लाया जाए और चारों प्रकार की समिधाओं का चूर्ण बना करके उन्हीं की समिधा को अग्नि के द्वारा अन्न को तपा करके तन्दुल हो अथवा स्वेती हो और 6 वर्षों के पुराने वन का जो तन्दुल होता है उसको अग्नि में तपाना तथा उन्हीं समिधाओं के द्वारा उन्हीं का चूर्ण बना करके उसको पान करा करके उदर में किसी भी प्रकार का रुग्ण हो वह ठीक हो जाता है।
तो विचार क्या बेटा! मैं बहुत दूर चला गया हूँ। इन क्षेत्रों में तो मुझे जाना नहीं था। परन्तु विचार केवल यह देना चाहता हूँ कि मुनिवरों वनस्पति विज्ञान में यह जितना भी अन्न है यह जो मन है, इसका वनस्पतियों से बहुत ही सम्बन्ध रहता है, बहुत सी विशेषताएँ रहती हैं। आज हम यह विचारते हैं कि अन्न को हमें पान करना है, तो अन्न के रूप में नाना प्रकार की अग्न्याधान की महत्ता मानी गई है। इसी प्रकार देखा जैसे हमारे यहाँ यज्ञ होते हैं हम प्रातः कालीन यज्ञ करने, यज्ञ में प्रवेश कर जाते हैं। यज्ञ में जब रमण कर जाते हैं तो यज्ञ की अग्नि हम अपने में ले जाते हैं अपनी आभा को ले जाते हैं। आन्तरिक जगत् को उस यज्ञ में ले जाते हैं तो एक पवित्रता का क्षेत्र बन करके हमउस रूप में प्रवेश हो करके अपने नाना प्रकार के रुग्णों को शान्त कराना, शान्त कराने के लिए हम नाना प्रकार के साकल्य को हम उस रूप में प्रवेश करा देते हैं। तो परिणाम क्या? अन्नादि एक ही पौधा है। एक पौधे पर दो प्रकार का अन्न है, एक को मानव पान कर रहा है, एक को पशु पान कर रहा है। एक को जो पान कर रहा है। वह दुग्ध दे रहा है। एक को मानव पान कर रहा है। नाना प्रकार के अन्नादि को पान करना यह मानवीयता है। यह मन के उज्ज्वल स्वरूप को धारण करना है।
तो मुनिवरों! आज मैं मन की उज्ज्वलता के स्वरूप पर तुम्हें ले जाना चाहता हूँ। तो

हमारे ऋषि मुनि इनका पिपाद बनाते रहते थे। श्वेत्ताश्वतर ऋषि महाराज ने 105 वर्षों तक यह पान किया कि उन्होंने चन्द्रिका के पत्तों को अग्नि में, जल में तपा करके पीपल की समिधाओं में तपा करके चन्द्रिका के (शब्द ध्वनि से) वृक्षों को लेकर के, अम्बिका के तनों को लेकर के जब 105 वर्ष तक उन्होंने यह पान किया इसका परिणाम यह कि वे एक विशेष महान् योगी बने। वह दार्शनिक बने। योग किसे कहते हैं? योगी हमारे यहाँ कौन होता है? योगी उसे कहते हैं जो वेदान् जानता है, जो संगतीकरण जानता है। जो मन और प्राण का संगतीकरण जानता हो। जो औषधियों के संगतिकरण को जानता हो। संगतिकरण किसे कहते हैं। इसमें मिलान हो करके यह एक दूसरे के गुणों में परिवर्तित तो नही हो रही है। इनमें भिन्नता तो नहीं है, यदि एको एक रस हो जाए एक ही गुणाधानम हो जाएँ तो वह संगतिकरण कहलाता है।

तो विचार विनिमय यही कि, ऋषि ने कहा, देवी! जो यह अन्न है यह इसी में, यह परमाणुवाद रहता है, यह परमाणु इसी में निहित रहता है। यह माता अन्नाद अपने भोजनालय में अन्न को तपाती रहती है, विचार देती रहती है। मैंने बहुत पुरातन काल में यह वाक्य कहा था कि जो माता के हृदय में यह विचार आता है कि मेरा पुत्र ऋषि बने, मेरा पुत्र महान् बने तो वह देखो, वह प्रारम्भ के माह से ले करके, वह शैलखण्डा, सुनीती और मृती का पान करती रहे और पान करती हुई मुनिवरों! देखो, गायत्राणी छन्दों का जाप उसमें निहित रहना, अन्न को जब वह तपाना चाहती है। तो उस अन्न में गायत्री छन्दों का पठन पाठन, वेद का गान गाना और अपने विचारों में स्वतन्त्र शुद्ध रूप को धारण कराना, तो यह गृह में देवपन और देवताओं की प्रवृत्ति आ जाती है।

तो विचार क्या? मैं दूरी नहीं ले जाना चाहता हूँ। मैं कहाँ चला गया हूँ? बहुत गम्भीर रहस्यों में चला गया हूँ। इस गम्भीर रहस्यतम में मुझे जाना नहीं था। परन्तु विचार केवल यह है, यह तो वनस्पतियों का वन है। इनके गुणों में जाना, उनके संगतिकरण की चर्चाएँ करना यह तो किसी काल में हम करते रहते थे। परन्तु देखो, पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में विद्यमान हो करके कराते रहते थे। इन्हीं के चरणों में समाधिष्ट हो जाते थे। वेद का मन्त्र इस प्रकार का आ रहा है तो विचारों का यह संगतिकरण आभा

चल रही थी कि अन्न में परमाणु रहते हैं। तो यह अन्नादि है, इस अन्न को हमें जो माता भोजनालय में अन्न को तपा रही है, एक अन्न को पशु पान कर रहा है, ऐसा प्रभु का विज्ञान है। उसी निचल्ले अन्न को गो पान कर रहा है तो वह स्वर्ण की तरंगों को सूर्य में से अपने को धारण करा रहा है। द्वितीय पशु पान कर रहा है। वह भी दुग्ध देने वाला है, वह रोहिणी धातु को अपने में सिंचन कर रहा है और वही अन्न है, वही नीचे का अन्न है, एक अन्न को तो मानव ने अपना ही लिया, दूसरे अन्न को पशु ने ले लिया है और यह पशु पान कर रहा है। कितना दुग्ध उसने उसमें नाना प्रकार के धातुओं का विकास मिश्रण हो रहा है। वाह रे मेरे प्रभु! तू कितना वैज्ञानिक है। तेरे विज्ञान की भी कोई सीमा नहीं प्राप्त होती। हम विचारते रहते हैं तेरे विज्ञान की सीमा हमें प्राप्त नहीं होती, इतना सीमा से रहित है। माता अन्न को पान कर रही है, माता के दुग्धों का और ही गुणाधानम हो रहे हैं। कितने पशु दुग्ध देने वाले हैं, उसी अन्न को पान कर रहे हैं, उसी दुग्ध को दे रहे हैं परन्तु इसमें स्वर्ण मिश्रण है, किसी में यह अश्रताम् वाचंवृहे रत्नों का मिश्रण हो रहा है, किसी में स्वाति का मिश्रण हो रहा है। भिन्न भिन्न प्रकार की धातुओं का मिश्रण हो करके मानव को वही प्राप्त हो रहा है। परमात्मा का विज्ञान सार्थक बन रहा है। जब मैं यह विचारता हूँ तो आश्चर्यचकित हो जाता हूँ।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुनिवरों! देखो, 12 वर्ष का यह अनुष्ठान किया था कि जितने दुग्ध देने वाले पशु हैं इनके दुग्ध में धातुओं को जाना जाए। कौन कौन सा धातु इसमें विद्यमान है और वह धातु मानव के शरीर में, पशु के शरीरों में प्रवेश हो करके क्या क्या पुष्टि करता है? विचार आया कि गो नाम का जो पशु है इसकी उसके दुग्ध का पान करने से मानव की सात्विक प्रवृत्ति बन जाती है, भैंसी का दूध दुग्धपान करने से तमोगुण प्रवृत्ति बन जाती है, स्वांती का दुग्ध पान करने से उसकी रजोगुणी प्रवृत्ति बन जाती है। तो उसके गुणों में बारह वर्षों तक हमारे पूज्यपाद ने यह अनुष्ठान किया हम यह चाहते हैं कि हम यह चाहते हैं कि हम सब वार्त्ता अभी उच्चारण कर जाएँ। पूज्यपाद गुरुदेव ने बारह वर्षों तक यह अनुष्ठान किया, मौन रहे वेद का अध्ययन करते रहे, प्रभु

के गुणों को उसमें प्रतिपादित करते रहे। तो विचित्रता प्रतीत होने लगी।

विचार विनिमय क्या कि आज मैं उच्चारण कर रहा हूँ। बेटा! एक ही पौधा है मेरा प्रभु कितना वैज्ञानिक है, एक ही पौधा उस पर दो प्रकार का अन्न विद्यमान है, एक अन्न को मानव पान कर रहा है, कितने प्रकार की प्रवृत्ति बन जाती है। तो रजोगुण में शासन करना, तो कहीं तमोगुण में उत्पत्ति लाना चाहता है, कहीं सतोगुण में। वह पालन में, रजोगुण में शासन की प्रवृत्तियों में रत्त होने जा रहा है। कहीं भिन्न भिन्न प्रकार की उग्र प्रवृत्तियाँ बनती रहती हैं। वही अन्न है, वही अन्नादि वही संगतिकरण में विद्यमान हो रहा है। परन्तु उस प्रभु की विचित्र महिमा है कि प्रत्येक प्राणी पर उसी एक प्रकार के अन्न का भिन्न भिन्न प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। वे परमपिता परमात्मा महान् वैज्ञानिक है और उसके ज्ञान विज्ञान में रमण करना ही, उन पर चिन्तन, मनन करना ही तथा उसी का अनुसरण करते हुए, उसकी वैज्ञानिकता को धारण करना ही मानव के जीवन को धन्य बनाएगा।

तो विचार विनिमय यही कि उस प्रभु द्वारा जो देन हमको प्राप्त हुई है उसका सदुपयोग करते हुए, उसका नित्यप्रति गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएँ। तो आज के हमारे वाक्यों का अभिप्राय क्या? मानव को उस प्रभु का गान गाना चाहिए और इस भांति हृदय से उसकी सत्ता में, उसकी विचित्र आभा में, जो हमें सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है, उद्गीत गाते हुए हम इस संसार से पार हो जाएँ। यही है बेटा! आज का हमारा वाक्य, शेष चर्चा समय मिलेगा, तो कल करेंगे। अब वेद का पाठ होगा। इसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी। दिनांक 4 फरवरी, 1985 समय : दोपहर 1 बजे

१२ 24 02 1985 पुष्प 48 महर्षि वशिष्ठ व माता अरुणधति की यज्ञों पर चर्चा

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव की महिमा

का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि जितना भी यह जड़ जगत्, अथवा चैतन्य जगत्, हमें दृष्टिपात आ रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में वह मेरा देव दृष्टिपात आ रहा है। वह अनन्तमयी है। उस महान् प्रभु की उपासना अथवा उसका अनुसरण प्रत्येक मानव को क्या, प्राणी मात्र को करना चाहिए। क्योंकि वह जीवन का संचालन करने वाला है। हमारे वेदों के पठन पाठन में, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का, प्रायः वर्णन आता रहता है। और उसकी जितनी विचित्र यह रचना है उस रचना के ऊपर भी उस महान्, प्रभु की महानता का वर्णन है।

हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, ऋषि मुनि एकान्त स्थलियों पर विद्यमान हो करके उस ब्रह्म का चिन्तन करना प्रारम्भ करते रहते थे, तो उसकी महानता का प्रायः वर्णन उनकी प्रतिभा में दृष्टिपात आता रहा है। आज हम इसलिए एकत्रित करते हुए हैं कि हम अपने प्रभु के सम्बन्ध में और इस ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में कुछ चिन्तन कर सकें। क्योंकि प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही, भिन्न भिन्न प्रकार की, प्रायः उड़ान उड़ता रहा है। आज मैं इस उड़ान में तो तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ, परन्तु विचार यह कि इस संसार को मानव ने अपने अपने दृष्टिकोण से मापने का प्रयास किया है। जिस भी दार्शनिक ने, जिस भी महापुरुष ने, इस संसार को मापा है, उसने अपने ही दृष्टिकोण से मापने का प्रयास किया है। परन्तु कुछ जिज्ञासु ऐसे हुए हैं, यथार्थिक, जिन्होंने सर्वसम्मति से, इस संसार को मापा है। परन्तु आचार्यों ने इस संसार को एक यज्ञशाला के रूप में, मापने का प्रयास किया और यह कहा कि यह जो संसार है, यह एक प्रकार की यज्ञवेदी है। यहाँ प्रत्येक मानव, याग कर्म करने के लिए आया है, क्योंकि याग करना हमारा कर्त्तव्य कहलाता है, याग एक आत्मा की प्रतिभा कहलाती है। क्योंकि याग से हमारे मानवीय तथ्यों का, आभामयी गुणगान गाया जाता है। मेरे पुत्रों! जब हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने एकत्रित हो करके, इस सृष्टि के सम्बन्ध में और इस यज्ञशाला के रूप में उन्होंने चिन्तन किया, तो उन्हें बेटा! यह संसार एक महानता वाला और एक यज्ञशाला के रूप में दृष्टिपात हुआ। परन्तु जहाँ हम इस संसार को यज्ञशाला के रूप में परणित करते हैं, तो प्रश्न उठता है कि यज्ञशाला किसे कहते हैं? यहाँ मुनिवरों! सुगन्ध का जन्म होता

है, जहाँ दुर्गंधि को समाप्त किया जाता है।
तो उन विचारों में भिन्न भिन्न प्रकार के कुछ विचार भी याग कहलाते हैं। परन्तु उसमें एक दूसरे गुणों में गुणोंती प्रदान करना भी, बेटा! एक याग कहलाता। जैसे हमारे यहाँ सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण, वह गुण जब एक दूसरे के पूरक हम कर लेते हैं, तो वह एक यज्ञ का स्वरूप बन जाता है। वह यज्ञ की धारा बन जाती है। जैसे हमारे यहाँ, पुरातन काल में जब ऋषि मुनियों ने यह विचारना प्रारम्भ किया, कि यज्ञशाला एक महान कर्म है, मानो एक महान् प्रतिक्रिया है, एक महान् क्रियाकलाप है जिसके ऊपर, परम्परागतों से क्या सृष्टि के प्रारम्भ से ही लेकर के वर्तमान के काल तक अन्वेषण अथवा विचार विनिमय होता रहा है। जिस विचार को आचार्यों ने बड़े विशुद्ध और चिन्तनीय, जो आत्मा को साक्षी करते हुए बेटा! जिस वेदी को रचा है हम उस वेदी पर जाने के लिए, सदैव तत्पर हैं। जो भी मानव के हृदय से, सुभावना, सुप्रतिभा का जन्म होता है, अथवा उसमें कोई न कोई सुगन्धि है, मानो जैसे माता अपने पुत्र को बालक को उपदेश देती है और अपने हृदय से वे वाक्य को, अपनी धाराओं को लेकर के, बालक के अन्तःकरण में पिरो देती है, तो उसका एक प्रिय पवित्रता में विचार आ रहा है और उस विचार के आधार पर एक प्रिय याग विचारों का हो रहा है। वह विचार रूपी सुगन्धि है, वह मानव के हृदय को पवित्र बना देती है। वह मानव की प्रतिभा को, मानवीयतव में परणित कर देती है **तो इसी प्रकार, प्रत्येक मानव को अपने जीवन में सुचिन्तन करना, सुविचार लाना, और अग्नि के समीप जाकर के अग्न्याधान करना यह एक याग कहलाता है।** हमारे यहाँ, परम्परागतों से दो प्रकार के यागों का चयन प्रायः हमारे वैदिक साहित्य में होता रहता है। जहाँ बेटा! देखो, हम ब्रह्मयाग में जब परणित होते हैं, ब्रह्मयज्ञ में जब निहित होते हैं, तो ब्रह्मयाग में हम ब्रह्म का चिन्तन करते हैं, और ब्रह्म का चिन्तन करते करते, ब्रह्मयागी बनते हुए मेरे पुत्रों! इस संसार को निहारते रहते हैं। इस संसार के ऊपर, हम अन्वेषण और अनुसन्धान करते रहते हैं। जहाँ तक हमारे नेत्रों की ज्योति क्या हमारी मानवीय तरंगें जाती हैं, वहाँ तक उन तरंगों को बेटा! हम व्यापक रूप देना प्रारम्भ करते हैं। परन्तु जब उन तरंगों समावेश अपने अन्तःकरण

में करते हुए, आन्तरिक यागों में परिणित हो जाते हैं और आन्तरिक जगत् में जब प्रवेश हुए, तो मेरे पुत्रों! देखो, वे एक विचित्र मनुवाचक याग का प्रारम्भ हो जाता है, वह ब्रह्मयाग कहलाता है, क्योंकि ब्रह्म का चिन्तन करना, और ब्रह्म की प्रतिभा को निहारना और अपने को महान् बनाना है, अपने को महान और अपनी प्रत्येक इन्द्रियों का शोधन करना, प्रत्येक इन्द्रिय को अगाध समुद्र में ले जाना, यह मुनिवरों! देखो, हमारा मानवीयता, अपने को ऊँचा बनाने का नाम, हम ब्रह्मयाग में परिणित करते रहते हैं, और ब्रह्मयाग में परिणित होते हैं, तो उसके पश्चात् देवपूजा का व्यवधान आता है। देवपूजा करना प्रारम्भ करते हैं।

वह देवपूजा क्या है? हम देवताओं की पूजा करें। बेटा! देवताओं के समीप जाकर के हम अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाएँ। हम अपने हृदय को महान् बनाने का प्रयास करें। वह देवाः ब्रह्माः वह देवपूजा कहलाती हैं। मेरे प्यारे! देखो, क्योंकि पूजा का अभिप्राय तो मैंने तुम्हें कई कालों में प्रगट किया है। पूजा का अभिप्राय यह है कि सदुपयोग का नाम ही उसकी पूजा कहलाती है। देवपूजा हम कर रहे हैं, हम देवताओं का आह्वान करके कहते हैं, अग्नि! तू इन पदार्थों का भेदन कर, हे अग्नि! तू देवताओं का दूत बन करके आ और तू समाज को इस महान् मेरे साकल्य को ले करके इसका वितरण कर और इसका विभाजन करके तू इसका मानो रूप से द्वितीय रूप बना करके इसको अपने में धारण कर। मेरे प्यारे! क्योंकि अग्नि सबसे प्रथम, प्रत्येक पदार्थ का बेटा! भेदन कर देती है। इसी प्रकार हमारे विचारों का, हमारी मानवीयता का भी, वही भेदन करने वाली है तो मेरे प्यारे! ऐसा कहा जाता है। क्या मुनिवरों! हमारे यहाँ नाना ऋषि हुए हैं, जो बेटा! ब्रह्मयाग के पश्चात् देवयाग में परिणित रहे हैं। राजा जनक के ऊपर भी नाना प्रकार की टिप्पणियाँ आती रहती हैं। यहाँ राजा जनक ही नहीं बेटा! और भी नाना ऋषि इसी प्रकार के हुए जो ब्रह्मयाग करने के पश्चात्, वह देवपूजा में परिणित हो जाते। महाराजा रघु के सम्बन्ध में भी प्रायः ऐसा श्रवण किया गया है, जब वह प्रातःकालीन याग करते हुए वे ब्रह्मयाग में परिणित हो जाते थे और ब्रह्मयाग से देवयाग में परिणित होना। दोनों यागों को एक दूसरे का पूरक स्वीकार करते हुए, उसकी

प्रतिभा में रत्त रह करके, अपनी अपनी मानवतव को ऊँचा बनाना, एक उनका क्रिया कलाप बन गया।

मुझे स्मरण है उनके पिता का महाराजा दिलीप जी प्रातःकालीन याग करते रहते थे। जब महाराजा दिलीप जी याग करने के लिए तत्पर रहते तो सबसे प्रथम वह प्रातःकालीन गौघृत के द्वारा, गो दुग्ध के द्वारा, देवयाग मानो देखो, करते थे। प्रातःकालीन बेटा! जहाँ देवयाग किया और ब्रह्मयाग ब्रह्मवाचों वह ब्रह्मयज्ञ भी दोनों करते रहते। बेटा! एक समय जब महाराजा दिलीप जी के हृदय में, यह आशंका बनी, यह विचार बना कि मैं वशिष्ठ मुनि की आज्ञा पाकर के मैं अपना कल्याण चाहता हूँ।

तो मुनिवरों! महाराजा दिलीप जी भ्रमण करते हुए, महात्मा वशिष्ठ मुनि के द्वार पर पहुँचे। क्योंकि महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ब्रह्मवेत्ता थे, वह ब्रह्मनिष्ठ होने से मेरे प्यारे! वह राजा ब्रहे जब राजा उनके समीप पहुँचे, तो माता अरुणधती और वशिष्ठ मुनि महाराज प्रातःकालीन बेटा! ब्रह्मयाग कर रहे थे और जब ब्रह्मयाग कर रहे थे तो ब्रह्म याग में रत्त और उसके पश्चात् देवयज्ञ में। जब वह ब्रह्मयाग में रत्त थे तो महाराज दिलीप जी उनके चरणों की वन्दना में वह भी स्थिर हो गए। तो ब्रह्मयाग में, वह ब्रह्म की उपासना कर रहे थे, और उच्चारण कर रहे थे कि ब्रह्मन्! तू कितना महान् है, तू तपोमयी है, तेरा उग्र ही तप है, जो हमें यह संसार दृष्टिपात आ रहा है तेरा उग्र तप है जो मानो देखो, सूर्य की धारा बन करके, हमें तपा रहा है। तेरा उग्र तप है, जो अग्नि बन करके हमें प्रकाश दे रहा है। ऊष्णा बना रहा है। तेरा उग्र तप है मानो देखो, जो वायु हमें प्राण दे रही है। मेरे प्यारे! देखो, जो इस प्रकार की उपासना करते करते महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, माता अरुणधती बेटा! उसमें शान्त हो करके, उसके पश्चात् वह देवयाग में लग जाते और देवयाग में जाकर के देवताओं का आह्वान करना। आह्वान का अभिप्राय क्या है? वह मानो अग्नि का अग्न्याधान करना, व उसका आह्वान करना और यह कहते हैं कि हे अग्नि! तू द्यौ बन करके, हे अग्नि! तू ही तो प्रकाश का द्यौतक बना हुआ है। हे अग्नि! तू ही मानो तेजस्वी बन करके कान्ति बन करके तू अमृत को

बहाने वाली, चन्द्रमा की कांति बन जाती है।

तो कितनी विचित्र है इस प्रकार का जब वह मानो अग्नि का आह्वान करती। अग्नि के आह्वान का अभिप्राय यह है कि अग्नि के भावों का अपने में धारण करना, और अग्नि के स्वरूप को यह स्वीकार करना कि यह जो अग्नि है, मानो देखो, यह भिन्न रूपों वाली अग्नि है। यह अग्नि ही हमें दाह करने वाली है। यह अग्नि हमें भोज्य पदार्थों को प्रदान करने वाली है। यही अग्नि गार्हपथ्य बन करके, ब्रह्मचर्य को धारण कराने वाली अग्नि है, यही अग्नि वैश्वानर बन करके दण्डक बनों में रहने वाली अग्नि है। यही अग्नि देखो, विचित्र या गार्हपथ्य बन करके, गृह का स्वर्ग बनाने वाली है। मानो यही अग्नि है जो देवताओं का दूत बन करके यज्ञशाला में प्रदीप्त हो जाती है। हे अग्नि! हम तेरा आह्वान करते हुए तेरे गुणों को अपने में धारण करना चाहते हैं।

मेरे प्यारे! देखो, प्रातःकालीन जब मानो देखो, ब्रह्मयाग के पश्चात् इस प्रकार देवयाग होना प्रारम्भ होता है, तो देवताओं का आह्वान करना हैं, और जहाँ अग्नि रहती है, वहीं आपो रहता है। जहाँ जल है वहीं पृथ्वी रहती है और जहाँ पृथ्वी रहती है, वहीं अग्निमयी प्राणं रहे वाचप्रहीःलोकाम् अग्निः वायु, वह अग्नि देखो, वायु बन करके वही अग्नि देखो, द्वितीय स्वरूप को धारण करके एक वायु बन करके रहती है। वह प्राण को संचय करके प्राण को उद्बुद्ध करने वाली है, जागरूकता देने वाली है। वही देखो, अन्तरिक्ष में, शून्य बिन्दु की भांति, सर्वत्र प्राणी एक दूसरे में परणित हो जाते हैं।

यह भिन्न भिन्न प्रकार का जब विचार आता है माता अरुणधती और वशिष्ठ महाराज प्रातःकालीन जब अग्न्याधान करके इस प्रकार अग्नि का चयन करके पात्रों, समिधाओं को ला करके आपों में धारा का रमण कराते, अग्नि को अग्नि में समर्पित करना, जब वह उस समिधा को अग्नि में समर्पित करता है, तो वही समिधा, अग्नि रूप बन करके मानो देखो, अग्नि रूप बन करके यज्ञशाला में विराजमान हो करके, यज्ञकुण्ड में मानो देवताओं की हवि बनना प्रारम्भ हो जाती है। वही तो देवताओं की हवि बन जाती है। वही तो देवताओं की विभक्ति क्रिया बन करके वही तो देवयाग कहलाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, महाराजा वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुणधती जब प्रातःकालीन याग

करने लगे, ब्रह्मयाग के पश्चात् देवयाग करने लगे, तो देवयाग करते करते मेरे पुत्रों! वह ब्रह्मवाचः सम्भवाः देवं ब्रह्म लोकाम् हिरण्यं रथा दिव्यंगता मेरे प्यारे! देखो, यह आख्यिका स्मरण आती रही, आख्यिका स्मरण आते ही जब वह अग्नि अपने स्वरूप को धारण करके विभक्त क्रिया बन करके वही शोधन का क्रिया कलाप करने लगी। मानो देखो, वही तो शोधन करती है वही तो अशुद्ध परमाणुओं को निकल करके वायुमण्डल का शोधन कर देती है। मेरे प्यारे! महाराजा दिलीप जी भी उस समय अरुणधती और वशिष्ठ के विचारों को श्रवण कर रहे थे। दोनों का शास्त्रार्थ हो रहा था, माता अरुणधती बोली कि प्रभु मैंने कुछ ऐसा ध्यान किया है कि एक समय जब मैं अपने पिता के द्वार पर विराजमान थी, तो मेरे पिता एक समय मुझे ले करके भ्रमण करते हुए, कौतुक ऋषि के द्वार पर पहुँचे। तो कौतुक ऋषि महाराज याग कर रहे थे। जब वे याग कर रहे थे, तो गो दूध के द्वारा वह यज्ञ कर रहे थे। मानो समिधाओं को गो दुग्ध में, गौघृत में स्थापित करते हुए अग्नि में प्रदान कर रहे थे। भगवन्! तो क्या यह भी कोई याग होता है? उन्होंने कहा मेरे पिता ने यह कहा, सम्भो देवं गृहा हे पुत्री! यह प्रायः यज्ञ की प्रतिक्रिया है, चलो इनसे प्रश्न करेंगे? जब हमने मानो ऋषि से प्रश्न किया तो ऋषि ने यह उत्तर दिया कि मैं इस यज्ञ को इसलिए कर रहा हूँ, कि महाराजा इन्द्र के यहाँ यह प्रायः यज्ञ होता रहता था। कामधेनु गऊ के, गोघृत के द्वारा, जो यज्ञ करता है, वह सोम कहलाता है। जैसे गोघृत है, गोदुग्ध है उसके द्वारा यज्ञ करना सोम की प्रतिभा कहलाती है। तो मानो देखो, इस समय तो मैं यह जानना चाहती हूँ भगवन्! कि वह ऋषि उसको सोम क्यों कहता था? महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा कि वह उसको इसलिए सोम कहते थे वह गोघृत, गोदुग्ध जो होता है यह दोनों सौम्य कहलाते हैं और जब इनका देव याग करते हैं, अग्नि में इनको प्रदान करते हैं अग्नि में इनका मार्जन करते हैं अग्नि में कृतियाओं को रमण कराते तो इसका परमाणुवाद बन करके, वह सोम बन करके देवताओं का भोज्य बन जाता है, और देवताओं का भोज्य बन करके दैत्यों को समाप्त करने लगता है। तो ऐसा मानो देखो, जब यह वाक्य आया, उस समय एक प्रश्न अरुणधती ने और किया वशिष्ठ से कि महाराज! एक समय मानो देखो,

मैं अपने पूज्यपाद गुरु के द्वारा भ्रमण करती हुई एक समय मैं अचंग लोक में चली गई थी। अचंग एक नगरी थी, अचंग पुरी में जब गई, तो अचंग पुरी के बाह्य सीमाओं पर एक बटुक ऋषि रहते थे, तो बटुक ऋषि महाराज देखो, उस समय याग कर रहे थे। और वह याग मानो देखो, अग्न्याधान करते उसमें वे गौघृत और गौदुग्ध का मार्जन करते और मार्जन करके ही वह भिन्न भिन्न वृक्षों की समिधाओं के द्वारा, याग कर रहे थे। भगवन्! मैं जानना चाहती हूँ कि वे याग इस प्रकार का क्यों कर रहे थे? तो मानो देखो, उस समय वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा हे देवी! वह जो तुमने याग दृष्टिपात किया था वह अग्निष्टोम याग कहलाता है। अग्निष्टोम यज्ञ का अभिप्राय यह है कि उसमें बारह प्रकार की समिधाओं का वर्णन आया है। बारह प्रकार की समिधाओं का वर्णन आया है, और गोघृत के द्वारा, और दुग्ध के द्वारा शैल वृत्तिका एक वृक्ष होता है उसकी छाल के द्वारा यह यज्ञ किया जाता है, तो वह अग्निष्टोम यज्ञ कहलाता है, वह वृष्टि याग के रूपों में परणित हो करके वह सोम बन जाता है। उस याग को भी हम सोम के रूपों में परणित कर देते हैं तो माता अरुणधती बोली कि प्रभु! मैंने यह तो स्वीकार कर लिया। परन्तु मैं एक बात यह नहीं जान पायी कि याग क्योंकि किए जाते हैं? उन्होंने कहा कि यज्ञ इसलिए करते हैं क्योंकि याग ही कर्म है संसार में। तुम्हें यह प्रतीत है कि जिस समय हम पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा अध्ययन करते हैं तो जब अध्ययन करते तो गुरुदेव यही कहते हैं कि तुम अपनी आत्मा का यज्ञ करो, तुम अपनी आत्मा में आत्मा का याग करो। जब आत्मा में आत्मा का याग होता है, यहाँ अग्नि में अग्नि का याग होता है। यहाँ पदार्थों का याग होता है। बाह्य जगत शुद्धीकरण होता है और आत्मा का आत्मा में याग करना है। अब आत्मा में आत्मा का याग कौन करता है? यह विचार का एक समय है। आत्मा में आत्मा का याग कौन करता है? मुनिवरों! देखो, आत्मा को हम जानने का प्रयास करें। अब आत्मा का याग क्या है याज्ञं भवते देवां जो शुद्ध पवित्र तरंगों का जन्म होता है, इन तरंगों का नाम याग कहलाता है। जिससे मानव का अन्तरात्मा पवित्र बनता है मानव की अन्तरात्मा में पवित्र भाव आते हैं, और वही पवित्र भाव, मानव के जीवन को, एक पवित्रता की वेदी पर ले जाते हैं,

और वही पवित्रता की जो वेदी है, वही पञ्च महाभूत हैं, और उन्हीं पञ्च महाभूतों के लोक में आत्मा वास करती है, और वह पञ्च महाभूतों का साकल्य बना करके अपने अन्तःकरण रूपी गुफा में, आत्मा का हृदय रूपी गुफा में याग होता है। वह मानव को ब्रह्मयाग की वेदी पर ले जाता है। वह ब्रह्मयाग की वेदी पर ले जा करके वह मानव ब्रह्मयागी बनता है। ब्रह्मयागी बन करके ब्रह्मचारी वह मानो ब्रह्म की चरि को चरता हुआ इस जगत से पार हो जाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, इस संसार से पार हो जाता है। माता अरुणधती इन वाक्यों को प्रायः स्वीकार करती रहीं। परन्तु उन्होंने एक प्रश्न और किया। उन्होंने कहा कि हे प्रभु! मैं यह जानना चाहती रहती हूँ सदैव आपके चरणों में विद्यमान हो करके कि क्या हे प्रभु! जब मैं अपने बाल्यकाल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा, एक समय अध्ययन कर रही थी, जब मैं अध्ययन कर रही थी, तो अध्ययन करते, समय बलवेत्वर ऋषि महाराज, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा आए। बलवेत्वर ऋषि ने कहा कि महाराज! यह तुम क्या कह रहे हो? उन्होंने कहा कि मैं गो मेध याग कर रहा हूँ। मानो पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि मैं गो मेध याग कर रहा हूँ, तो गो मेध याग कौन सा होता है? भगवन!

तो मेरे प्यारे! वशिष्ठ मुनि ने कहा, उत्तर दिया देवी! तुम्हारे पूज्यपाद गुरुदेव ने ऋषि को क्या उत्तर दिया? तो उन्होंने कहा उन्होंने तो यह उत्तर दिया कि गोअमृतं अन्धकार को नष्ट करता है, अन्धकार को नष्ट करने का नाम याग है। यही तक उन्होंने कहा है। उन्होंने कहा कि तुम और क्या चाहती हो? महाराज! मेरे हृदय में एक शंका बनी रह गई, कि हृदय यह कोई अन्धकार का पुंज नहीं हैं। उन्होंने कहा हृदय अन्धकार का पुंज नहीं कहलाता। उन्होंने कहा, हृदय में किसकी छाया है जो अन्धकार नहीं रहता? उन्होंने कहा यह जो हृदय है यह परमपिता परमात्मा की अनुपम छाया है। इस छाया के होने से, यह अन्धकार का सूचक नहीं बन सकता। माता अरुणधती बोली कि महाराज! क्या मैं इन वाक्यों को स्वीकार करूँ। उन्होंने कहा मत करो, परन्तु जो मैं कह रहा हूँ वह वाक्य वेद की ऋचा कहती है, उस बात का वर्णन कर रहा हूँ। परन्तु देखो, माता अरुणधती ने कहा तो प्रभु! मैं तो इसको स्वीकार नहीं करती। उन्होंने कहा

क्यों नहीं करतीं हो? उन्होंने कहा जो हृदय है यह तो मन, बुद्धि चित्त, अहंकार का एक समूह का नाम हृदय कहलाता है। उन्होंने कहा हे देवी! ऐसा नहीं है। हृदय उसे कहते हैं जिस हृदय में संसार की प्रत्येक वस्तु समाहित हो जाती है और वह समाहित हो करके, उसका चेतना से समन्वय हो जाता है उसको हृदय कहते हैं। क्योंकि हृदय में से ही तो श्रद्धा का जन्म होता है, हृदय में ही तो नाना प्रकार की कामनाओं का जन्म होता है। जब हृदय में कामनाओं का जन्म होता है, तो मैं कैसे स्वीकार करूँ? मुझे निर्णय कराईए। परन्तु माता अरुणधती बोली कि प्रभु! निर्णय तो मैं भी चाहती हूँ। उन्होंने कहा मेरे विचार में तो यह है कि हृदयं ब्रह्मां गौमेधाम् गो मेधयज्ञ करने का अभिप्राय तो यह है कि अन्धकार को नष्ट करना है और अन्धकार को कौन नष्ट करता है? विद्यालय में जब ब्रह्मचारी को आचार्य अपने चरणों की वन्दना कराता है। ब्रह्मचारी चरणों की वन्दना करता है, तो अपने अन्तःकरण का जो अन्धकार है वह जो प्रकृति का अनुअष्टमीगुण है जो अन्धकार है, उसे वह नष्ट कर देता है। नष्ट करके उसका जो हृदय है, वह अपने हृदय के समकालीन बनाता हुआ, आचार्य कहता है ब्रह्मचारी से मम् बाचा मम् वाचाः हृदयम्। हे ब्रह्मचारी! मेरा तेरा हृदय एक ही तुल्य बन गया है। आ, तू मेरे हृदय का मम् बन। तो उसी समय वह हृदय का मम् बन करके हृदय की प्रतिभा बन जाता है। तो इसीलिए हृदय आचार्य और ब्रह्मचारी का दोनों का जब एक समन्वय हो जाता है तो वह गो मेधयज्ञ कर रहा है। वह गो मेधयज्ञ में परणित हो रहा है। इसी प्रकार देखो, आगे चल करके जब ब्रह्मज्ञान में परणित होता है, ब्रह्मज्ञान में, जब ब्रह्मयज्ञ यज्ञ करता है और ब्रह्मयज्ञ करता करता अपने हृदय पुंज में प्रकाश को अनुभव करने लगता है। पांचों ज्ञानेन्द्रियों के विषयों को उसके प्रकाश तत्त्वों को अपने में सिंचन करने लगता है तो देखो, ब्रह्मयज्ञ कर रहा है। वह ब्रह्मयागी बन करके महानता की वेदी पर रत्त हो रहा है। विचार मैं विशेष नहीं दूंगा, केवल परिचय देने आया हूँ। कि विचार तो इससे पूर्वकाल में दिए जा सके हैं। परन्तु विचार केवल यह कि हम मुनिवरों! भिन्न भिन्न प्रकार के यज्ञों का चयन, अपनी आभा में रत्त करते चले जाएँ।

माता अरुणधति ने एक प्रश्न किया। उन्होंने कहा प्रभु! मैं और मेरे पिता दोनों भ्रमण

करते करते महर्षि कागभुषुण्ड जी के द्वार पर पहुँचे, तो महर्षि कागभुषुण्ड जी और लोमश मुनि दोनों प्रातःकालीन यज्ञ कर रहे थे। तो वे समिधाओं को ले करके, जल में, उन्हें शोधन करके, वे अग्नि में प्रवेश कर रहे थे। हम यह नहीं जान पाए, जब कागभुषुण्ड जी से हमने प्रश्न किया कि हे ऋषिवर! यह तुम क्या कर रहे हो? अग्नि में प्रवेश कर रहे हो। जलम् प्रोत समिधा को, यह क्या और कौन सा यज्ञ कहलाता है? उन्होंने कहा यह मानसुखी यज्ञ कहलाता है। इसको मानसुखी यज्ञ कहते हैं। उन्होंने कहा तो प्रभु! उनसे आगे प्रश्न नहीं कर सकी। मैं आपसे जानना चाहती हूँ कि वह मानसुखी यज्ञ कैसे कहलाया गया? उन्होंने कह हे देवी! तुम नहीं जानती ऋषि मुनियों की बड़ी विचित्र शैली होती है, कर्मकाण्ड की। वह समिधाओं को ले करके जल में उन्हें वृणित करते हुए, अग्नि में प्रवेश कर रहे थे। जल और अग्नि दोनों का समावेश कर रहे थे, समावेश करके इसी प्रकार यह जो जगत है, यह जो नाना प्रकार की समिधाओं वाले जो वृक्ष हैं, इनका समन्वय जल से होता है, और जल में इनकी प्रतिभा का जन्म होता है, और जितना यह वनस्पति विज्ञान है, जितना वनस्पति रूप है, यह सब आपो में जल में, इसकी प्रतिष्ठा कहलाती है। इसलिए वेद का ऋषि कहता है कि यह जो जल है अमृत है, यह जल अमृत है। इसलिए हमारा जब जन्म होता है, हम जब माता के गर्भस्थल में प्रवेश करते हैं, तो हमारी प्रतिष्ठा भी आपो जल कहलाता है। जब माता के गर्भस्थल में हमारा निर्माण प्रारम्भ होता है तो उस समय जल ही तो है, जल में, ही उस बिन्दु की प्रतिष्ठा है, आपो हमारी प्रतिष्ठा कहलाती है। वह कैसा कर रहे थे कि प्रभु! आपने कहीं के प्रारम्भ में ऐसा प्रियं याग किया है कि जल में ही बिन्दु की प्रतिष्ठा है। जल में ही एक बीज रूप की प्रतिष्ठा कहलाती है। तो हे प्रभु! हम भी उसी यज्ञ को करना चाहते हैं। तो महर्षि कागभुषुण्ड जी और महर्षि लोमश दोनों बड़े तार्किक और महान् पुरुष कहलाते थे। दोनों अपने में परस्पर चर्चा करते रहते और यज्ञों का चयन करते रहते थे। तो इस प्रकार के भावों को ले करके जो यज्ञ करता है वह परमात्मा को अपना साक्षी बनाता है, वे परमपिता परमात्मा को समीप लाकर के, अभिमान उसे नहीं हो पाता। इसीलिए ब्रह्मज्ञानी जो होते हैं उन्हें अभिमान नहीं होता।

ब्रह्मज्ञानी जो होते हैं वह यह विचारते हैं कि परमात्मा का जो अनुपम जगत् है यह तो ऐसा अनुपम है ऐसा महान् है, कि उसको वह कहाँ तक रूप दे सकता है वह तो निरभिमानी है, निर्भय है ऐसा ही मुझे बनना है। अब परमात्मा इस प्रभु के राष्ट्र में आ करके, मैं किससे अभिमान करूँ? मैं किससे अहम् भाव को लाना प्रारम्भ करूँ? तो इस प्रकार के भाव ऋषि मुनियों के होते हैं। इसलिए अग्नि का चयन करते रहते थे। अग्नि के प्रकाश में, अपने अन्तःकरण का शोधन करते रहते थे। माता अरुणधती को संतुष्टि हो गई। उन्होंने कहा, प्रभु! वे तो ऋषि बहुत दूरी की वार्त्ता को चिन्तन में लाते रहते थे। उन्होंने कहा देवी! जो दूरी की वार्त्ता को चिन्तन का विषय बनाता है, वही तो सागर से पार होता है। वही तो इस अन्धकार से प्रकाश में जाता है। और प्रकाश से मृत्यु को विजय करता है, और मृत्यु को विजय करके वह एक परमपिता परमात्मा के अनूठे राष्ट्र में चला जाता है, जहाँ एक आनन्द उसे प्राप्त होता है। जब माता अरुणधती और वशिष्ठ मुनि महाराज का यह विचार विनिमय चल ही रहा था इतने में देखो, कहीं से भ्रमण करते हुए महर्षि सोम मुनि आ पहुँचे। तो सोम मुनि महाराज ने चरणों को स्पर्श किया। तो वह देवयज्ञ कर रहे थे प्रातःकाल में। उन्होंने कहा आओ भगवन्! यज्ञ करेंगे। और वह भी यज्ञ में परणित हो गए, यज्ञ करने लगे। तो उन्होंने कहा प्रभु! मुझे सोम क्यों कहते हैं? महर्षि वशष्ठि मुनि बोले है ऋषिवर! मैं नहीं जानता तुम्हें सोम क्यों कहते हैं। भगवन्! मैं यह जानने के लिए आपके द्वार पर आया हूँ। माता अरुणधती बोली प्रभु! इसका उत्तर दीजिए। तो उन्होंने कहा इनको सोम ऋषि इसलिए कहते हैं कि यह स्वतः सोम हैं क्योंकि आत्मा का जो स्वभाव है वह सोम कहलाता है। आत्मा का जो ज्ञान है, प्रयत्न है वह सोम लक्षणों वाला है। इसलिए आत्मा को सौम्य कहते हैं। शरीर को सोम इसलिए कहते हैं क्योंकि यह पञ्च महाभूतों में, जो जो सोमम की प्रतिभा सौम्यता है वह उसमें निहित रहती है। तो इसलिए तुम्हें सोम कहते हैं। उन्होंने कहा तो प्रभु! मैं सोम हूँ? उन्होंने सोम कहा हम यह नहीं जानते कि तुम हो कि नहीं, परन्तु सोम की प्रतिभा तो ये प्रतिभाषिता तो यह कहती है कि सोम वही है जो दूसरों को शीतल करने वाली हैं सोम जल कहलाता है जो दूसरों को शीतल करने वाला है,

सौम्यता देने वाला है। अमृत प्रदान करने वाला है। इसलिए तुम स्वतः अमृत बन करके, संसार को अमृतमयी बनाने का प्रयास करो।

तो मेरे प्यारे! मैं आज विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ। आज मैं तुम्हें परिचय देने के लिए आया हूँ, अपने विचारों की भूमिका बनाने के लिए आया हूँ और वह बनाना यह है कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन में क्या क्या बनना है? यह विचारना है। आज मैं तुम्हें यह वाक्य उच्चारण कर रहा हूँ कि यज्ञों का कितना विस्तारमयी स्वरूप कहलाया गया है? यज्ञों को कितना विज्ञान है? इस संसार को प्रत्येक मानव ने चिन्तन करते करते महापुरुषों में इसको यज्ञवेदी के रूप में परणित किया है। और यह कहा है कि संसार एक प्रकार की यज्ञवेदी है, यज्ञोमयी है, सागरमयी है, आनन्दमयी कहलाती है। विचित्रमयी कहलाती है। इसको हमारे यहाँ प्रत्येक मानव सोम की धारा में अपने को रत्त करता है। तो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने जब अपना याग समापन किया, देवयज्ञ जैसे ही समाप्त हुआ, तो इतने में उन्होंने दृष्टिपात किया कि महाराजा दिलीप जी भी विद्यमान हैं। महाराजा दिलीप जी से कहा हे भगवन्! हे राजन्! तुम कोई वाक् नहीं उच्चारण कर रहे हो? दिलीप जी तुम्हारा आगमन् कैसे हुआ? उन्होंने कहा प्रभु! मैं इसलिए आपके चरणों में आया हूँ कि मैं भी अपने को सोम बनाना चाहता हूँ। मैं सोम की आभा के लिए, आपके चरणों में पधारा हूँ। महाराज दिलीप जी का सोम बनाने की चर्चाएँ, वह गाथा, तो कल ही प्रगट करेंगे। आज का विचार हमारा क्या कह रहा है आज का विचार कह रहा है कि सौम्यता को अपने में धारण करना है। महाराजा दिलीप जी ने कहा कि प्रभु! मैं सोम क्या मेरा जो अयोध्या का जो राष्ट्र है निष्क्रिय बन गया है। मैं उस अपने राष्ट्र का कल्याण चाहता हूँ। मैं राष्ट्र को सौम्य बनाना चाहता हूँ। उन्होंने कहा बहुत प्रिय! ये चर्चाएँ, मेरे पुत्रो! कल होंगी। आज का विचार हमारा क्या कह रहा है, कि परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, परमपिता परमात्मा को हम एक एक सर्वत्र विज्ञान का पुंज स्वीकार करते हुए, हम परमपिता परमात्मा को विज्ञान की धाराएँ स्वीकार करते हुए, उसका हम पूजन करें। उस पूजन के लिए, हम सदैव अपने से प्रभु का ध्यानावस्थित हो करके हम सागर से पार होने का प्रयास करें।

यह आज का विचार है। कल समय मिलेगा, तो इससे आगे की चर्चाएँ, हम प्रगट करेंगे। आज का वाक् अब समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या, कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएँ। आज मैंने कुछ बिखरे हुए पुष्पों को संक्षिप्त रूप में प्रगट किया है। कल समय मिलेगा तो इसके विस्तार की चर्चाएँ प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त वेदों का पठन पाठन होगा। लाक्षागृह, बरनावा समय दोपहर बाद 3 बजे।

१३ 25 02 1985 पुष्प 48 महाराजा दिलीप का सन्तान हेतु तप

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव, की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गा रहा है। क्योंकि जितना भी अमूल्य हमें दृष्टिपात आने वाला जगत् है। मानो कहीं तक मानव की दृष्टि चली जाए कहीं तक भी अन्तःर्मुखी हो करके उस परमपिता परमात्मा की महती को निहारता रहता है तो मानो उसमें वह चेतना व अनुपम महिमा हमें दृष्टिपात होती रहती है, जिस चेतना में बद्ध रहने वाला वह अनुपम प्रभु कहा जाता है। जिसकी महिमा का गुणगान परम्परागतों से ही, बेटा! ऋषि मुनि अपने में पान करते रहे हैं।

प्रत्येक मानव, अपने में आभायित रहा है, और नाना प्रकार के रूपों में रत्त होने वाला, यह मानवीयतव, एक महानता का प्रतीक, बना हुआ है, जिस महानता के लिए प्रत्येक मानव के हृदय में पिपासा बनी रहती है और वह सदैव यह चाहता है, कि मैं महान् बनूं। मेरी महानता का दिग्दर्शन होता रहे। क्योंकि उसके मनों की जो एक आकांक्षा बनी हुई है, उसके मूल में मानो वह चेतना, अपने में रत्त हो गई है और वह जो मानो व्यापकवाद और संकीर्णता में जगत् विद्यमान है। उसको वह जानना चाहती है और

उसके हृदय में महानता की एक ज्योति ज्योतिवान रहती है, जिसको वह सदैव यह चाहता है कि मेरी मानवता, मेरा हृदय मानो उस श्रेणी वाला बन करके और इस सागर से हम पार हो जाएँ। जिस सागर की चर्चाएँ, प्रत्येक मानव बेटा! परम्परागतों से ही, मानो अपने में गान रूपों में ही गाता रहता है, और यह अनुभव कराता रहता है गायं श्वन्धनं ब्रह्म ज्योतिः। गायन भी एक धन है परन्तु वह ब्रह्मज्योति है, ये ज्योति के ऊपर प्रत्येक मानव का हृदय, जिस ज्योति के ऊपर यह ब्रह्माण्ड निहित हो रहा है। वही ज्योति मानो एक ज्योतिवान हो करके, मानो इस संसार को भिन्न भिन्न प्रकार के रूपों में परणित कर रही है। भिन्न भिन्न प्रकार का स्वरूप, इस ब्रह्माण्ड का हमारे को दृष्टिपात आता रहता है। तो आओ, मेरे प्यारे! आज हमारा वेदमन्त्र, हमें मानो कुछ प्रेरणा दे रहा है और प्रेरणा वह यह है कि प्रत्येक मानव को अपनी मानवता को जान करके इस प्रायः सागर से पार होने का प्रयास करना है। जिस मानव के हृदय में ये विचारधारा रहती है, कि मैं पार होना चाहता हैं। मैं अपने जीवन में मानो मोक्ष की पगडंडी को ग्रहण करना चाहता हूँ वह मुझे कहीं प्राप्त हो जाए, तो मेरा हृदय मानो पवित्र बन जाए, और मैं मोक्ष का गामी बन करके, मैं अपने उस परमानन्द को प्राप्त करने लगूं, जिस परमानन्द के लिए मानव मानो उत्सुक हुआ अपने में रत्त हो रहा है और यह विचार रहा है कि मेरे अन्तर्हृदय मानो पवित्रता की वेदी पर निहित हो जाना चाहिए। परन्तु जब यह आकांक्षा लगी हुई हैं ये विचारधारा उसमें रत्त हो रही है तो उन्हीं विचारों को ले करके, मानव को ऊँची से ऊँची उड़ान उड़नी चाहिए। जो मानव संसार में ऊँची उड़ान उड़ता रहता है, वह मानवीयता के क्षेत्र में, अपने को शान्त करके बेटा! इस परमपिता परमात्मा के ब्रह्माण्ड को शान्त जगत् में ही, प्रायः दृष्टिपात करता रहा है। परन्तु देखो, आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा नहीं, केवल यह उच्चारण करना है कि प्रत्येक मानव के हृदय में, एक मानवता का प्रदर्शन होना चाहिए।

जिस मानवता का प्रदर्शन ही, मानव के जीवन का अभ्योत्थानं ब्रह्मे वह उत्थान गामी करा देता है। तो आओ मेरे प्यारे! विचार हम क्या दे रहे थे? हम नाना प्रकार के यागों के सम्बन्ध में, अपने कुछ विचार व्यक्त कर रहे थे। अपना एक अपनी मानवीयता का

दर्शन करना भी, मानव के लिए चिन्तन करना, बहुत अनिवार्य है। परन्तु इसी प्रकार, हम अपने जीवन को, एक महान् मननशील वेदी पर ले जाना चाहते हैं। आओ, मेरे प्यारे! आओ हम सब मानवता के दर्शन करते हुए हम मौन अवस्था को प्राप्त होते चले जाएँ। क्योंकि प्रत्येक वस्तु संसार में एक मानो देखो, मौन के रूप में परणित रहती है। तो आओ मेरे प्यारे! आज का विचार हमारा क्या कह रहा है? आज का विचार कह रहा है कि परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, इस सागर से पार हो जाना चाहिए परन्तु प्रत्येक मानव के हृदय में, यह आशंका लगी रहती है कि हमारा हृदय आनन्दित हो जाना चाहिए। परन्तु आओ बेटा! मैं तुम्हें आनन्दित होने की विवेचना में नहीं ले जाना चाहता हूँ। आज मैं तुम्हें उसी आसन पर ले जाना चाहता हूँ, जहाँ ब्रह्म ऋषियों और राज ऋषियों को प्रायः चुनौती दी जाती है, जहाँ रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण अपनी अपनी धाराओं में वर्णित किया जाता है मानो उसका शोधन किया जाता है तो एक मानो देखो, वह महानता का प्रतीक और महानता की अमूल्य ज्योति कही जाती है।

तो आओ मेरे प्यारे! मैं विचार देता हुआ दूर न चला जाँऊ। विचार यह दे रहा था कि संसार की प्रत्येक आभा में बेटा! अपने जीवन को ऊँचा बनाना ऊर्ध्वा में गति कराना यह मानो देखो, सर्वत्र उस महाप्रभु की महानता का दिग्दर्शन है। तो आओ मेरे पुत्रों! विचार क्या है? आज का हमारा वाक् विचार क्या कह रहा था, हम कौन से क्षेत्रों की चर्चा कर रहे हैं बेटा! हमारा वाक् यह कह रहा था, क्या प्रत्येक मानव को अपने अन्तर्हृदय, अन्तरात्मा के लिए सदैव मानो देखो, मौन रह करके क्रियाकलाप में रत्त रहना चाहिए। जिससे मानव के हृदय में एक महान् ज्योति जागरूक हो करके और वही ज्योति संसार के विराट् स्वरूप को अपने में धारण कर लेती है। जब वह ज्योति इस संसार को अपने में धारण करती है, तो यह संसार का अनुपम धारावाही जगत्यां जगत् ब्रह्मवाचा यह जगत् एक अपूर्व कहलाता है। तो मेरे प्यारे! आज का हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा है जब मुनिवरों! देखो, ऋषियों ने यह प्रार्थना की, याचना करने के पश्चात्, मेरे पुत्रों! देखो, एक आभा का अनुपम एक जन्म होता है, जिस जन्म की

धारा को लेकर ही मानो देखो, उस परमपिता परमात्मा का दिग्दर्शन उसकी दीर्घता हमारे हृदयों में प्रवेश कर जाती है। जिसको हम, एक मानवीय गति कहते हैं जिसको विज्ञान में ऊर्ज्वा के रूप में, पूर्णरूपेण किया करते हैं।

तो आओ मेरे प्यारे! मैं दूरी न चला जाऊँ, विचार क्या चल रहा था बेटा! महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज की चर्चाएँ चल रही थीं। तो महाराजा वशिष्ठं ब्रह्मेः वाचं ब्रह्माः गौतम ब्रह्मवाः वसुन्धरना वायु गताः। मेरे प्यारे! देखो, अपने में रत्त रहने वाला, हृदयग्राही अपने को ऊँचा बनाता हुआ सागर की प्रतिभा को अपने में मापने का प्रयास करता रहता है। तो मेरे प्यारे! देखो, विचार क्या है, हम मानो देखो, मौन रह करके, उस परमात्मा की प्रतिभा को, अपने में मापने के लिए आते हैं और वह माप करके चले जाते हैं। परन्तु अपना दृष्टिकोण, अपनी धीमी धीमी यह जो ध्वनि है उसे वे त्याग देते हैं, उसे वे अपने में नहीं आने देते। परन्तु वह एक अनुपम धारा बन करके, मानव के अन्तर्हृदय में विद्यमान हो जाती है तो आओ मेरे प्यारे! हम हृदय को विचारने के लिए क्या हम यह चिन्तन करने आए हैं क्या प्रत्येक मानव के हृदय में भिन्न भिन्न प्रकार की चिन्ताओं का मानो चिन्तनीय विषयों का जन्म होता है। जिस को अपने में धारण करके वह मानो देखो, मोक्ष आवृत्तियों में प्राप्त होता हुआ अपने को ही जान करके ही मानो देखो, पार होने का प्रयास करता है। तो आओ, मेरे प्यारे! मैं विशेष विचार न देता हुआ तुम्हें वहीं ले जाना चाहता हूँ। जहाँ से बेटा! हमारा वाक् प्रारम्भ हो रहा था मैं उच्चारण कर रहा था बेटा! कुछ महापुरुषों की चर्चाएँ। कुछ मानो उस चेतना में प्रवेश करना चाहता हूँ, जिस चेतना में जाने के पश्चात् मेरा जीवन कृतज्ञ बन जाता है। मेरे जीवन में एक आनन्द की प्रतिभा अनुभूति आने लगे। वह अनुपम अनुभूति कहलाती है। जो मानव के हृदयों को पवित्रतम बना देती है और पवित्र आभा में परणित कर देती है।

तो आओ मेरे प्यारे! विचार देता हुआ दूरी न चला जाऊँ विचार यह देता चला जा रहा था क्या प्रत्येक मानव का हृदय अपने हृदय में हृदयग्राही हो करके मानो उसका प्रदर्शन होना चाहिए। जिससे जीवन की एक अनुपम, अनुधाराएँ बेटा! अपने से मानव से बाह्य

जगत् में प्रवेश न करें। वह आन्तरिक जगत् में ही मानो एक गृह एक आनन्दमयी धारा को बना करके, वे सूक्ष्म धाराओं का सूक्ष्म अंकुरों का अपने में पान करता रहता है। तो आओ, मेरे प्यारे! विचार मैं क्या दे रहा था मेरे प्यारे! महात्मा वशिष्ठ महाराज की कुछ चर्चाएँ हो रही थीं महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज ने अपने में बेटा! प्रकाश देते हुए मानो देखो, दृष्टिपात किया। मानो ब्रह्मचारी विद्यमान हैं और उन्होंने कहा सम्भवा देवो वाचाः वसु सम्भवा दिव्यं गतं ब्रह्मा मानव की एक धारा में रत्त रहने वाला वह एक अनुपम की धारा अपनाता हुआ सागर के उस छोर पर चला जाता है जहाँ एक अनुपम चिन्तन करने का एक समूह हमें प्राप्त होता रहता है। तो मेरे प्यारे! देखो, महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में तुम्हें ले जाना चाहता हूँ, जहाँ महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अमृतम्! माता अरुणधती दोनों का परस्पर शास्त्रार्थ होता रहता था। दोनों की विचारधाराएँ एक अनुपम धारा में परणित होने वाली एक अनुपमता कहलाती है। तो मेरे प्यारे! महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज नाना ऋषियों का सम्वाद वहाँ प्रारम्भ हो रहा था, बेटा! देखो, महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे। महात्मा वशिष्ठं ब्रह्मा वाचा प्रह्वि लोकाम् मेरे पुत्रों! देखो, यह समय समय पर अपने विराट् रूपों को धारण करता रहा है। यह प्राण ही है जो प्राणस्वरूप बन करके मानव के जीवन हमारे जीवन से पवित्र आभा में परणित करा रहा है। जिस मानो आभा को अपने में पान करने के पश्चात् मानव मानो अपनी सृष्टि का अस्वती का रूपाकार नाना प्रकार के रूपों को धारण करने वाला है तो मेरे प्यारे! देखो, महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वारा आओ देखो, और राजा दिलीप की मैं तुम्हें पुरातन काल की वह चर्चाएँ प्रगट कराना चाहता हूँ जिन मानव धाराओं को पान करके मानव के जीवन में पवित्रता का दिग्दर्शन प्रायः होता रहता है। तो मेरे प्यारे! देखो, जब अमृतं ब्रह्म माता ने कहा हे देवतव! ब्रह्माः वाचनमं बृहिकृता मेरे पुत्रों! देखो, वेद के ऋषि ने यह कहा कहो भगवन! किस प्रकार तुम्हारा आगमन हुआ? मेरे प्यारे! वार्त्ताएँ प्रगट होने लगीं। महाराजा दिलीप ने महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज से कहा कि आपके समीप आ पहुँचा हूँ। आपका जीवन धन्य है मानो जो प्रभु! का अनुपम चिन्तन करते हैं एक मैं अभागा हूँ जो संसार में कोई भी

क्रियाकलाप मैं इस प्रकार का नहीं कर सका हूँ। तो मेरे प्यारे! जैसे ही महाराजा वशिष्ठ मुनि महाराज ने यह कहा वे अपने में मौन हो गए। जब अपने में मौन हो करके वे गम्भीरतव का चिन्तन करना अपने में प्रारम्भ किया तो ऋषियों ने कहा बोलो राजन्! तुम्हारा आगमन क्यों हुआ? उन्होंने कहा प्रभु! मैं इसीलिए आया हूँ आपके नामोकरण को श्रवण करता हुआ आज मैं आपके चरणों की वन्दना कर रहा हूँ। आभा में निहित रहने वाला हूँ हे प्रभु! मुझे आज्ञा दीजिए हमारा जो अयोध्या का वंशलज है वह समापन होने जा रहा है। मुझे किसी ने यह निर्णय कराया है कि महर्षियों के द्वारा और उनकी जो आभाएँ सुगन्ध है वही तेरे जीवन को पवित्र बना सकती हैं। अन्यथा जीवन पवित्रता की वेदी पर आना असम्भव हो जाता है। जब मेरे प्यारे! देखो, यह वाक् इन्होंने प्रगट किया तो वह अपने मानो देखो, गम्भीर चिन्तन की प्रतिभा में परणित हो गए और वह गम्भीर चिन्तन करने लगे और चिन्तन करते करते बेटा! इस आभा में मानव अपने को स्वीकार करने लगा है जिससे मानव ऊँची ऊँची उड़ान उड़ करके परमपिता परमात्मा की महती में वह रत्त हो जाता है। तो मेरे पुत्रों! जब राजा ने ऐसा वर्णन किया इसके मानो देखो, इसके ऊपर भी विचार एक विशेष रहा रम्भवाः देवो सम्भवाः देवो सम्भवाः मृत्युवश्चतं प्रहे कौशल्यवाः मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने कहा राजन्! क्या तुम किसी सन्तान के मानो पिता नहीं प्राप्त हुए हो, बाल्य ब्रह्म वाचाः प्रहे लोकां न हिरण्यं न करोति। हे प्रभु! मैंने ऐसा क्रियाकलाप कोई नहीं किया। परन्तु देखो, महाराजा विश्वस्थमाः वाचन् महाराजा दिलीप जी ने जब ऐसा अपना वर्णन किया तो महात्मा वशिष्ठ जी ने कहा जाओ, तुम भयंकर वनों में चले जाओ और वहाँ जा करके ऋषियों के आश्रमों में भ्रमण करो। और ऋषि सम्भवो देवाः और कामधेनु तुम्हारे द्वारा होनी चाहिए। परन्तु कामधेनु की सेवा करो और कामधेनु के गर्भ से मानो इस शक्ति का जन्म होगा और उसके जन्म होने के पश्चात् तुम्हारे हृदयों की जो मानो एक प्रकाशिता है वह एक आनन्दित हो रही है जिसको धारण करके मानव अपने जीवन को पवित्र वेदी पर ले जाता है। तो मेरे प्यारे! जब ऋषि ने यह वर्णन कराया तो मुनिवरों! देखो, वे महाराजा सम्भवा देवो! हे प्रभु! मुझे आज्ञा दीजिए अब जैसा आपने मुझे वचन कहा है मैं अपने राष्ट्र को ऊँचा

बनाना चाहता हूँ। मैं अपने राष्ट्र में पुष्पांजलि चाहता हूँ जिससे मानो देखो, मेरा राष्ट्र ऊँचा बने, मैं अपने राष्ट्र में एक महान् प्रतिभा का दिग्दर्शन कराना चाहता हूँ। जिससे मानो मेरा वंश ऊँचा बने क्योंकि वंशलज के एक पितर याग की एक भूमिका कहलाता है। एक अनु पूर्णिमा कहलाता है जिसको जान करके मानव हृदय में एक महान् अनुपमता की धारा का एक मानो देखो, जन्म होता रहता है।

तो मेरे पुत्रों! देखो, महात्मा वशिष्ठ जी मुनि महाराज, महाराजा दिलीप जी दोनों का विचार विनिमय चल रहा था। उन्होंने कहा हे प्रभु! देखो, माता अरुणधती ने तो नाना प्रकार के प्रश्न किए हैं परन्तु मैं भी आपसे कुछ प्रश्न करने वाला हूँ। वशिष्ठं ब्रहे वाचं मातां प्रहे वशिष्ठ मुनि बोले कि क्या जानां ब्रहे उन्होंने कहा हे प्रभु! मैं अब क्या करूँ, मेरे लिए मार्ग दीजिए? उन्होंने कहा मेरे विचार में तो यह आता है कि जब तक आप अपने गृह को ऊँचा गृह वाला संकल्प घोषित नहीं करेंगे तब तक तुम्हारे जीवन में अधूरापन रहेगा। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा प्रभु! कैसे, किस प्रकार हो सकता है? उन्होंने कहा पुत्रेष्टि योजना का मानो देखो, उसका घोष करो उस प्रेरणा मंगलम्गृही वाचाः मानो देखो, उसकी तुम ऊँची कल्पना करते हुए और अपने भयंकर वन में भ्रमण करो और यह स्वतंत्र रहनी चाहिए। कामधेनु स्वतन्त्र रहे या ना रहे परन्तु धेनु का रूप स्वतन्त्र होना चाहिए जिससे वह अपने महान् बेला पर अपनी गति कर सके। तो मेरे पुत्रों! देखो, जब वशिष्ठ जी ने यह वचन कहा तो ऋषि ने कहा बहुत प्रिय! मेरे प्यारे! ऋषियों का जीवन ऊँची गति वाला न बने, परन्तु देखो, ऊर्ध्वा में रत्त रहने वाला एक अनुपम एक अनुक्रणीका अपनी मानवीयता की भूमिका बनाता हुआ इस सागर से पार हो जाता है।

मैं विशेष विवेचना तुम्हें देने आया हूँ। मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ मैं कोई विशेष चर्चाओं में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार केवल यह देने के लिए कि महाराजा! दिलीप जी ने जब यह श्रवण किया कि क्या महर्षि मानो देखो, शृङ्गी अपने में याग करते हैं, मुझे भी याग कराना है तो मानो उससे पूर्व राजा यह संकल्प कर गए थे कि मैं राष्ट्र का अधिकारी नहीं हूँ। मैं मानो देखो, राष्ट्रीय और राज्यता का अधिकारी नहीं हूँ जो मैं

पूज्यपाद ऋषि देव के समीप अपनी मानो देखो, वाणी की प्रतिभा अथवा उस की विशेषता का मैं वर्णन कर सकूँ तो मुनिवरों! देखो, जब वह वाक् उनके विचारों में परणित किया गया तो महाराजा दिलीप जी कामधेनु को ले करके वह मानो स्वतन्त्र रूपों में विचरण करती थी। राजा सगर के बहुत से पुत्र थे परन्तु नाना रूपों में परिवर्तित होने वाला यह अनुपम हमारा हृदय हमें प्रायः हमें दृष्टिपात आ रहा है तो मेरे प्यारे! देखो, जब ऋषि ने यह श्रवण किया तो आचार्य ने वह स्वीकार कर लिया और स्वीकार करके बेटा! देखो, याग की रचना का प्रादुर्भाव हुआ। मानो देखो, जब यह प्रभु की आभा में रत्त रहने लगे। प्रभु की महानता में मानो रत्त रहकर के कामधेनु उसके आगे है और वह स्वयं उसके पश्चात्। तो मेरे प्यारे! उसके हृदय में एक आकांक्षा लगी हुई है क्या मैं पुत्रेष्णावादी बनूं, मेरे में जो एक ईषणा का उत्पन्न हो रहा है मैं उस इषणा को समाप्त करना चाहता हूँ। परन्तु ईषणा समाप्त कैसे हो। ईषणा समाप्त नहीं होने वाली थी उस ईषणा के ऊपर मानो नाना प्रकार की उस नाना अस्वती रूपों में ये जगत और जगत की अस्वती रूपों में ये अनुपमता का हमें प्रायः दर्शन होता रहा है। तो मेरे प्यारे! देखो, महाराजा दिलीप, उस कामधेनु, को लेकर के भ्रमण करते हुए मनिवरों! देखो, भयंकर बन में जा पहुँचे। जब भयंकर बनों में जा पहुँचे तो भयंकर बनों में बेटा! देखो, नाना रूप दृष्टिपात आते हैं। परमात्मा की अनुपम रचना में इस सृष्टि के, भिन्न भिन्न प्रकार के स्वरूपों का प्रायः हमें दिग्दर्शन होता रहता है। इन दर्शनों के ऊपर, प्रत्येक मानव का जीवन मानो देखो, उससे कटिबद्ध रहता है।

तो आओ मेरे प्यारे! क्या महाराजा दिलीप जी ने कामधेनु के पश्चात् मानो देखो, गति प्रारम्भ की तो मुनिवरों! एक समय कामधेनु, भ्रमण करते करते मुनिवरों! देखो, वह महात्मा उद्दालक के आश्रम में प्रवेश किया। जब महात्मा उद्दालक मुनि के द्वार पर पहुँचे तो मुनिवरों! देखो, महात्मा उद्दालक मुनि महाराज, अपने में कुछ अनुसन्धान कर रहे थे, तो अपने में कुछ विज्ञान की धाराओं में रत्त हो रहे थे, तो मेरे प्यारे! देखो, कामधेनु, पहले उनके यहाँ गऊएँ का कुछ गमन किया जा रहा था। मेरे प्यारे! उन्हीं गऊओं में, कामधेनु का भी मिश्रण हो गया। जब कामधेनु का मिश्रण हुआ, तो महात्मा

गौतम ऋषि के द्वार पर राजा पहुँचे तो राजा का बड़ा ऊर्ध्वा में स्वागत किया। आओ भगवन! विराजमान हो जाओ, तो मेरे प्यारे! जैसे वे विराजमान हुए। अग्रतम तो उन्होंने कहा कहो ऋषिवर! आप राजा ब्रहे, आप राजा होते हुए ऋषिवर! इसको मैं नहीं जान पाया। मेरे प्यारे! महाराजा दिलीप जी ने कहा हे गौतम मानो देखो, मेरा अन्तर्हृदय नाना प्रकार के शून्यतव पदार्थों में रत्त हो जाता है। अपने जीवन की वह जो भूमिका उस प्रकार नहीं बन पाती जिस प्रकार वह मानव अपने में बनाना चाहता है। ऊर्ध्वा में रत्त करना चाहता है। मेरे पुत्रों! ऋषि ने कहा, कहो भगवन! गौतम ने कहा महाराज! यह कैसे? उन्होंने कहा प्रभु! मैं एक समय मानो देखो, अपने पूज्य ऋषियों के समूह में विद्यमान था। परन्तु देखो, जब पूज्यपाद की कामधेनु गऊ मानो रात्रि के काल में अपने आसन से पृथक होकर के उसने कोई द्वितीय मार्ग का वह पथिक बन गया और उसके कारण नाना प्रकार की धाराओं में मानव प्रायः स्वीकार करता रहता है।

तो आओ मेरे प्यारे! आज का हमारा विचार यह क्या कह रहा है जब कामधेनु उनकी आभा में रत्त हो गई गऊओं में मिश्रण करके मानो गति करने लगी तो राजा दिलीप ने कहा गौतम से हे ऋषिवर! मेरी कामधेनु कहाँ गई? उन्होंने कहा कि आपकी कामधेनु नाना प्रकार के स्वरूपों में रत्त रह करके मानो देखो, मेरे यहाँ जो सहस्रों गऊएँ रहती हैं आश्रम का मानो क्रियाकलाप चलता रहता है उन्हीं गऊओं में उसका मिश्रण हो गया है। तो मेरे प्यारे! देखो, वह समय समय पर अपनी धाराओं में रत्त रहने वाला अपनी क्रियाओं में रमण करने वाला मानो उनका जो अनुपम तप था। वह तपों में रत्त रह करके महाराजा दिलीप ने कहा प्रभु! मेरी कामधेनु मुझे प्रदान कर दीजिए। उन्होंने कहा कि कामधेनु अपने ही जातियता में मानो देखो, प्रायः रत्त हो रही है। उसी में मग्न है, उसी में रत्त रह करके मानो देखो, तुम्हारी मानो अनुपम धाराओं का दिग्दर्शन करा रही है। तो मुनिवरों! महाराजा दिलीप ने इन वाक्यों को स्वीकार करते हुए बेटा! वह उन आश्रम की कृतिकाओं में रत्त रहने लगी, जहाँ नाना रूपों में मानो देखो, पाण्डितव अपने को दृष्टिपात करता है। नाना प्रकार के रूपों में एक योगेश्वर अपने को दृष्टिपात कराता है। नाना प्रकार के शब्दों में मानो वेदज्ञ ध्वनियों में, भिन्न भिन्न की धाराओं का

बेटा! हमें प्रायः जन्म होता रहा है। इस जन्म को अपने में धारण करने वाले मानो देखो, अपने में ऊर्ध्वा गति को प्राप्त होते रहे हैं।
तो आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चाएँ न देता हुआ केवल देखो, अब्रहों मेरे प्यारे! सायंकाल को आश्रम में जैसे गऊओं का मानो देखो, आदान हुआ तो मेरे प्यारे! वह कामधेनु गऊ राजा के समीप पहुँची और राजा दिलीप के चरणों में ओत प्रोत हो करके उन्होंने उनके चरणों की वन्दना की। उसने कहा देवी! तू बड़ी विचित्र है तू कहाँ गई थी? मानो देखो, इन आभा में वह अपने में एक अप्रोतत्स्वाः सञ्जंगृतीलोकाम् मानो देखो, कामधेनु ने कहा कि मैं अपने जातियतव में अपनी धाराओं को ले गई और मैं यह विचारने लगी क्या मेरा जो जन्म कृति लोकाम मानो देखो, एक तपोमयी जीवन है वह कितना प्रभावशाली है? तो उन्होंने कहा कहो धेनु! तुम्हारा जीवन तपोमय है, उन्होंने कहा प्रभो! मैं तपो में रहती हूँ। उन्होंने कहा कामधेनु का कौन सा तप है? उन्होंने कहा कि कामधेनु का तप क्या होता है? कामधेनु तो यह चाहती है कि मैं वन जनों में मानो देखो, वन जनों की वन्दना में सदैव रत्त रह करके और अपने बंधन की धाराओं को मुक्त करते हुए मानो देखो, मैं प्रभु को प्राप्त हो जाँऊ। क्योंकि प्रत्येक मानव, योगेश्वर मानो देखो, अपने में रत्त रह करके और वह कामना करता रहता है कि मैं मोक्ष को प्राप्त हो जाँऊ। उसका केवल लक्ष्य यही होता है। इसी प्रकार प्रभु मैं भी यही चाहती हूँ कि मेरा जीवन मानो मोक्ष की पद्धति को अपनाता हुआ, अपने में महान् बनाता हुआ और मानो देखो, उसकी उज्ज्वलता को पवित्रता की वेदी पर ले जाए। तो मेरे प्यारे! देखो, कामधेनु ने यह वाक् ऋषि का स्वीकार नहीं किया। परन्तु राजम्ब्रह्माः तत्मस्थं ब्रह्म वाचन्नं ब्रह्मा गायन्तो दधि वर्णनं ब्रह्मवाचाः वेद के आचार्य ने कहा हे ऋषिवर! यह वेदां अमृतां पानां ब्रीहिवृतां उन्होंने कहा प्रभु! वास्तव में ऐसा ही है ये प्राणां पुत्रोवाचस्पृहे वायु सम्भवाः देवो ब्रह्मेः वाचनन् ब्रह्म कृति लोका मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने यह वाक् कहा कि यह गऊ कामधेनु के मुखारबिन्दु से तो हमें यह प्रतीत हो रहा है कि यह कुछ अपनी कुछ प्रेरणा दे रही हैं। परन्तु आपके मुखारबिन्दु से हमें कुछ उत्पन्न हो रहा है। आपकी कामधेनु हमें कहाँ पहुँचा रही है। परन्तु देखो, इस आभा को ले करके कामधेनु

की वार्त्ता मेरे प्यारे! देखो, राजा दिलीप से नित्यप्रति होती रहती थी और राजा ने यह निश्चय कर लिया क्या मानो कामधेनु मेरी पूज्य है। मैं उसको पूजनीय बनाऊँगा, मैं इसका पूजन करूँ। बेटा! कामधेनु गऊ के पूज्य का अभिप्रायः क्या है? पूजा का अर्थ क्या है? प्रत्येक मानव पूजा के इस क्षेत्र में जाना चाहता है। मेरे प्यारे! महात्मा गौतम से कहा गया ऋषि ने कहा महाराज! ये मानो देखो, पूजा किसे कहते हैं? मेरे पुत्रों! ऋषि ने कहा कि तुम कौन सी पूजा को जानना चाहते हो? उन्होंने कहा मैं उस पूजा का पथिक हूँ। जिस पूजा को जानने के पश्चात् मानो शेष क्रिया संसार की जानने योग्य न रहें। परन्तु देखो, इस रूप में तो मैं अपने स्वरूप का अपनी मानो देखो, उस आभा का वर्णन कर सकता हूँ। तो मेरे प्यारे! देखो, कामधेनु ने अपने इस रूप में मानो देखो, इसको रत्त किया। अपने इस रूप को लेकर के वह द्वितीय रूपों का परिवर्तन भी करने लगे, तो विचार विनिमय मेरा यह है आज कि कामधेनु महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज ने महाराजा दिलीप को प्रदान की थी और यह कहा था कि तुम इसकी सेवा करो और जहाँ यह जाए वहीं जाएँ। परन्तु महात्मा गौतम के आश्रम में दोनों का विचार विनिमय होने लगा तो महात्मा गौतम ने कहा कि महाराज! मैं तुम्हारे आशय को नहीं जान रहा हूँ। महाराजा दिलीप जी ने कहा कि हमारा इतना यह रहस्य गम्भीरतम है, क्या इसकी प्रतिभा एक मानव को किसी ओर दिशा में ले जा रही है और किस अनुपम ज्योति का दिग्दर्शन कराना चाहती है तो मेरे प्यारे! देखो, जब महात्मा गौतम से यह वार्त्ता होने लगी तो महात्मा गौतम ने कहा कि यह वाक् तुम्हारा यथार्थ है। क्या तुम संसार में सन्तानोत्पत्ति के लिए याग का एक क्रियाकलाप कराना चाहते हो, यह मुझे बहुत प्रियतम है। परन्तु तुम प्रातःकालीन मानो देखो, याग करो और इस गोघृत, गोदुग्ध के द्वारा याग किया जाएँ तो मेरे प्यारे! देखो, महाराजा दिलीप जी का नित्यप्रति का यह क्रियाकलाप बन गया। मानो देखो, प्रातःकालीन सूर्य उदय हो रहा है। प्रकाश आ रहा है, उसी प्रकाश में रत्त रह करके पूर्वामुख हो करके प्रातःकालीन बेटा! महाराजा दिलीप याग करने के लिए तत्पर होते वो याग में परणित हो करके देवपूजा को अपने में धारण करते रहे। वह देवपूजा वाला जो यह अनुपम मानो साकल्य है यह देवताओं की हवि

बनकर के देवता इस मानो देखो, प्रतिभा को जान करके इस सागर से पार होने का प्रयास करने के लिए तत्पर रहते हैं। क्योंकि प्रत्येक मानव परम्परागतों से एक मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण करना चाहता है और वह यह चाहता है कि मेरा मोक्ष होना चाहिए। मैं मोक्ष की प्रतिभा में जाना चाहता हूँ। परन्तु देखो, कामधेनु भी अपना मोक्ष चाहती है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! भी अपना मोक्ष चाहते हैं। परन्तु प्रलयकाल में वह मोक्ष के रूपों में रत्त रहना चाहते हैं। तो मेरे प्यारे! देखो, यहाँ प्रकृति के भिन्न भिन्न प्रकार के स्वरूपों का वर्णन महर्षि गौतम मुनि ने किया। महर्षि गौतम मुनि ने कहा था कि यह जो प्रकृति के भिन्न भिन्न प्रकार के यागों का चयन करने वाली मानो प्रतिभा में तुम्हारा जीवन मानो एक, आभा में रत्त रहता है, इस आभा से तुम्हें मुक्त होना है। तो मेरे प्यारे! देखो, कामधेनु एक मानो गऊ के रूप में अपना प्रतिपादन करती हुई, अपने रूपों का बखान करती हुईं, अपने रूपों का गान गाती हुई मानो देखो, अपने स्वतंत्र रूपों में रत्त रहने के लिए तत्पर रही। तो महाराजा दिलीप और मेरे प्यारे! महर्षि गौतम मुनि का विचार विनिमय होने लगा। महर्षि गौतम मुनि बोले कि महाराज! मैं जानना चाहता हूँ कि जो वशिष्ठ ने मुझे कहा है कि यह कहाँ तक यथार्थ है? तो महात्मा गौतम ने कहा कि गऊओं समा चंचलं वाचं ब्रह्मी चराचर स्वस्त लोक मेरे प्यारे! ऋषि ने कहा कि ये जो कामधेनु है, ये तुम्हारे जीवन की चराचर देवी है, ये तुम्हारे जीवन की एक प्रतिभा कहलाती है। मेरे प्यारे! जब ऋषि ने जब यह वाक् श्रवण किया। राजा ने ये जब वाक् श्रवण किया तो मुनिवरों! देखो, महात्मा गौतम ने पुनः यह पुनरुक्ति की और उन्होंने कहा यही तो याग मानो देखो, विष्णुरूप में रत्त रहने वाला है, यही याग कामधेनु के रूप में रत्त रहने वाला है, यही याग मानो देखो, तुम्हारी धाराओं में रत्त रह करके, तुम्हारे जीवन की ऊर्ध्वा और वह देखो, व त्रिमुखी बना करके तीनों गुणों के गुणाधानं अपने में धारण करने वाली है। मेरे प्यारे! देखो, जब ऋषि ने ये वाक् श्रवण किया, वो राजा प्रातःकालीन नित्यप्रति उसी कामधेनु के दुग्ध को और घृत को लेकर बेटा! प्रातःकालीन वह याग में परणित हो जाते और याग में देखो, पूर्वाविमुख हो करके वे मानो देखो, याग में परणित हो करके अपनी अपनी धाराओं को मानो एक धारा में रत्त

कराते हुए जीवन की एक धारा एक अनुपम बनाते रहते थे तो आओ मेरे प्यारे! आज का हमारा यह विचार हमें बहुत दूरी ले गया है। हमें एक मानो गम्भीर आभा में रत्त कराने के लिए ले गया है जिससे मानो देखो, हम अपने में उस धारा को ले जाकर के और कामधेनु की आभा में रत्त कराने के लिए तत्पर रहें। तो कामधेनु और महर्षि गौतम मुनि महाराज का दोनों का परस्पर बड़ा विशेष समन्वय रहता था। और उन्होंने बेटा! लगभग एक वर्ष हो गया था महाराजा दिलीप को। गौतम मुनि के आश्रम में कामधेनु के गौघृत के द्वारा यज्ञ करते हुए और ब्रह्मचर्यव्रत से रत्त रहते हुए ब्रह्मचरिष्यामि मानो देखो, गौतम पान क्या करते थे, यह जानने का वाक् है।

बेटा! देखो, वह महर्षि अब्रहो गौतम मुनि महाराज बेटा! देखो, गोघृत के द्वारा और दुग्ध के द्वारा मानो देखो, गोरसों का पान करते थे और महाराजा दिलीप भी मानो देखो, याग करते, याग में जो शेष रहता उसको उसका रत्न मानो जल में तपा करके उसे पान करते थे तो बेटा! एक वर्ष तक इस प्रकार का उन्होंने तप किया। एक वर्ष के पश्चात् कामधेनु के गर्भ से बेटा! नन्दनी का जन्म हुआ और नन्दनी का जब जन्म हुआ तो नन्दनी मुनिवरों! देखो, वह ऋषि राजा को यह देवताओं से यह आह्वान हुआ कि हे दिलीप! तुम्हें उस कामधेनु की मानो नन्दनी की रक्षा करनी है। कामधेनु का अध्याय पूर्ण हो गया है। तो मेरे प्यारे! देखो, यह आकाशवाणी भी हुई, मानो देखो, एक प्रेरणा प्राप्त हुई। ऋषि मुनियों ने ये बेटा! पुनः उन्हें आज्ञा दी कि तुम इसकी रक्षा और इसकी आभा में रत्त हो जाओ। मेरे प्यारे! देखो, अब देखो, नन्दनी पनपती रही। कामधेनु को बेटा! वहीं त्याग दिया और नन्दनी की सेवा करने लगे। नन्दनी अपने में बेटा! बड़ी पूर्णताओं में प्राप्त होती रहती थी। वह मानो देखो, गोघृत के द्वारा गौदुग्ध के द्वारा मानो देखो, याग करते और इस पीपल की समिधा के द्वारा, कहीं चन्दनी वृत्तियों की समिधाओं के द्वारा कहीं मानो देखो, वट हूली के द्वारा, नाना प्रकार की समिधाओं के द्वारा वह याग करते और वायु का सेवन करते प्रातःकाल में और मानो देखो, वह खरल बना करके कुछ पदार्थों का पान करते थे। इसी प्रकार बेटा! देखो, तप किया जा रहा था। उस तप का निदान मेरे प्यारे! देखो, गौतम आश्रम को महाराजा दिलीप

ने त्याग दिया। और गौतम आश्रम को जब त्याग दिया, तो मुनिवरों! देखो, वह आगे भ्रमण करते बेटा! महर्षि कौस्त आश्रम में विद्यमान हो गए, महर्षि कौस्त मुनि महाराज बाल्य थे, उनके पिता श्वेता श्वेतर देखो, विद्यमान थे। उनके पिता श्वेत्ताश्वेतर ने मानो ऋषि का राजा का स्वागत किया और राजा से कहा धन्य है राजन्! आइए, हमारा यह कैसा अहोभाग्य है। उन्होंने कहा प्रभु! हे दिलीप जी! तुम क्या चाहते हो? तुम इतना कठोर तप कर रहे हो। उन्होंने कहा प्रभु! मैं चाहता क्या हूँ, मैं राष्ट्र को चाहता हूँ मैं चाहता क्या हूँ मैं अपने हृदय की महानता को चाहता हूँ। मैं चाहता क्या हूँ मैं ऋषियों के ऋण से अवऋण होना चाहता हूँ। मैं चाहता क्या हूँ मैं पितरों का याग करना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने एक ही प्रश्न के इतने उत्तर दिए तो कौस्त मुनि के पिता श्वेत्ताश्वेतर बेटा! मौन हो गए और मौन हो करके उन्होंने कहा, बहुत प्रियतम! मेरे प्यारे! देखो, श्वेत्ताश्वेतर ने अगले दिवस उनसे एक प्रश्न किया दिलीप जी यह जो राष्ट्र है, यह क्या है? महाराजा दिलीप जी ने कहा यह जो राष्ट्र है यह अनुशासन है। अनुशासन का नाम राष्ट्र कहलाता है। तो ऋषि ने कहा कि अनुसासन किसे कहते हैं? उन्होंने कहा प्रजा अपने अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाली हो, तो मानो देखो, उस समय उसे अनुशासन कहा जाता है। तो महाराजा श्वेत्ताश्वेतर ने कहा हे राजन्! जब प्रजा का प्रत्येक प्राणी, अपने अपने कर्त्तव्य का पालन करने लगेगा, तो राष्ट्र क्या है? उन्होंने कहा राष्ट्र अनुशासन की अनुक्रमिका कहलाती है। मानो देखो, वह राष्ट्र की प्रतिभा कहलाती है तो उन्होंने कहा कि जब राष्ट्र कर्त्तव्यवाद का नाम है और कर्त्तव्यवाद हो रहा है तो राष्ट्र का अपना अस्तित्व क्या है? उन्होंने कहा कि कोई अस्तित्व नहीं है, केवल नामों का अस्तित्व कहलाता है। जिसमें इस भूमिका को रचा है जो भूमिका को नियन्त्रित कराने वाला है। मानो देखो, उसकी महत्तता का वर्णन आता रहता है। तो मेरे प्यारे! देखो, जब राष्ट्र की चर्चा आई, तो उन्होंने कहा राष्ट्र का जो जन्म है वह मानो देखो, वह महान् ध्रुवा से बनता है, ऊर्ध्वा से? तो महाराजा दिलीप ने कहा कि ऊर्ध्वा से बनता है। जब तक माता पिता ऊर्ध्वा में नहीं होंगे, तो बाल्य ऊर्ध्वा में नहीं हो सकता, परन्तु जब तक राजा पवित्र नहीं होगा तो प्रजा महान नहीं बन सकती परन्तु

देखो, यह मेरा विचार है। महाराज दिलीप ने यह कहा है कि देखो, जब तक मैं तपस्वी नहीं बनूंगा मेरा बाल्य तपस्वी नहीं बनेगा और जब बाल्य नहीं बनेगा, तो प्रजा नहीं बनेगी। इसीलिए मानो देखो, मैं तप कर रहा हूँ। मैं कामधेनु की सेवा जब तक मैं स्वतः नहीं करूँगा गऊओं की रक्षा जब तक स्वतः नहीं करूँगा। तब तक मेरे राष्ट्र का कोई प्राणी मानो गऊओं की रक्षा नहीं कर सकता। जब तक मैं याग नहीं करूँगा, देवपूजा नहीं करूँगा देवपूजा का मेरा क्रिया कलाप नहीं बनेगा तो प्रजा भी देवपूजा नहीं कर सकती। जब तक मैं संगतिकरण और ब्रह्मयाग नहीं करूँगा। मेरा बाल्य भी ब्रह्मयाग नहीं कर सकता। इसीलिए प्रत्येक मानव को ब्रह्मयागी बनना है। ब्रह्मनिष्ठ बनना है। देवपूजा करनी है। राष्ट्र को पवित्र बनाना है। तो राजा को स्वतः महान् बनना होगा और जब तक राष्ट्र महान् नहीं बनेगा तब तक देखो, प्रजा महान् कदापि नहीं बन पाएगी।

मेरे प्यारे! देखो, जब महाराजा दिलीप ने महाराज श्वेताश्वेतर के प्रश्नों का यह उत्तर दिया तो महाराजा श्वेताश्वेतर बेटा! मौन हो गए। तो यही अनुशासन है जो प्रजा से लेकर राष्ट्र, और राष्ट्र से ले करके मानो देखो, ऋषि मुनियों तक और ऋषि मुनियों से ले करके बेटा! यही अनुशासन मोक्ष की पगडण्डी में ले जाता है। और मोक्ष की पगडण्डी को जब ग्रहण कर लेता है तो मुनिवरों! देखो, वह आनन्दवत् रहता है और मुनिवरों! देखो, वह आनन्दवत् रह करके, परमात्मा के आनन्दमयी चित्र में ही और सत चित्त आनन्द में ही वह रत्त रह करके अपने में आभायित रहता है। तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या है? महाराजा दिलीप मानो देखो, एक मानव यह चाहता है क्या, मेरे गृह में एक सन्तान का जन्म हो तो मैं कामधेनु की रक्षा इसीलिए कर रहा हूँ, श्वेताश्वेतर ने कहा कि तुम्हारा यह स्वार्थ क्रिया कलाप है, यह प्रिय नहीं लग रहा है। उन्होंने कहा प्रभु! मैं स्वार्थी नहीं हूँ। मैं निस्वार्थ हो करके सेवा कर रहा हूँ। मैं निस्वार्थ हो करके देवपूजा कर रहा हूँ। मैं निस्वार्थ हो करके मानो देखो, अपनी भूमिका को जन्म देना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! देखो, महाराजा दिलीप अपने में इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तरोत्तर दे करके वे मानो श्वेताश्वतर मौन हो गए।

तो मेरे पुत्रों! देखो, ऋषि ने एक प्रश्न किया था, महाराजा दिलीप से कि तुम मोक्ष किसे

कहते हो? उन्होंने कहा मोक्ष उसे कहते हैं जो इस संसार से उपराम हो जाता है। उन्होंने कहा संसार से उपराम कौन होता है? उन्होंने कहा संसार से उपराम वह प्राणी होता है जो मानो देखो, निष्क्रिय हो जाता है। जो निस्वार्थ बन जाता है जो निस्वार्थ से ऊर्ध्वा गति को प्राप्त हो जाता है। उन्होंने कहा निस्वार्थ कौन होता है? उन्होंने कहा निस्वार्थ वह होता है जो मानो देखो, व्यष्टि और समष्टि दोनों का जान लेता है। उन्होंने कहा व्यष्टि और समष्टि किसे कहते हैं? व्यष्टि कहते हैं इस बन्धन को, समष्टि कहते हैं जब बन्धन से मुक्त हो जाते हैं तो मानो समष्टि में रत्त रह करके आगे गति करने वाला समाज अपनी मानो भूमिका पवित्र बना लेता है। तो मेरे प्यारे! उन्होंने कहा समस्तं ब्रह्मवेत्ता प्रहे लोकाम् वाचं ब्रह्मीवाच को पृथ्वी लोकाम्। मेरे पुत्रों! जब उन्होंने यह वाक् कहा समष्टि व्यष्टि का वर्णन किया। उन्होंने कहा समष्टि में क्या होता है? और व्यष्टि में क्या होता है? उन्होंने कहा देखो, समष्टि में और व्यष्टि में व्यष्टि कहते हैं मानो देखो, एक बन्धन की प्रतिभा को और समष्टि कहते हैं जो मानो देखो, प्रत्येक अपनी इन्द्रियों को अपने को प्रत्येक देवता से अपनी इन्द्रियों को पिरो लेता है और पिरो करके वो मानो सूत्र को अपने हृदय से समन्वय कर लेता है और हृदय का जो समन्वय है वही समन्वय एक माला के सदृश्य बन करके समष्टि और व्यष्टि को पिरो करके मानो देखो, उसके आनन्दवत्त को ग्रहण कर लेता है। मेरे प्यारे! देखो, यह वाक् उच्चारण करके और देखो, महाराजा दिलीप जी मौन हो गए। और दिलीप जी ने कहा प्रभु! आगे से मैं कोई प्रश्न नहीं करूँगा। आज के प्रश्नों का उत्तर भी नहीं दे सकूँगा। मेरे प्यारे! देखो, यहाँ राष्ट्रवाद क्या है? इसके सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं केवल इतनी है क्या देखो, राष्ट्र जब ऊँचा होता है राजा स्वतः ऊँचा हो तो प्रजा उसका अनुसरण करती है। माता जब ऊँची होती है तो बाल्य उसका अनुसरण करता है। आचार्य जब तपा हुआ होता है तो आचार्य मानो देखो, ब्रह्मचारी उसका अनुसरण करता है जब आचार्य कोई वाक् मिथ्या उच्चारण करता है उसका क्रियाकलाप पवित्र नहीं होता तो आचार्य के बाल्य में मानो देखो, वह ब्रह्मचारियों का कोई अस्तित्व नहीं रहता। न आचार्यों का कोई अस्तित्व रहता है। इसीलिए यह समष्टि और व्यष्टि में संसार परणित हो रहा है। इसके ऊपर मानव

को विचार विनिमय करना है अब आगे दिलीप जी और श्वेत्ताश्वतर की एक वर्ष की चर्चाएँ हैं वो मैं कल प्रगट करूँगा। आज का वाक् अब समाप्त होने जा रहा है।

आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः क्या है? आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः क्या है? आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः ये हैं कि महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज ने दिलीप जी को आज्ञा दी कि तुम कामधेनु की सेवा करो और कामधेनु के गर्भ से इसके गर्भ से नन्दनी का जन्म होगा। नन्दनी की सेवा करो। मेरे प्यारे! अब वह नन्दनी की सेवा करने लगे हैं। कल समय मिलेगा तो नन्दनी की वार्त्ताएँ और देखो, वह मृगं ब्रहा भयंकर बनों में जो पूर्वाविमुख हो करके दिलीप जी याग करते थे उन यज्ञों की चर्चाएँ वह साकल्य से क्या क्या वार्त्ता प्रगट करते थे, ये चर्चाएँ मैं कल प्रगट करूँगा। आज का वाक् समाप्त, वेदों का पठन पाठन। बरनावा ओ३म् धेनु रथा आ पा माणां गयिन्ता तणु वा चा रथं मां रेवाः।

१४ 26 02 1985 पुष्प 48 महाराजा दिलीप की नन्दनी सेवा वार्त्ता

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है, क्योंकि वह मेरा देव महिमावादी है। उसकी अनुपमता इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के एक एक कण कण में व्याप्त हो रही है, अथवा एक एक धाराओं में उसकी महानता का प्रायः हमें दिग्दर्शन होता रहता है। क्योंकि जितना भी यह जड़ जगत् अथवा चैतन्य जगत् एक तरंगों के रूप में हमें दृष्टिपात आता रहता है, उन नाना प्रकार की तरंगों में वह तरंगित होने वाला एक अनुपम महान् देव कहलाया गया है, जिस देवता के सम्बन्ध में परम्परागतों से ही, मानव अ पने मानवीयता का दिग्दर्शन करता रहा है ओर यह विचारता रहा है कि मैं जब तक उस अनुपम चेतना के समीप अपने को नहीं ले जाऊँगा तब तक वह अपने जीवन को अंधकार वश स्वीकार

करता रहता है।
तो इसीलिए हमारा वेद का मन्त्र हमें उस मार्ग के लिए प्रेरित कर रहा है जहाँ परमपिता परमात्मा का हमें सदैव दिग्दर्शन होता रहता है। जिस मानवीय दर्शन के लिए प्रत्येक मानव अपनी आभा में निहित रहता है। तो आज हम उस परमपिता परमात्मा की महती अथवा उसके गुणों का गुण वादन करते रहें क्योंकि जिसका यह अनुपम जगत् है अथवा एक एक तरंगे उस महान परमब्रह्म परमात्मा से व्याप्त रहती है। तो हमें उस व्याप्त परमपिता परमात्मा की महती को सदैव अपने अन्तःहृदय में धारण कर लेनपी चाहिए। क्योंकि प्रत्येक मानव के हृदय में यह पिपासा रहती है कि प्रत्येक मानव अपने मनों में, हृदयग्राही बना रहता है कि मैं उस परमपिता परमात्मा को जानने के लिए तत्पर हो जाऊँ।
प्रत्येक मानव के हृदय में यह आकांक्षा लगी रहती है चाहे वह किसी भी क्षेत्र में रहने वाला प्राणीमात्र क्यों न हो, परन्तु वह सदैव आनन्द के लिए, आनन्दित होने के लिए सदेव एक महान कामना करता रहता है और विचारता रहता है कि मैं परमपिता परमात्मा की महती और आनन्दमयी ज्योति में तर रहना चाहता हूँ।
तो आओ मेरे प्यारे! जब हम एक एक वेदमन्त्र के शब्दों के ऊपर यह विचार विनिमय प्रारम्भ करने लगते हैं कि हमारा जो मानवीय जीवन है उसका समन्वय उस परमपिता परमात्मा से उसकी चेतना में रत्त रहता है और उसी का पिपासी बना रहता है तो इसलिए हम उस परमपिता परमात्मा की आनन्दमयी प्रकाश और आनन्द को जानने के लिए हम सदैव तत्पर रहते हैं। आज का हमारा वेदमन्त्र हमें कुछ ऊँची ऊँची प्रेरणा दे रहा था और हमें प्रेरित कर रहा था कि मनोवाहा स्वजन्म मेघाम मदनंवृतीवृष्टतं वाचा कृतवस्थाः परमपिता परमात्मा जो आनन्दमयी कहलाता है जो मानव के अन्तर्हृदय में विद्यमान है। तो हम परमपिता परमात्मा को अपने अन्तर्हृदय में अन्तर्मुखी हो करके उसको ध्यानावस्थित हो जाएँ। आज का हमारा वेदमन्त्र हमें नाना प्रकार की जहाँ प्रेरणा दे रहा है, आज मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ यह हमारा वाक् हमारे विचारों का समूह देखो, कई समय से कटिबद्ध हो रहा है। राजा रघुवंश रघु के पिता

महाराजा दिलीप जी ने प्रारम्भ से कई समय से हम चर्चाएँ कर रहे हैं। आज भी हम उसी क्षेत्र के लिए अपने में कटिबद्ध हो करके उसके ऊपर कुछ चिन्तन करना चाहते हैं महाराजा दिलीप जी कामधेनु की जहाँ रक्षा करते रहते थे उसकी सेवा में सदैव तल्लीन रहते थे, परन्तु नन्दनी का जब जन्म हो गया तो नन्दनी की सेवा करते रहते थे। कामधेनु और नन्दनी मुनिवरों! यह नाना पर्यायवाची नहीं हैं। एक ही सूत्र के दोनों मनके कहलाते हैं। और विचार जाता है कि यह धेनु शब्द है अथवा नन्दनी शब्द है।

यह जो धेनु है इसलिए इसे धेनु कहा जाता है क्योंकि यह दुही जाती है। इसको दुहने के लिए, इसलिए इसे धेनु कहा जाता है। दुहने के लिए मैंने तुम्हें कई चर्चाएँ की हैं विचार दिया है कि धेनु शब्द का अभिप्राय व्यापकवाद है। धेनु उसी को कहते हैं जो व्यापकतवाद में रत्त रहता है। जब व्यापकवाद में मानव अपने को ले जाता है तो कामधेनु की भांति अपनेपन में अपनेपन को ले जाता है अथवा उसमें प्रतिष्ठित करा देता है। तो विचार दे रहे थे कि महाराजा! दिलीप जी अपने क्षेत्र में जब प्रवेश किया करते तो देखो, दोनों वाक्यों पर महाराजा दिलीप जी बहुत गंभीरतापूर्वक गम्भीरयुक्त हो करके अपने विचारों को बाह्यजगत् में उनका शूचन करते रहते थे।

तो मैंने अभी अभी तुम्हें चर्चाएँ की कि कामधेनु को लेकर के महाराजा दिलीप जी अपने राष्ट्र में अपनी कृतिकाओं में नाना प्रकार का चिन्तन और मनन करते रहते थे। उस मननशील की अनुपम एक शैली कहलाती है, वह बड़ी अनुपम और विचित्रतम में रमण करने वाली है। परन्तु आज का हमारा वेदमन्त्र कुछ कह रहा है, कुछ प्रेरणामयी वाक्यों का प्रतिपादन करा रहा है। महाराजा दिलीप जी नंदनी को लेकर के वह श्वेत्ताश्वतर मुनि के यहाँ विराजमान हो गए। श्वेत्ता श्वतर ने इन दोनों राजा का और नंदनी का सेवार्थ विभाजन वृहें वृत ब्रह्म वाचाः उनसे कुछ विचार विनिमय हो रहा था। तो मुनिवरों! महाराज दिलीप जी ने महाराजा श्वेत्ताश्वतर से कहा महाराज! मैं अपनी नंदनी की सेवा कर रहा हूँ। नंदनी यह देवताओं की धरोहर महाराजा इंद्र के यहाँ से प्राप्त हुई, तो मैं नंदनी की सेवा करने वाला हूँ अथवा इसका सेवक हूँ। तो दोनों अपने अपने में रत्त होने लगे। कामाम् गृहे वाचाः सम्भवमि वाचनमो ब्रह्माः वैभवसम्भवाः कामधेनु

अपने में आनंदित विचरण करती रहती थी। तो नंदनी भी इसी प्रकार अपने में रत्त रहती, अपने में आनंदित हो जाती। एक समय महाराजा श्वेत्ताश्वतर और महाराज दिलीप जी विद्यमान थे। महाराज दिलीप जी प्रातः काल में नंदनी के गौघृत के द्वारा याग करते थे। सुगंध में जन्म लेकर के वे उसे सुगंधित बनाते रहते थे। नाना प्रकार की समिधाओं को लेकर के जब राजा गौघृत के द्वारा जब वह यज्ञ करते तो यज्ञों में पवित्र पवित्र समिधाओं उनका शोधन करने के पश्चात् उस समय अग्न्यधान करते तो वह अग्नि की धाराएँ विचित्रता को लेकर के अपने स्वरूप में प्रायः परणित होती रहती। जब वह अपने स्वरूप में परणित होतीं, तो मुनिवरों! उनके ऊपर विचार विनिमय किया जातां समिधाएँ इस प्रकार की होती हैं जो अग्नि में प्रवेश करने से मानव के अन्तःकरण क्या, मानव के शरीर का औसध बन करके रहता है।

बहुत सी इस प्रकार की औषधियाँ उसका सूत्मतम रूप जब भयंकर अग्नि का भेदन कर देती है तो उसका सूत्मतम स्वरूप बनकर के अनुसंग ओतप्रोत हो जाता है, उसी में रत्त हो जाता है। तो विचार विनिमय क्या? कामधेनु अपने में सुसज्जित बन गई। अपने विचारों को ले करके महानता की ज्योति अपने में ज्योतिवान बन जाती है देखो, पूर्वाभिमुख हो करके यज्ञमान जब यज्ञ करता है तो वह अग्न्याधान करता है। वह अग्नि के ऊपर ध्यानावस्थित हो जाता है। अग्नि एक दूसरे के संन्निधान से, एक दूसरे के संगतिकारण से वह उपज रही है, वह प्रकाश दे रही है, वह अपने में प्रकाश दे करके आदित्यों को प्रकाशवान बना रही है। वही अग्नि मही अमृताम् ज्योति कहलाता है।

तो यज्ञ करने के पश्चात् महाराजा दिलीप जी और महर्षि श्वेत्ताश्वतर दोनों का विचार विनिमय होना प्रारम्भ हो गया था। कहीं से भ्रमण करते हुए महर्षि बटुक महाराज आश्रम में प्रवेश कर गए। परन्तु जब बटुक मुनि महाराज और ऋषि मुनि विद्यमान हो गए तो महाराजा दिलीप जी ने श्वेत्ताश्वतर से एक प्रश्न किया कि महाराज! एक वेद का एक मन्त्र है। और वेद का मन्त्र यह कहता है सृष्टि प्रणामवमभोवहा वज्यतं देवं ब्रह्मावायु सम्भवा देवों अग्निम् ब्रह्म वाचो देवोभ्यो, बहु सम्भवा देवोरम्भा वाचन्नमः स्राः। तो मुनिवरों! महाराजा दिलीप ने कहा यह तो मैं भली भांति जान गया हूँ कि समाज का जब

कल्याण मानव का जब कल्याण प्रारम्भ होता है तो मानव के अन्तर्हृदय से नाना प्रकार की तरंगों का जन्म होता है। जिन तरंगों को जान करके, जिन तरंगों में तरंगित हो करके अपने जीवन को ऊँचा बनाया जाता है। अपने जीवन को महान बनाया जाता है। तो महाराजा दिलीप जी ने यह प्रश्न किया कि महाराज! वेदमन्त्र कहता है कि जिस समय प्रलय का काल आता है, तो प्रलय के काल में यह ब्रह्माण्ड, एक दूसरे में लय हो जाता है।

जैसे जिस प्रकार जिस कर्म से इसकी रचना होती है, उसी कर्म से यह समापन हो जाती है। जैसे तीव्र गति से इसका जन्म हुआ ऐसे ही तीव्र गति से इसका समावेश हो जाना है। जब दोनों का समावेश हो जाता है तो दोनों अपने में रत्त हो जाते हैं। परन्तु मुझे कुछ ऐसा स्मरण आता रहा है जो मैंने बहुत पुरातन काल में भी वाक्यों के ऊपर टिप्पणियाँ हुईं। परन्तु आज भी उन वाक्यों के ऊपर टिप्पणियाँ देने वाला हूँ मुनिवरों! वाक् कहता है वृष्वामि वृही वाचाम् देवो ब्रह्मवाहाः कृतीम् लोकाम् अग्निः। नाना प्रकार की विचारणीय धाराओं में अग्नि न को ले करके जब वह अग्न्याधान करते हैं, उस अग्नि में प्रविष्ट हो करके अपने को अग्निवान् बना करके और वह शत्रुता और मित्रता दोनों का एक दूसरे में प्रवेश करा करके पार होना उनके लिए स्वाभाविक गुण बन जाता है। तो जब महाराजा ने यह वाक् ब्रह्मवाचाः प्रहे लोकाम् हिरण्ये वृथाः महाराजा दिलीप जी ने यह कहा कि हे भगवन्! मेरा यह जीवन कितने समय की प्रतिभा प्रतीक्षा में लगा हुआ है। तो मुनिवरों! उन्होंने कहा सम्भवा! वाचाम् दिव्यंगतं ब्रह्मा वायुः अपदेवी देवी ब्रह्मवाहा सुस्तं वाचन्नमः ऋषि ने कहा कि वेद का मन्त्र कहता है कि प्रलयकाल में जब यह प्रकृति एक अपने स्वरूप में परिणत हो करके वह अग्नि ब्रह्म की गोद में विद्यमान हो जाती है, तो यह जो प्रलय काल होता है एक दूसरे में लय हो जाता है। तो उन्होंने कहा कि ब्रह्मयज्ञ की विवेचना होनी चाहिए।

जब ब्रह्मयज्ञ की विवेचना होने लगी, ब्रह्मयाज्ञं देवों याज्ञं प्रथमवृहे याज्ञं भविते देवाम् यागांब्रह्म लोकाः यागाम् ब्रह्मलोकाम् अग्निः यहाँ ब्रह्मलोक की चर्चाएँ होती रहती हैं। नाना प्रकार की भव्य चर्चाएँ होती रहती, जिनके जानने के लिए मानव अपने में रत्त

रहता है, संसार को ऊँचा बनाता है। परन्तु देखो, उसकी महानता का सदैव दिग्दर्शन होता रहता है। आनंदमयी बनाने के लिए सदैव तत्पर रहता है।
तो मेरे प्यारे! महाराजा दिलीप जी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए श्वेत्ताश्वतर ने कहा कि महाराज! जब प्रलय काल आ जाता है तो इससे जलं ब्रह्मा वाचाम् भूपणम् वाचन्नं वृहे अग्नि देवाः। ये अपने में रत्त रह करके मुझे शिक्षित बनाती रहती है। महाराजा दिलीप जी के इस प्रश्न के करने के पश्चात् मुनिवरों! वेदना की अनुपम एक जागरूपता हो जाती है और जब अनुपमता की जागरूपता हो जाती है तो उस समय कामधेनु क्या ये नाना ब्रह्माण्ड स्थावर गृहे एक उत्तीष्णा क्रिया निष्ट क्रिया बन करके मानव के अन्तःकरण को दूषित या प्रकाश में रत्त कर देती है मुझे कुछ स्मरण है कि महाराजा! दिलीप जी ने जैसे ही इसका अनुष्ठान किया। अनुसरण अनुभूमिका बनाई परन्तु उस समय इसके रूप का कुछ और विशुद्ध रूप बन गया। तो विचार क्या? ऋषि कहता है मैंने इस संसार को बहुत समय से दृष्टिपात किया परन्तु मैं तो इस वाक् को नहीं जानता कि जब प्रलय काल होता है तो आत्मा अपने स्वरूप में रत्त हो जाता है। यह प्रकृति सूक्ष्म रूप बन करके एक अन्तरिक्ष में, अपने स्वरूप में परणित हो जाती है। राजा ने कहा, तो प्रभु! मैं यह जानने आया हूँ कि यह अपने में विशुद्ध अपने में धारामयी आनंद को मनाते हुए अपने में उज्ज्वल स्वरूप को जो धारण करता है वह महान बन जाता है। तो हे प्रभु! आपकी महानता इसमें दृष्टिवान् नहीं हो रही है? उन्होंने कहा, ब्रह्मबाचोदेवाः? देखो, कोई वाक् अंतिम जब चरण आता है, तो अपने में अपनेपन को लिए, ऊँचे आभाओं में ऊँचे रुद्रों में अपने को ले जा करके महानता की ज्योति का दिग्दर्शन कराता है। तो ऋषि ने कहा कि जिस समय प्रलय काल होता है तो यह जो पञ्च महाभूत हैं यह, शून्यबिंदु में प्रवेश कर जाते हैं। उसी शून्य बिंदु में जब यह महातत्व ओत प्रोत हो जाते हैं तो नाना प्रकार की धाराओं को ले करके मेरे नाना प्रकार की जीवन और धाराओं में रत्त रह करके अपने को महान् बनाने का प्रयास करने लगता है मैं तुम्हें विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ।
मैं तो केवल तुम्हें कुछ विचारों का परिचय देने आया हूँ। और वह परिचय क्या है? उस

परिचय की मैं चर्चा कर रहा था, जब महाराजा दिलीप जी ने यह प्रश्न किया तो महाराजा श्वेत्ताश्वतर ने कहा कि इस अन्तरिक्ष में जाए हुए इस परमाणुवाद की तीन प्रकार की श्रेणियाँ कहलाती हैं। एक श्रेणी सतोगुण है, दूसरी श्रेणी का नाम रजोगुण कहलाता है, तृतीय श्रेणी का नामोकरण तमोगुण है। तो जब महाराजा दिलीप ने कहा कि आत्मा के जैसे तीन प्रकार के परमाणु हैं भूः भुवः स्वः परमाणुओं में जो तीन प्रकार के हैं इन्हीं में कहीं न कहीं आभा भी वह तरंगित हो जाती है, उन तरंगों में ओत प्रोत हो जाती है। इन तरंगों का विशेषकर मुझे अपने तक सीमित नहीं बना देना है। तो ऋषि ने कहा कि तीन प्रकार की प्रलय के काल में भी श्रेणियाँ बनी रहती हैं। अब हम उत्तम और मध्यम, मध्य बृही वाचप्रहे पञ्च महाभूतों की प्रतिभा का अनुपमता में जन्म हो रहा है, उसकी धारा में अपनी धारा को ले जाने का प्रयास होता रहता है। तो महाराजा दिलीप ने जब यह प्रश्न किया, तो महर्षि श्वेत्ताश्वतर ने कहा कि जब प्रलय काल होता है, प्रलय काल में यह ब्रह्माण्ड जो दृष्टिपात आने वाला है, यह पृथ्वी में, पृथ्वी इस महान जल में और जल अग्नि में, जो तेजोमयी कहलाता है।

और तेजोमयी बन करके तज्ञं भविता यज्ञशाला प्रवेवाचो देवो ब्रह्मवाहाः वाचन्नम ब्रह्मेकृतं लोकाः वह जो तीन प्रकार के श्रेणी हैं वही तो मानव को उद्बुद्ध कर देती है, वहीं मानव की धाराओं में मानवीयता का एक दर्शन होना प्रारम्भ हो जाता है। ऋषि कहता है हमारा जो कथन है वह ममतव को धारण किए हुए रहता।

इस आभा को हमें विशेष रूप से अपनाना नहीं है। केवल उसको अपने साथ ऊर्ध्वा में ले जाना है, जिस ऊर्ध्वा के ऊपर प्रत्येक मानव का अन्तर्हृदय एक एक धारा में रत्त रहने वाला है।

श्वेत्ताश्वत्तर ने कहा है वह तीन प्रकार की जो श्रेणी होती हैं जो रहने वाली हैं जो मध्यमाम् अपने अपने आभा में यह रत्त हो रही है, गतियाँ कर रहे हैं और जिस समय प्रलय काल आता है तो प्रलय के काल में यह एक वायु होती है जिसको मृतिका वायु कहते हैं।

मृतिका नामक जो वायु है वह अन्तरिक्ष में विचरण करती रहती है। जब उस समान

भो गाम् देवाः जब प्रलय काल में यह आत्मा जीवात्मा अपने स्वरूप में चला गया। अपने रूप में रत्त हो गया है, तो कोई ऐसा आश्चर्य क्या है? उन्होंने कहा कि आश्चर्य नहीं होता है परन्तु देखो, वह क्रियाकलाप कहलाता है, वह तो महानता की ज्योति में हमें ले जाता है। वही तो हमारे जीवन का एक सूचक बना हुआ है। हमारे जीवन की धारा का एक धारावाहिक अपने में अपने को लाना चाहता है।

तो विचार विनिमय क्या? महाराजा श्वेत्ताश्वतर ने कहा कि एक आत्मा का सार जो ऊर्ध्वा मेंरहने वाला है एक द्यो में भू में रहने वाला है जो द्यौवाला है प्रलय काल होता है, तो एक एक यह ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आने वाला पृथ्वी में, और पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु अन्तरिक्ष में और अन्तरिक्ष एक वचेश्वर नामम् पुच्छो वो हो वाचप होता है परन्तु उसे पान करने से क्षुधा का विनाश हो, सांत्वना को प्राप्त हो जाते हैं।

उदभुत होने वाला यह अनुपम जगत कहलाता है, जिसके ऊपर प्रत्येक मानव के अन्तर्हृदय में एक अनुपम ज्योति जागरूक बन करके रहती है, आनंदमयी बन करके रहती है, जिसको अपनाकर, उसको मोक्ष की धारा कहते हैं। एक मानव देखो, आत्मा मोक्ष में रहने वाला आनंदबत् में रहने वाला, जैसे परमपिता परमात्मा उसे अपने गर्भ में, इस संसार को अपने गर्भ में धारण कर लेता है।

वह माता बसुंधरा की भांति, बसुंधरा बन करके अपने में उसे उसका सिंचन करना प्रारम्भ कर देती है। महाराजा दिलीप और देखो, महर्षि जी दोनों की बहुत समय तक यह चर्चाएँ चलीं। परन्तु उन्होंने एक ही निर्णय दिया तीनों प्रकार के जो कर्म होते हैं उन तीनों के कर्म भिन्न भिन्न प्रकार की प्रतिभा वाले होते हैं। परन्तु वह जो कर्मपफला है अस्वं ब्रह्म वाचोः देवँमानं ब्रह्म लोकाम अहं वसत प्रही लोकाम्? इन वाक्यों को ले करके महाराजा ने अपने जीवन में यह अस्वतो धारण किया कि मैं नंदनी की अवश्य सेवा करूँ। महाराजा दिलीप और स्वेत्ताश्वतकर अपने अपने हृदय के विचार परस्पर जो उनके हृदय में अंकित हो रहे थे उनकी वार्त्ता को वह प्रगट करने लगे।

वे आनंदतम अपने में अपनी को ही जानने के लिए तत्पर होने लगे। तो प्रलयकाल में

भी मोक्ष को जो मुमुक्ष होने वाली आत्मा है, वह अपने आनंद में ही रत्त रहने वाली है।

परन्तु क्योंकि उनके अंतःकरण नहीं होता, उनके पञ्च महाभूत वाला शरीरम् यह शरीर भी नहीं होता, तो द्वितीय प्राणी मात्र को अपने में अपनी धाराओं में उनको रत्त करती गति करने का हमारा एक विचार बनता है, हमारा जीवन बनता है।

तो जीवन को बनाने के लिए मोक्ष की कामना करते रहते हैं। परन्तु जब यह प्रसंग आता है, जब यह वाक् आता रहता है कि महाराजा! ने यह प्रश्न किया, यह कहाँ तक यथार्थ माना गया है? जब यह वाक् उनके समीप आया तो उन्होंने कहा कि नाना प्रकार की आपों को एकत्रित करते हुए, उसकी आनंदमयी धारा को मानव, पान करना चाहता है। तो मैं विशेष विवेचना में न ले जाता हुआ महाराजा दिलीप जी को ऋषि ने यह निर्णय दिया कि तीन प्रकार की जो श्रेणी वाली आत्माएँ होती हैं।

वही तो मोक्ष की पगडंडी को ग्रहण करती हुई, मोक्ष के आनंद को ग्रहण करती हैं। उस आनंद के लिए हमें प्रायः लालायित होना है। इस आनंद के लिए हमें आनंदित होना है, जिन आनंदमयी धारा को अपना करके इस सागर से मानव पार होने का प्रयास करता रहता है।

तो महाराज दिलीप जी इन वाक्यों को पान करके मौन हो गए। उन्होंने कहा तीन प्रकार की श्रेणियाँ हैं और इस प्रकार की श्रेणियों वाले जो जीवात्मा, जो सब तरफ से उद्गमता को प्राप्त हो जाते हैं, आनंद को प्राप्त होते हैं। आज मैं विचार देता हुआ दूरी में न चला जाऊँ।

अपने विचारों को व्यक्त करता हुआ मैं उच्चारण कर रहा था, महाराजा दिलीप जी जब निद्रा से जागरूक हुए सूर्य उदय हो रहा था। भानु अपना प्रकाश दे रहा था, परन्तु शनैः शनैः अपने अपने कार्यों मैं रत्त रह करके अग्रहो ननंतप्रही चोकवा सम्भवाः गृहीवम् वृहे वाचं वृहीतत् लोकाः महाराजा दिलीप और ऋषि की दोनों की विचारधारा प्रारम्भ हुई।

महाराजा दिलीप ने कहा हे प्रभु! मैं जो कामधेनु को ले रहा हूँ उसका मेरा क्या मंतव्य है? उन्होंने कहा सम्भो वाचपृही लोकाम्! उन्होंने कहा हो भगवन्! ऐसा ही हमारा विचार

बन गया है कि हम अपने में ही आपको क्रिया कलाप के लिए सर्वत्र प्रियतम सर्वत्र प्रिय धाराओं में रत्त रहना है।

तो यह वाक् हमने नाना प्रकार के रूपों में इन विचारों की धाराओं को लेना प्रारम्भ किया तो श्वेत्ताश्वतर ने यह कहा हे राजन्! तुम प्रातःकालीन जो यज्ञ करते हो, वह जो यज्ञ है वह यज्ञ का आत्मा के लोक में विद्यमान हो करके यज्ञ करता है। जब ऋषि ने यह वाक् कहा तो राजा ने कहा प्रभु! यह वाक् यथार्थ है।

परन्तु जब यह वाक् मेरे प्यारे! महाराजा दिलीप जी ने पुनः श्रवण किया तो उन्होंने यह कहा कि प्रभु! मैं यह जानने के लिए आया हूँ मेरी उत्कृष्ट इच्छा है कि मैं नंदनी की सेवा कर रहा हूँ । जब नंदनी की सेवा करता हुआ, मैं यज्ञ करता हुआ भयंकर वनों में जा रहा हूँ। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम! इतने में कामधेनु नंदनी जागरूक हो गई। राजा ने नंदनी को ले करके वहाँ से आश्रम को त्याग दिया। आश्रम में नाना प्रकार के गम्भीर शंकाओं का निवारण हुआ।

उन्होंने अपने निवारण के समय में यह कहा ज मां निर्वाणं भू वाचम् प्रहे सम्भवाः दिव्यं ममां वाच वृही लोकाम्। अद्यम् आचार लोको आचार भूताम् आर्चाय लुप्तं गृहे वृचो सम्भवा लोकाम् गृहे सम्भवेतु प्रियम वाचन्नमः नंदनी को ले करके महाराजा दिलीप जी ने आश्रम को त्याग दिया। भ्रमण करते हुए वह हिमालय की कंदराओं में जा पहुँचे, वह हिमालय की कंदराओं जहाँ मुनिवरों! देखो, हिमाय की कंदराओं में नाना प्रकार के शब्द नाना प्रकार की ध्वनियाँ उसमें प्रायः ध्वनित्य होती रहती हैं और तुम यह कहते हो कि मुझे इसका भान नहीं है।

तो मेरे पुत्रो! मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि महाराजा! दिलीप जी प्रातःकालीन पूर्वाभिमुख हो करके गौघृत के द्वारा यज्ञ करते। जब यज्ञ होता रहा, तो बहुत समय तक उनका यज्ञ भू में प्रारम्भ रहा, परन्तु यज्ञ की अपनी प्रतिभा अपना रत्त निर्वाया अनिष्टः निर्वाअणिस्वताः सुम्भवेत देवां वाचां भूतम् प्रवेः लोकाम्।

वहीं तो अपने आभा रत्त रहने वाला एक अनुपम धारा कहलाती है। जिसको अपना करके मानव अमरापुरी को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार जब अमरापुरी की चर्चाएँ

करता हूँ, अमरापुरी की वार्त्ताएँ आती हैं वहीं मेरा अन्तर्हृदय गद् गद् हो जाता है। प्रातःकालीन दिलीप जी ने यज्ञ किया और वह नंदनी के समीप हो गए।

तो नंदनी के आंतरिक धाराएँ थीं, वह कह रही थीं हे दिलीप जी! यह तुम्हें किसने कहा कि तुम नंदनी की सेवा करो। उन्होंने कहा कि महाराज! मैं कुछ तो दर्शनों में इसका अध्ययन करता रहा हूँ। परन्तु कुछ समय ऐसा आया जो धर्म से वंचित्त हो करके पुनः यह प्रभु की एक अनुपम जागरूकता आ गई है। मैं उस जागरूकता में सदैव अपने को सौभाग्यशाली स्वीकार करता रहता हूँ। तो मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि ऐसा कुछ ज्ञान हुआ है कि वह नंदनी अब रक्षार्थ के लिए, आनंद के लिए वह भ्रमण करती हुई समगाथा वाचां नंदनंगृहीस्थै। आभाभुवन उस देवता का पूजन करें। नंदनी सत्पथी का चिन्तन करना प्रारम्भ किया। जब चिन्तन करने लगे तो बहुत समय हो गया, नंदनी की जब क्षुधा ने पीड़ित कर दिया तो राजा नंदी को बन कंद्राओं के आँगन में ले गए जहाँ वह क्षुधा निवारण कर सके। दोनों परस्पर चर्चा करते रहते।

मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे कहते रहते हैं क्या पशु भी वार्त्ता प्रकट करता है? मैं यह करता हूँ क्या पशु वार्त्ता नहीं करता है? पशु क्या, देखो, वार्त्ता तो कएक एक प्रकृति की ध्वनियाँ कह रही हैं। वह कुछ न कुछ अपने स्वरूप को ले करके वह प्रायः गतिशील रहती है। इसीलिए कामधेनु जब अपने में गतिशील बनती है। कामधेनु धनम् वृहम् वाचा! वह एक प्रिय धन है। जिसको अपना करके मानव का जीवन सम्पदावादी बन जाता है। नंदनी की सेवा किसी आचार्यों ने विशेषतम में परणित की है। परन्तु विचारा जाता है मेरे पूज्य प्राहाः वाचम् पृही सम्भवां लोकाम् वायु सम्भवु वृष्टान्देवो वाचप पिंगल विभुम् लोकाम्। भयंकर वनों में महाराजा दिलीप जी अपना आनंदयुक्त हो करके प्रातःकालीन यज्ञ करते पूर्वाभिमुख हो करके और नंदनी के समीप विद्यमान हो जाते और नंदनी से वार्त्ता प्रकट करते रहते।

नंदनी अपने में नंदवाहा वह धेनु कौन गऊ कहलाती है? परन्तु देखो, वह धेनु कौन है? नंदनी कौन है? वह जो वनों में विचरण करने वाली है। नंदनी विचरण करते करते वह पर्वतों की गुफा में झरना झर रहा था। तो कहा जाता है कि वे देखो, यज्ञ में आ करके

वहाँ मृगराज ने सिंहराज ने आ करके नंदनी पर आक्रमण कर यि। जब नंदनी पर आक्रमण किया और महाराज दिलीप जी की दृष्टि जब नंदनी पर पहुँची। तो नंदनी अपने में शान्त है और वह सिंहराज उसको आहार बनाना चाहता है।

ऐसा कहता है लेखनीबद्ध करने वाला, उनके विचार ऐसा कहते हैं कि मुनिवरों! अपने भावाविभोर हो करके वह कहता है हे सिंहराज! मैं जानता हूँ कि हम तुम्हारे राष्ट्र में हैं, परन्तु दूसरा भयंकर वनों का अधिराज है। राजा है और तू नंदनी को अपना आहार बनाना चाहता है। नंदनी की आहार बनाने से पूर्व तुझे मेरे शरीर का आहार बनाना होगा। मुझे आहार बना करके पान करना होगा। जब तू नंदनी को अपना आहार बना सकता है। उस समय राजा ने जब ऐसा भावातुर हो करके यह वाक् कहा, ऐसा मुझे स्मरण आता रहता है मृगराज ने कहा कि मैं ऐसे प्रतापी महाराजा को जिस राजा के राष्ट्र में, जिस राजा के यहाँ कोई हिंसक प्राणी किसी की हिंसा में अकारण नहीं बन जाता जिस राजा के राष्ट्र में हिंसक देखो, प्राणियों को हमको कोई नष्ट करने वाला नहीं है, हिंसक हिंसा करने वाला नहीं है, राजा अपने में प्रसन्न है।

प्रजा अपने में प्रसन्न है, महापुरुष अपने में प्रसन्न हो रहा है। हम अपने में प्रसन्नयुक्त हो करके सुंदर और स्वतंत्र रूपों से विचरण करते हैं। जिस राजा के राष्ट्र में हमें किसी प्रकार की विडम्बना नहीं है न राजा के राष्ट्र में किसी प्रकार के हमें हिंसक प्राणियों की नीति होती है। इस समय मृगराज सिंहराजा से कहता है अरे, राजन्! तू तो महान् है। उसने नंदनी को त्याग दिया। नंदनी कहती है हे सिंहराज! मैं तेरा आहार हूँ तू मुझे अपना आहार बना। सिंहराज ने कहा, मेरा तू आहार नहीं है। तू तो मानव राष्ट्र का जीवन है। राष्ट्र में राष्ट्र का यदि कोई जीवन है तो वह गऊ है।

मृगराज सिंहराज ने भी इन वाक्यों को अपने भावातुरों की तरंगों में तरंगित हो करके कहा। उन तरंगों को, जो तरंगों को जानता है वही उन तरंगों को भावातुर करता हुआ यह उच्चारण कर सकता है।

सम्भूति ब्रह्मवाचो देवाम् आभाम् धौब्रह्मवा लोकाहम्। राजा कहता है हे नंदनी! तू मेरा सम्पदा है, तू राष्ट्र की सम्पदा है, तू मेरे राष्ट्र का प्राण है, तू वैद्यराजों की औषधि बन

करके रहता है। तो यहाँ देखो, बाल्यकाल में अपनी आभा को ले करके तू राष्ट्र का प्राण बन करके रह। विचार आता है कि राजा के राष्ट्र का यदि कोई प्राण है तो देखो, वह गऊ धेनु है। गो नाम देखो, इन्द्रियों का है। गो नाम पशु का है, यह जो गो नाम का पशु है राजा के राष्ट्र में यह राष्ट्र का प्राण बन करके रहता है। क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में दुग्ध देने वाला पशु होता है, गऊ होता है, उस राजा का राष्ट्र बड़ा पवित्र होता है। उसकी प्रजा में कामातुरता नहीं होती। ऐसा हमारे यहाँ वैज्ञानिकों का कथन है।

मेरे प्यारे! एक समय ऋषि मुनियों का एक समूह विद्यमान हुआ था। और किसी काल में ऋषि मुनियों ने यह विचारा कि हम प्रजा को अनुशासन में, प्रजा को प्राकृतिक अनुशासन में लाना चाहते हैं। तो हमें क्या करना चाहिए। तो वैज्ञानिकों का यह कथन हुआ, ऋषिमुनियों ने यह निर्णय किया था और वैज्ञानिकों ने किसी काल में कि दुग्ध देने वाला पशु हो और मानव जितना दुग्ध आहार करता है, जितना अन्न आहार करता है, उतना उसके हृदय में ब्रह्मभोजो .... तजोमयी बनता रहता है। जब ब्रह्म तेजोमयी बनता रहता है, उसका ब्रह्मचर्य स्थिर है। स्थिरता को प्राप्त हो करके, कन्याएँ क्या, पुत्रवत् क्या धैर्य की धारणा बनी रहती है और वह धारणा शक्ति ही राष्ट्र में अनुशासन की प्रतिभा बन करके राष्ट्र को ऊँचा बना देती है। यह वाक् ऋषि मुनियों ने किसी काल में कहा था।

इसके ऊपर तो कल मेरे प्यारे! महानन्दजी की बड़ी उत्कृत इच्छा है कि मैं दो शब्द इस गऊ के सम्बन्ध में धेनु के सम्बन्ध में अपने विचार दूं। परन्तु वह कल उनका विचार दिया जा सकेगा। आज तो केवल हम इतना उच्चारण कर सकते हैं कि कामधेनु जो शब्द है कामना की पूर्ति करने वाला शब्द है। धेनु जो शब्द है धैर्य से धारणशक्ति से इस धेनु का जन्म होता है और नंदनी इसलिए कहलाती है जो नंदनं वाचं ब्रह्मा राष्ट्र का प्राण, नंदनं प्राण को कहा जाता है और वह प्राणशक्ति जब स्थिर रहती है मानव का जीवन अनुशासन में रहता है।

यह वाक् मैंने बहुत पुरातन काल में प्रकट किया था। आज मैं विशेष चर्चाओं में तुम्हें

नहीं ले जा रहा हूँ। विचार केवल यह देना चाहता हूँ कि सृष्टि के प्रारम्भ में जब प्रलयकाल आता है तो उन आत्माओं का सबका एक स्वरूप बन जाता है। ऐसा बुद्धिमान कहता है परन्तु प्रायः ऐसा नहीं है जैसे रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण की प्रतिभा तीन गुणाधानम् धारणा को करने वाले एक आत्मा रहता हैं। तीन प्रकार की श्रेणियों वाला यह द्यौ वृत्तिं का सम्भूति का यह तीन वृत्तिका बन जाती है। जब प्रलयकाल आता है तो यह जी मुमुक्षु आत्माएँ होती हैं वह कृति का में, प्रभु के आनंद में सत्, चित्, आनंद में लय हो जाते हैं। यह सत् चित् आनन्दं में रहते हैं और मुनिवरों! देखो, जो रतोगुण सतोगुण में है वह प्रलयकाल में कर्म करने की पिपासा के लिए प्रभु से याचना करते हैं कि संसार रचे तो हम कर्म करने के लिए तत्पर हो जाएँ। इस प्रकार की धारणाशक्ति बनी रहती है।

वह परमात्मा के आनंद में जिसको मोक्ष कहते हैं, वे ही मोक्ष या परमात्मा के आन्नद के साथ रहता है और ये जो रजोगुणी प्रतिभा सतोगुणी प्रतिभा में आत्मा सर्वप्रिय होने वाली कर्म बंधना में होने वाले को चित्त का मण्डल जब तक रहता है, वो चित्त के मण्डल में ही उसके सूक्ष्म रूप में आत्मा रमन करती रहती है। मुमुक्षु में इच्छा मण्डप नहीं होता, वह एक रस रहने वाला है। वह एक रस में गति करता रहता है।

आज यह विचार गम्भीरता के वाक् हमारे प्रारम्भ हो रहे हैं। यह बड़ा गम्भीर विषय है। पुनरुक्ति वाक् आते रहते हैं, परन्तु देखो, विचार बड़े गम्भीर और मानवीय क्योंकि हम ऋषि मुनि विद्यमान हो करके इन वाक्यों के ऊपर गम्भीरता से चिन्तन किया करते हैं। महान् से महान् चिन्तन देखो, अपने शान्त मुद्रिका में विद्यमान हो करके रत्त हो जाते हैं। तो महाराजा दिलीप जी ने जब धेनु और नंदनी की सेवा की तो, देवताओं का आह्वान हुआ महाराजा दिलीप! आपका तमोयी जीवन महान् बन गया है। 12 वर्ष तुम्हारे समाप्त हो गए हैं।

12 वर्ष का महाराजा दिलीप ने यह अनुष्ठान किया था। राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिए और राष्ट्र में एक निष्काम कर्म करने के लिए कि मैं निष्काम अपने जितना मानव तमोमय रहता है, ब्रह्मज्ञान में रहता है, ऋषि मुनियों के समूह में रहता है उतना उसकी

अंतरात्मा प्रसन्न होता है और ब्रह्मवर्चों में उन तत्त्वों में एक महान् परमाणुओं का एक ऊर्ध्वा में जन्म हो जाता है और जीवनशक्ति ऊर्ध्वा बन करके मुनिवरों! देखो, उसी को प्राप्त होती है।

मैं विशेष तुम्हें विवेचना देने नहीं आया हूँ। मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ। केवल संक्षिप्त परिचय देने के लिए चला आया हूँ और वह संक्षिप्त परिचय यह है कि हम परमपिता की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, हम इस संसार सागर से पार हो जाएँ। हम अपने देवतव की प्राप्त हो करके परमपिता परमात्मा की महती को जान करके अपने में रत्त हो करके यहाँ से जाएँ।

महाराजा दिलीप जी महाराज ने गऊओं के लिए बड़ा बल दिया है। आज मैं भी बल दे रहा हूँ राष्ट्र के लिए समाज के लिए कल समय मिलेगा, तो मेरे प्यारे! महानन्द जी दो वाक्यों की धेनु और नंदनी के विषय में उनकी कुछ चर्चाएँ होंगी। आज का विचार समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा। इसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त। लाक्षागृह, बरनावा

१५ 27 02 1985 पुष्प 48 महानन्द जी का रूढ़ि समाप्ति द्वारा

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने, पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है, क्योंकि उस परमपिता परमात्मा का जो विशाल अनुपम जो विज्ञानमयी स्वरूप है, मानो जिसका विज्ञान ही आयतन माना गया है।

तो प्रत्येक वेदमन्त्र, उस परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन कर रहा है। जिस भी वेदमन्त्र के ऊपर मानव अपना विचार ले जाता है अथवा चिन्तन करने लगता है मानो उसकी गम्भीर मुद्रा में परिणित हो जाता है। तो उस मुद्रा में परिणित होकर के, वह महान् विज्ञानमयी वेत्ता बनकर के वह अपने प्यारे प्रभु आनन्दमयी स्वरूप को निहारने

लगता है। क्योंकि उसका जो ज्ञान है अथवा विज्ञान है वह इतना नितान्त माना गया है क्या उसके ऊपर कोई मानव सीमाबद्ध नहीं हो सका।

मानव उसको सीमाबद्ध भी नहीं कर सका है। जब अपनी इन गम्भीर मुद्रा में मानव परणित हो जाता है तो गम्भीर मुद्रा में परणित हो करके वह प्रायः उसी को प्राप्त हो जाता है, तो इसीलिए हमारा वेद का मन्त्र यह कहता है, क्या प्रत्येक मानव को, उस परमपिता परमात्मा के चिन्तन में और मनन में इतना गम्भीर मुद्रित हो जाना चाहिए क्या वह अपने अन्तर्हृदय में, उस परमपिता परमात्मा के हृदय में अपने को समावेश कर सके, क्योंकि प्रत्येक मानव की एक ही आकांक्षा बनी रहती है, कि मैं एक दूसरे में रक्त होना चाहता हूँ। मानो देखो, आत्मा यह सदैव चिन्तनीय अपने विषय को मानो बनाता रहता है क्या, मैं उस परमपिता परमात्मा जो जगत का नियन्ता है।

जिसका विज्ञान आयतन माना गया है, मैं प्रायः उसमें समावेश हो जाँऊ और मैं उसी को प्राप्त करके मानो अपनी, मानवीयता को मननशील बनाता हुआ, मानो इस संसार को निहारता हुआ, और परमपिता परमात्मा को ब्रह्माण्ड मानो उसका आयतन मैं स्वीकार कर लूं।

तो यह उसका गम्भीर मुद्रा में जाने का बेटा! परिणाम, जाने का उसका एक मन्तव्य बना रहता है और यह विचारता रहता है कि मैं अपने में ही, अपनी वातावरणीय असुताम् मैं उसमें समाहित हो जाँऊ। मेरे प्यारे! देखो, कई समय से हम महाराजा दिलीप जी की चर्चा कर रहे थे और दिलीप जी के जीवन का, जो दिग्दर्शन प्रायः हमारे समीप आता रहा है।

उनकी राष्ट्रीयता को भी मानो दृष्टिपात करने का कुछ सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। उससे यह प्रतीत होता है, क्या उनके जीवन में महान् एक आदर्श रहा है जिस आदर्शिता को हम सदैव वर्णन करते रहते हैं। वेद का मन्त्र कहता रहता है, क्योंकि संसार में निष्काम कर्म जितना भी है, वह मानव को, एक महान् वेदी पर ले जाता है। मानव को एक पवित्रता की आभा में रमण करा देता है। तो इसीलिए मेरे पुत्रो! हमें ये विचारना है कि हम अपने में कितने विचारशील बन करके और महानता की वेदी पर अपने को ले

जाना चाहते हैं। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने दो शब्द उच्चारण कर सकेंगे क्योंकि इनकी सदैव उत्कट इच्छा रहती है। कि मैं दो शब्द उच्चारण करूँ।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् यशश्चां दिव्यां गोवरुणा सम्भवौ वर्णाश्चतं वाचाः श्वञ्जना। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल और भद्र समाज! आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक बड़ी गम्भीर मुद्रा की चर्चा कर रहे थे, क्योंकि परम्परागतों से ही, प्रायः एक एक वेदमन्त्र को ले करके अपनी मुद्रा में मुद्रित रहे हैं।

आज मैं उस मुद्रा की चर्चा तो नहीं करने आया हूँ, केवल यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ, कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, मानो गो मेध और कामधेनु और धेनु की चर्चा कर रहे हैं। कई समय से हम चरणों में विद्यमान हो करके, मानो कहीं एक धेनु की चर्चा करते हैं, तो कहीं एक गो की चर्चा कर रहे हैं। कहीं नन्दनी की चर्चा कर रहे हैं।

हमारे यहाँ, परम्परागतों में जो राष्ट्रीयवाद की चर्चाएँ जब हमारे समीप आती रहती हैं, तो प्रायः हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हम आधुनिक काल वर्तमान की और बहुत पूर्वकाल की जब हम अतीत का विचार देने लगते हैं तो प्रायः मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह कहा करता हूँ क्या वह विचार बहुत दूरी चला गया है और वर्तमान का विचार बहुत दूरी चला गया है।

परन्तु मैं आज दूरी को मापने के लिए नहीं आया हूँ। केवल पूज्यपाद गुरुदेव को यह वर्णन कराने के लिए आया हूँ क्या यह जो कामधेनु की चर्चाएँ, पूज्यपाद गुरुदेव करते रहते हैं। एक तो कामधेनु वह थी जो महर्षि वशिष्ठ मुनि के आश्रम में रहती थी। जिसको मानो महाराजा विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि होना हुआ। एक कामधेनु महाराजा दिलीप जी के यहाँ थी। एक समय महाराजा दिलीप जी जब राष्ट्र के अयोध्या में राष्ट्रीयता को ऊर्ध्वा में बनाने लगे, तो एक समय त्रिपुरी में पहुँचे।

एक राजाओं का समूह एकत्रित हुआ था, किसी काल में और उन्होंने गो के ऊपर, नन्दिनी के ऊपर चर्चाएँ कीं। परन्तु कामधेनु गो मानो वह भी देवताओं की सभा से महाराजा इन्द्र को प्राप्त हुई और इन्द्र ने वही कामधेनु महाराजा दिलीप जी को प्रदान कर दी। मानो देखो, उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो सब कुछ जानते ही हैं इस

सम्बन्ध में उसी कामधेनु की उन्होंने सेवा की। उसी नन्दिनी की सेवा की, तो कामधेनु, नन्दिनी के दो स्वरूप बने। परन्तु एक स्वरूप मानो कामधेनु कहते हैं, जो कामनाओं की पूर्ति करने वाली हो। प्रत्येक इन्द्रियों के ऊपर महाराजा दिलीप जी ने संयम किया और और जब इन्द्रियों पर गो पर संयम करते हुए, एक पशु के मानो पश्चात् मानो वह ऋषि मुनियों के आश्रमों में, प्रायः गति करते रहते और देखो, परन्तु देखो, उनके पदों में, पद पदुआ भी नही था वह इसके पीछे भ्रमण करते रहते थे ऋषि मुनियों से ब्रह्मज्ञान, ऋषि मुनियों से पवित्रता की आभा को लेकर के मानो देखो, उन्होंने ब्रह्मज्ञान को प्राप्त किया। क्योंकि ब्रह्मज्ञान एक ऐसा ज्ञान है, ब्रह्म की चर्चा ऐसी चर्चा है, जिससे मानव का अन्तरात्मा प्रसन्न रहता है।

मानव का अन्तरात्मा जब प्रसन्न रहता है, तो मानो देखो, उसकी उग्रगति होने लगती है। उर्ध्वागति बनने लगती है और परमाणुवाद की जब ऊर्ध्वागति बन जाती है तो मानव अपने में प्रसन्नीय बन जाता है। परन्तु जहाँ मैं उन राजाओं के प्रति मानो इस प्रकार अपने विचार व्यक्त करता रहता हूँ परन्तु आधुनिक काल जहाँ यह वर्तमान में हमारा ये वाणी प्रवेश कर रही है, वाणी वर्तमान में गति कर रही है, जब मैं आधुनिक काल के राजाओं के ऊपर, उस राष्ट्रीयता में सन्तुलना करता हूँ तो बहुत दूरी चला जाता हूँ। उस काल का राजा मानो सिंहराज भी उससे नम्रता से मानो देखो, हिंसा की प्रवृत्ति को त्याग करके, अहिंसा की प्रवृत्ति में परणित हो जाना है, आधुनिक काल का विचार, आधुनिक काल अतीतं ब्रहे मानो देखो, वर्तमान के राष्ट्रवाद के ऊपर जब मैं विचार करता हूँ, जब मानो देखो, राजा के राष्ट्र में हिंसक देखो, समाज बन जाता है तो उस राजा का आत्मबल नष्ट हो जाता है। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था, महाराजा दिलीप जी का इतना ऊँचा आत्मबल क्या सिंहराज भी नन्दिनी को त्यागकर के देखो, राजा के चरणों की वन्दना कर रहा है।

आधुनिक काल में जब वर्तमान में प्रजा में कितना अहिंसा परमोधर्म है। जितने प्राणी प्रभु ने निहित किए, उनके ऊपर इतना अधिपथ्य समाज का रहता, बुद्धिजीवी प्राणियों का रहता, जो परमात्मा ने ये योनियाँ, अपने कर्मों के भोगवाद के लिए बनाई हैं, किसी

न किसी प्रकार लाभप्रद हैं। यह समाज के लिए लाभप्रद है, वायुमण्डल के लिए लाभप्रद हैं। परन्तु जब इस प्रकार की विचारधारा प्रजा और राजा दोनों में होती है, तो मानो देखो, वह राष्ट्र क्यों न ऊँचा बनेगा। उस राष्ट्र में रूढ़ियाँ क्यों रहने लगी हैं।

परन्तु जहाँ वेद के पठन पाठन करने वाले आचार्य, के चरणों में मृगराज भी और मानो सर्पराज भी उनकी वार्त्ता को शान्त मुद्रित हो करके ध्यानावस्थित हो जाते हों तो क्या वह बुद्धिमान कितना उसमें आत्मबल है वह कितना आत्मविश्वासी है। मानो देखो, हिंसक उनके यहाँ अहिंसा का पालन कर रहा है और हिंसा को त्याग रहा है। इसी प्रकार देखो, जब राजा के राष्ट्र की प्रजा और देखो, बुद्धिजीवी प्राणी बन जाता है, तो उस राष्ट्र में मानवता की एक आभा परणित हो जाती है। परन्तु जब मैं अतीत की वार्त्ता को त्यागता हूँ, और वर्तमान के काल को लेता हूँ तो मैं बहुत दुखी इस जगत में चला जाता हूँ और विचारता रहता हूँ हे प्रभु! यह क्या तेरे राष्ट्र में खिलवाड़ हो रहा है? एक मानो देखो, एक रूढ़ि तो कहता कि हिंसा मत करो।

एक रूढ़ि कहता हिंसा नहीं करेंगे, तो हमारा जीवन कैसे पनपेगा। परन्तु देखो, इस प्रकार कि जब राजा के राष्ट्र में प्रजा हो जाती है, तो हे राजन्! तेरा आत्मबल कदापि ऊँचा नहीं बनेगा। तेरे राष्ट्र में बुद्धिमान पनप नहीं सकेगा। मानो देखो, तेरे राष्ट्र में विचारना है, यदि तू अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना है और द्वितीय राष्ट्र की हिंसा, प्रवृत्तियों को नष्ट करना है तो मानो तुझे अहिंसा परमोधर्मः का पालन करना होगा और प्रजा उसके अनुकूल व्रत करके मानो नाना प्रकार की रूढ़ियाँ को शान्त करना होगा। जब तक ये नाना प्रकार की रूढ़ियाँ शान्त नहीं होंगी, एक स्थलियों में मानव देखो, द्रव्य के द्वारा जहाँ माँस का निर्यात राजा के राष्ट्र में होता हो, राजा का राष्ट्र कैसे पनप सकता है?

मानो उसके पनपने का आसार विश्वस्तियां नहीं बन पा रहा है। मेरे विचार में नहीं आ रहा है, मैं पूज्यपाद गुरुदेव को क्या परिचय दूँ आधुनिक जगत का। जब मैं रूढ़िवादों में प्रवेश करता हूँ तो एक रूढ़ि नहीं, दो रूढ़ि नहीं रूढ़ि में से रूढ़ि का जन्म हो रहा है और वह रूढ़ि मानो देखो, राष्ट्र की घातक बन रही है। वह धर्म की घातक नहीं है,

परमात्मा की घातक नहीं है, दर्शनों की घातक नहीं, वह राष्ट्र के लिए घातक बनकर रह गई है। मानो देखो, जब वह राष्ट्र के लिए घातक बनी हुई हैं वह रूढ़ियाँ वो रूढ़ियाँ कहती है यदि गौमाँस नहीं होगा, तो हमारा जो शरीर है वो पनप नहीं सकेगा।

एक कहता है नहीं पाप है, एक मानव देखो, पाप कहकर भी उसको पान कर रहा है, कैसा विचित्र जगत् बन गया है। मानव वाणी से पाप कह रहा है और शान्त मुद्रा में कहीं वह मानव उसे पान कर रहा है। मानो देखो, इस प्रकार का यह जगत्, इस प्रकार का यह राष्ट्र बना जा रहा है।

मानो देखो, वैसे वास्तव में तो मेरे विचार में यह आ रहा है, क्या समय आने वाला है, जब मानो देखो, राष्ट्र में कोई न कोई महानता का कोई दर्शन हो सकता है। मैं उसको निश्चय नहीं कह रहा हूँ, परन्तु देखो, मैं एक अनुमान कृतियों में अपने को ले जा रहा हूँ। परन्तु देखो, जहाँ मुझे स्मरण है इस महाभारत काल के पश्चात् नाना प्रकार की रूढ़ियाँ आई और रूढ़ियों में कुछ मानो देखो, ऐसे जो रूढ़िवादियों के विशेषज्ञ मानो जिन्होंने रूढ़ि की स्थापना की, प्रायः सभी गऊओं की गऊ नाम के पशुओं की मानो देखो, वह सेवा करते चले आए हैं।

जब मैं यहाँ नाना रूढ़ियों के मोहम्मद से पूर्व उन राष्ट्रों में जो रूढ़ियाँ थीं, उन रूढ़ियों के जो प्रवर्तक थे, वो गऊओं के पदचिन्हों को अपने में जलों से स्पर्श करके उसे पान करते रहे हैं जब उसे पान करते रहें हैं तो हृदय प्रसन्न होता रहा है। परन्तु जब मैं आधुनिक काल में प्रवेश करता हूँ आधुनिक काल में मानो उनके प्रवर्तकों की चर्चा करता हूँ, वे गो अपने मानो देखो, उदर का एक स्थली बनाए रहते हैं। मानो कहीं मोहम्मद के मानने वाले हैं उनके हृदयों में वे यह कहते हैं कि माँस हमें प्राप्त नहीं होगा तो हम जीवित ही नहीं रह सकेंगे।

परन्तु हे भोले प्राणियों! विचार विनिमय करो। विचारने का तुम्हारे हृदय में सबसे पहले विचारने की शक्ति रहनी चाहिए कि परमात्मा को सदैव को स्वीकार नहीं करते हैं। वह तो केवल राष्ट्र तक उनका समाज चला हुआ है, यदि उनमें यौगिकता का, हम एक भान करने लगें तो यौगिकता हमें प्राप्त नहीं हो रही है। उनमें यौगिकता मानो देखो,

चारित्रता का वह देखो, अभाव होता चला जा रहा है।
जब यह अभाव हो रहा है, तो वो राष्ट्रीयता का एक मानो शत्रु बन करके मानवता का शत्रु बन करके मानो देखो, स्वार्थवाद की वेदी पर विद्यमान हो रहा हैं। प्रत्येक मानव के एक रूढ़ि नहीं हैं, मैं उन्हीं की रूढ़ियों को नहीं कह रहा हूँ, जितनी भी रूढ़ि हैं, मैं तो यह चाहता हूँ कि राष्ट्र और प्रजा दोनों मिल करके, दोनों एक ही स्थली पर आ करके इन रूढ़ियों को उन्हे समाप्त कर देना चाहिए। जब तक रूढ़ि समाप्त नहीं होगी तब तक हम यथार्थ राष्ट्र की स्थापना नहीं कर सकते। क्योंकि यथार्थ राष्ट्र उस काल में बनता है जबकि मानव के द्वारा एकोकी विचार होता है।
एकोकी धर्म की विस्तृत विवेचना होती है, मानो उसकी व्याख्या विशेष होती है, तो उस काल में मानो देखो, उसकी प्रतिभा ऊँची बनती है। तो आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को ये परिचय दे रहा हूँ क्या प्रत्येक मानव को अपने राष्ट्र और मानवता की रक्षा करनी है जिससे मानवीयतव अपने में सदैव तत्पर रहे, अपने में रक्त होकर अपनी आभा में परणित हो करके, मानवीयता का मानो दिग्दर्शन होता रहे। जिससे मानवता मानो देखो, उसकी आभा में परणित हो जाए।
आओ मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को मैंने कई काल में वर्णन करते हुए कहा था। आज का हमारा पुनः से हो प्रवेश जिसकी यागों की चर्चाएँ मैं पुनः पुनः करता रहता हूँ, मानो देखो, आज मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कई काल में आज जब मैं विद्यालयों में प्रवेश करता हूँ, तो विद्यालयों में भी मानो देखो, आहार और व्यवहार दोनों में सूक्ष्मता आ गई है।
हे राजन्! यदि राष्ट्र को ऊँचा बनाना है तो तेरी शिक्षा प्रणाली, तेरी जो आचार्य प्रणाली है उसकी आचार संहिता बनानी होगी और उसकी आचार संहिता बना करके, अपने राष्ट्र को ऊँचा आदर्श बनाना होगा। भगवान् मनु ने राष्ट्र का निर्माण किया है, मनु वाली पद्धति नहीं आएगी तो तेरा राष्ट्र मानो अतीत की भांति नहीं बन सकेगा। वर्तमान काल में महाभारत के काल के पश्चात् यह जो धर्मों के नामों पर मानव, मानव का शत्रु बना

हुआ है।

यह उस काल में नष्ट होगा जबकि तेरे राष्ट्रवाद में, मानो तेरी सभ्य समाज में इन देखो, धर्म के विचारकों की रूढ़ियों का शास्त्रार्थ होगा। और मानो देखो, यह अपनी अपनी निश्चित अन्तिम चरण में जाने के पश्चात् वह विचार जो अन्तरात्मा का अकाटय सिद्धांत हैं वह तेरे राष्ट्र में आ जाएँ, वह सिद्धान्त प्रजा उसको स्वीकार करके देखो, राष्ट्र दोनों ऊँचे बन सकते हैं।

तो विचार विनिमय क्या? मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह वाक् उच्चारण करने के लिए आया हूँ, ये परिचय देने के लिए आया हूँ। आधुनिक काल को देखो, यहाँ शिक्षा प्रणाली की जो आचार संहिता है वह पवित्र होनी चाहिए। तेरी जो राष्ट्रीय आचार संहिता है वह अशुद्धवाद में परणित है, वह भी पवित्र होनी चाहिए। परन्तु आचार संहिता को हमें ऊँचा बनाने के लिए पवित्रता की वेदी पर ले लाना है, आचार संहिता को बनाने के लिए हमें विज्ञान को ऊँचा बनाना है।

आधुनिक काल का जो विज्ञान है, मैंने विज्ञान की चर्चाएँ, बहुत पुरातन काल में, अपने पूज्यपाद गुरुदेव को निर्णय कराई थीं, और यह कहा था कि आधुनिक काल का जो विज्ञान मानो देखो, विज्ञान, विज्ञान की जो संहिताएँ हैं वह मानो देखो, एक द्वितीय मार्ग को अपना गई हैं। देखो, यहाँ विज्ञान की चित्रावलियों का दुरूपयोग हो रहा है, जो किसी काल में राजा रावण के काल में हुआ था। राजा रावण के काल में भी मानो देखो, इन चित्रावलियों का दुरूपयोग हुआ था। आधुनिक काल में भी प्रायः वह ऐसा हो रहा है।

वर्तमान के काल में भी मानो देखो, इसी प्रकार आचार संहिता, विज्ञान की समाप्ति होती जा रही है। मानो अणु और परमाणुओं का निर्माण हो रहा है, परन्तु देखो, उसके जीवन के लिए कोई शक्ति मानव के द्वारा नहीं हुई है। जहाँ अग्नेयास्त्रों का निर्माण हो गया है वहाँ वरुणास्त्रों का निर्माण नहीं हुआ। मानो देखो, कहा जा रहा है विज्ञान आधुनिक काल का? मैंने बहुत पुरातन काल में मानो देखो, यह वाक् अपने पूज्यपाद

गुरुदेव से कहा था।
समय आता रहा देखो, महाभारत काल के जिस स्थली पर हमारी यह आकाशवाणी जा रही है, यही स्थली मानव देखो, नदी तट पर, नदी के प्रवाह में बहुत ही समाप्त हो गई। यह भूमि नदी के प्रवाह से मानो समाप्त हो गई है, नदी के क्रियों में चली गई। परन्तु समय था जब मानो देखो, एक एक योजन दूरी तक मानो देखो, यहाँ बहुत से विद्यालयों का बहुत सी विज्ञान की देखो, यहाँ आचार संहिताएँ थीं। एक आचार संहिता यहाँ मानो घटोत्कच्छ के द्वारा निर्माणित हुई थी जिसमें महाराजा बब्रीक, महाराजा अर्जुन भगवान कृष्णा और देखो, यहाँ गुरु द्रोणाचार्य विद्यमान हो करके एक आचार संहिता बनी थी।
मानो यहाँ हिमालय के पार से एक वैज्ञानिक आया था उस काल में जिसका नाम भगुवाचुक था और भगुवाचुक ने यहाँ आ करके मानो एक वेदमन्त्र को ले करके, एक पातालपुरी से एक वैज्ञानिक आया जिसका नाम बब्रीक कहलाता था, वे आकर के देखो, यहाँ एक आचार संहिता बनी। एक यन्त्र का निर्माण हुआ था, वह यन्त्र मानो देखो, धातुओं को मिश्रण करके, धातुओं का वृणीत करते हुए मानो देखो, एक समुद्र की उत्तरी ध्रुव के आँगन में मानो देखो, उसके ऊर्ध्वा भाग में, एक यन्त्र का निर्माण किया गया था, जिस यन्त्र की यह विशेषता थी क्या मानो देखो, कोई भी धातु का यन्त्र यदि पृथ्वी के जलों का पृथ्वी के मानो वृणियों का कोई भी यन्त्र उसमें प्रवेश हो जाए और प्रवेश हो करके मानो जहाँ उसकी छाया आ जाए, तो उससे मानो सर्वत्रता को उसकी छाया उसे निगल जाती है।
जब निगल जाती थी तो मानो वह यन्त्र महाराजा बब्रीक के द्वारा महाभारत के काल में रहा। जब महाभारत काल में वह यन्त्र रहा, वह यन्त्र उन्होंने देखो, अन्तरिक्ष में जहाँ चन्द्रमा और पृथ्वी के कक्ष की जहाँ सीमा थी कृतिका लगती है वहाँ उन्होंने यन्त्र को स्थिर कर दिया और स्थिर करके देखो, उसकी आयु है मानो लगभग दस हजार, पचास वर्ष, छह माह और पांच दिवस का उसका आयु कहलाता है। वह मानो देखो, यन्त्र आज भी विद्यमान है, उसकी छाया वर्तमान के वैज्ञानिक को समुद्रों के तटों पर आती

रहती है और उसकी छाया जब आती है तो मानो वह यन्त्र को ऐसा विध्वंस कर देता है और उसका एक अंकुर भी प्राप्त नहीं होता। चाहे वो वायुयान हो, चाहे वह जलयान हो। कोई भी यान हो परन्तु देखो, वह नष्ट हो जाता है। प्राणी भी प्राप्त नहीं होता।

आधुनिक काल का विज्ञान मानो अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो करके यह विचारता रहता है कि यह क्या कोई देव है? कोई तो वैज्ञानिक उसे देव कहता है। किसी वैज्ञानिक ने यह कहा कि हमारे पूर्वकाल के जो वैज्ञानिक हैं उसका यन्त्र है। परन्तु कोई कुछ कह रहा है, अपने में निर्णय नहीं कर सके हैं इस वाक् का तो मैं पूज्यपाद गुरुदेव को ये निर्णय दे रहा हूँ क्या आधुनिक काल के विज्ञान की जो संहिता है, आचार संहिता उसकी प्रणाली इतनी में विचार और महानता में नहीं पहुँची है जो पुरातन के विज्ञान को अपने विज्ञान में मापने वाला बन जाए।

मापा नहीं जा रहा है। मानो देखो, आधुनिक काल के यन्त्रों का आयु केवल सौ सौ वर्षों का ही बना है। परन्तु पुरातन के लाखों लाखों वर्ष के यन्त्रों की आयु बन करके वह स्थिर हो रहा है और गति कर रहा है। कोई चन्द्रमा की गति कर रहा है। कोई मंगल की गति कर रहा है।

कोई सूर्य की किरणों में रत्त हो रहा है। परन्तु देखो, वह गति करने वाला यन्त्र है। जब मैं यह विचारता रहता हूँ कि आधुनिक जगत इस प्रकार के विज्ञान में भी मानो अपनी आचार संहिता को निर्माणित नहीं कर सका है। उसमें भी वह अधूरेपन में मुझे दृष्टिपात आता रहा है। जब मैं मानो देखो, इस नाना प्रकार की रूढ़ियों में वैदिकता को त्यागने वाले वेद का वाक् तो प्रायः सभी जगह है, परन्तु देखो, सभी स्थलियों पर हैं जब मैं वेद के, निन्दनीय प्राणियों के ऊपर प्रवेश करता हूँ, निरीक्षण करने लगता हूँ तो मुझे आश्चर्य होने लगता है। उस आश्चर्य में मैं आश्चर्यचकित होकर के मानो देखो, रूढ़ियों को धिक्कारता हूँ।

हे राजन्! तू जब तक अपने राष्ट्र से रूढ़ियों को समाप्त नहीं करेगा, तब तक तेरे यहाँ न तो विज्ञान संहिता और न आचार संहिता बन सकती है, न मानो धर्म की आचार संहिता बन सकती है। मानवता की आचार संहिता नहीं बन पाई। तो इसीलिए मेरे

विचार मैं तो केवल यही उच्चारण करने के लिए आता हूँ। मानो देखो, मेरा राष्ट्रवाद जब ऊँचा बनेगा जब मानव को आत्मविश्वास हो जाएगा। आधुनिक काल में आत्मविश्वास नहीं रहा है, न राष्ट्र को रहा है, न प्रजा को रहा है, न हिंसक प्राणियों को रहा है, न अहिंसा परमोधर्मः वालों को रहा है।

मानो जब देखो, आत्मविश्वास नहीं रहा है, स्वार्थवाद रह गया है। ये स्वार्थवाद मानो देखो, कुछ समय के पश्चात् नष्ट होता रहता है, कहीं नष्ट हो जाएगा। कहीं मानो पनपता रहेगा, तो विचार विनिमय क्या मैं पूज्यपाद गुरुदेव को कोई मानो विशेष परिचय देने नहीं आया हूँ, केवल मैं इतना ही परिचय देना चाहता हूँ क्या हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! आधुनिक जगत् मानो यह बड़ा विचित्र बन रहा है। मैं जिस स्थली पर हमारी आकाशवाणी जा रही है, मैं इस मानो देखो, भूमि को दृष्टिपात करके मेरा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न होता है। क्योंकि देखो, जहाँ जहाँ, क्या होता था यहाँ वैज्ञानिक विद्यमान होकर के याग करते थे, आचार संहिता का निर्माण करते थे, परन्तु देखो, कुछ काल आया रूढ़िवादियों ने मानव की आचार संहिता के परमाणुओं को निगल दिया। वह मानो देखो, दूरी चले गए और पुनः से मानो देखो, आचार संहिता बने, तो मेरा अन्तरात्मा पुनः प्रसन्न हो।

परन्तु देखो, यहाँ महापुरुषों की प्रतिभा, यहाँ घटोत्कच्छ जैसे वैज्ञानिक बब्रीक जैसे वैज्ञानिक, भीम जैसे और अर्जुन जैसे वैज्ञानिक मानो देखो, अपने में रत्त होते रहे हैं। कुछ प्राणी ये कहते हैं, कि क्या महाराजा अर्जुन मानो देखो, वह कामातुरों में रत्त रहते थे। परन्तु ये भोले प्राणियों को प्रतीत नहीं है। मानो उनका कथन है, आधुनिक जगत् के कहीं अलोपी के द्वारा उन्होंने संस्कार किया, कहीं द्रौपदी के द्वारा किया। मानो भिन्न भिन्न प्रकार के, मानो देखो, इस प्रकार का नहीं अलोपी के संस्कार केवल इसीलिए कि उस काल की परम्पराएँ मानो इस प्रकार दानां ब्रु सम्भवः देवआ उस काल में दान की प्रवृत्तियाँ गति करती रहती थीं। देवियाँ मानो इस प्रकार का उनका आचार बना हुआ था, उनकी आचार संहिता क्या जो अपने में मानो देखो, कि वह वीर्यतव को लेकर

के मानो देखो, वीर्यतव को जन्म देना उनका एक क्रियाकलाप बना हुआ था।
उस काल में, मानो अपने में सुसज्जित रहना, ब्रह्मचर्य व्रत से रहना अलोपी ने एक सन्तान को जन्म दिया था, उसके पश्चात् वह ब्रह्मचर्य वस्त्रों से पालना करती रही। इसी प्रकार आधुनिक काल से वह काल कई कई मार्गों में ऊँचा था। कई मार्गों में वह सामान्य कहलाता था। परन्तु देखो, इस प्रकार महारानी द्रौपदी का भी इस प्रकार की आचार संहिता उसके जीवन की आती रहती है। इसी प्रकार मानो देखो, वरुणा ब्रीहि कोचां ब्रहे मानो उनकी आचार संहिता भी इसी प्रकार की बनी रही, और उनका जीवन एक महान् और मार्मिक बना रहा।
जिसके ऊपर हम, सदैव हर्ष ध्वनियाँ करते रहते हैं और विचारते रहते हैं कि आचार संहिता कितनी पवित्र और विज्ञानमय, क्योंकि वे यहाँ की ममता को त्याग करके महाराजा शिव के द्वारा हिमालय में उन्होंने यन्त्रों का निर्माण किया और अर्जुन मानो देखो, छह माह तक वह अपने यन्त्र के द्वारा देखो, मंगल मण्डल में रहकर के विज्ञान की प्रतिभा को प्राप्त कर रहा है। वहाँ देखो, बब्रीक भी उस यन्त्र को लेकर के बब्रीक ने भी जाने का प्रयास किया। महाराजा घटोत्कच्छ मानो देखो, चन्द्रमा की यात्रा में चन्द्रमा में गति करते थे, हर छह माह में वह बब्रीक चन्द्रमा चले जाते हैं।
देखो, त्रेता का काल, इतना विचित्र रहा है। द्वापर का काल इतना विचित्र रहा है। मानो देखो, मानो देखो, विज्ञान में भी अग्रणीय रहा है। इसी प्रकार पातालपुरी क्या हिमालय की कृतिका क्या मानो सब राजाओं के वैज्ञानिक एकत्रित होकर के अपनी एक आचार संहिता बनाते थे आज का विज्ञान का भी ये विचार रहा है कि हम एक आचार संहिता बनाएँ। हम एक विज्ञान की आचार संहिता बना करके और मानव आदर्शवादी विज्ञान को बनाएँ। ऐसा विचारते रहते हैं, परन्तु ये जो राष्ट्रवाद है, नाना रूढ़ियाँ, ये नहीं होने देतीं।
मानो देखो, ये दूरी कर देती हैं। वह नाना प्रकार की रूढ़ियों से मानव को, राष्ट्र को उपराम होना है। मैं कई समय से कहता चला आ रहा हूँ, मेरा ये मन्तव्य रहता है कि मेरे हृदय में वह कल्पना बनी रहती है। क्या मैं इस संसार को इस राष्ट्रवाद को मानो

देखो, वही ऋषि मुनियों की यहाँ जैमिनी जैसे महापुरुष, जहाँ मानो देखो, यहाँ गौतम जैसे महापुरूष मानो अपने वेदो की लेखनियाँ बद्ध कर रहे है एक एक सूत्र पर एक एक पोथी का निर्माण हो रहा है।

वेद का एक मन्त्र है उसी मन्त्र के ऊपर एक पोथी का निर्माण है। कहीं कणाद लेखनीबद्ध कर रहा है, कहीं गौतम कर रहा है, कहीं जैमिनी कर रहा है, कहीं व्यास कर रहा है, कहीं मानो देखो, नाना ऋषि गौतम इत्यादि अपने में मानो लेखनीयाँबद्ध कर रहे हैं और वैज्ञानिक अपनी लेखनियों को बद्ध करके विज्ञान के युग में प्रवेश कर रहे हैं।

आज जब मैं विचारता रहता हूँ, मैं जब ये आधुनिक जगत् के विज्ञान का आदेश लेता हूँ, तो मैं दूर चला जाता हूँ, राष्ट्र को लेता हूँ तो दूरी चला जाता हूँ। तो इसीलिए मेरा तो एक ही कथन है, मैं विशेष चर्चा को प्रगट नहीं करूँगा। मानो देखो, राजा के राष्ट्र में राजा वो गऊओं की रक्षा करता है, जो जिसका आत्मविश्वास हो जाएगा जो गऊओं की, नन्दिनी की महाराज दिलीप की भांति मानो देखो, उनकी सेवा कर सकता है, जो निर्भय हो जाता है, जिसका आत्मबल देखो, बल ही पर रह जाता है।

और जब आत्मबल नहीं रहता। यह विचार रहता है राजा के अन्तर्हृदय में तू वहाँ चला जाएगा, तो तेरी मृत्यु हो जाएगी, वहाँ चला गया, तेरी मृत्यु हो जाएगी। अरे, भोले प्राणी, शरीर के विच्छेदों से तुम क्यों इतने, मानो देखो, तुम कितने त्रास क्या हो रहे हो, इस शरीर का निर्माण हुआ है तो इसका विच्छेद भी होना है। ये अपने विचार में आत्मविश्वास बना करके और यहाँ योग की प्रतिभा को लेकर के चलो। तुम्हारा ब्रह्मचर्य जब तुम्हारा गतिशील और विशेष होता है।

यह ब्रह्मचर्य जो ब्रह्म से उसका तारतम्य बना रहता है, समाज का निष्पक्ष होकर के क्रियाकलाप रहता है मानो देखो, और मृत्यु का, अन्धकार का उसे भय नहीं रहता। अन्धकारी प्राणी को होता है, इसके द्वारा ब्रह्मचर्य की हीनता हो जाती है, जिसके द्वारा ब्रह्मचर्यता भी नहीं रह पाती। मानो देखो, वह सदैव मृत्यु के अप्रिय अन्धकार में चला जाता है। अन्धकारी राजा नहीं होना चाहिए।

मानो ब्रह्मवेत्ताओं को अन्धकारी राजा को, सदैव समय समय पर अपनी घोषणा करनी

चाहिए। अपना घोष देना चाहिए। राजन्, तू मृत्यु से भयभीत न हो, यह मृत्यु तो तेरा आभूषण है, मृत्यु मानो तेरा अन्धकार है, इस अभाव को अपने से अभागे माना तू इसको अपने में नष्ट करता हुआ, तू उस चेतना को लाने का प्रयास कर जहाँ तू मानो देखो, गऊओं और पशुओं की, मानो सर्पराज, मछली से लेकर के और तू मानो देखो, गऊओं तक मानवतव की रक्षा करने वाला होगा तो तुझे ब्रह्म ही ब्रह्म दृष्टिपात आने लगेगा परन्तु देखो, रहा यह वाक्, आज का मानव यह कहता है कि क्या राष्ट्र में मानो देखो, कैसे क्रियाकलाप बने? परन्तु मैं यह कहता हूँ आत्मविश्वास हो, आत्मविश्वास से ये क्रिया बनेगी, आत्मविश्वास से आत्म वैज्ञानिक उत्पन्न होंगे, आत्मविश्वास से मानो देखो, यहाँ वैज्ञानिकों का जन्म होगा और वैज्ञानिक कौन होता है? परन्तु वैज्ञानिक जो वायुमण्डल में से तत्त्वों को एकत्रित करके मानो देखो, यन्त्रों का निर्माण करता है मानो पृथ्वी के खनिजों को न नष्ट करने वाला विज्ञान को ऊर्ध्वागति में नही जाता है। वह विज्ञान ऊँचा होता है जो देखो, को अग्नि के पोषक तत्त्वों से लेकर के वायुमण्डल में से मानो परमाणुओं को एकत्रित करके उसके यन्त्रों का निर्माण करता है और वह मानो वाहन गति करता रहता है। इस प्रकार मैंने बहुत पुरातन काल में, अपने पूज्यपाद गुरुदेव को निर्णय देते हुए कहा है, आत्मविश्वास की, आत्मतत्व की, ब्रह्मज्ञान की आवश्यकता है। मानो देखो, जो दूसरों के श्रृङ्गार को हनन करके, अपने उदर की पूर्ति करना चाहता है वह आत्मविश्वासी नहीं बन सकता।

जब मैंने बहुत पुरातन काल में ये वाक् कहा था। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा जब कई समय मानो देखो, राष्ट्र में पहुँचा, मैं एक समय महाराजा अश्वपति गन्धर्व के देखो, राष्ट्र में पहुँचा, पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा तो मानो देखो, जब वहाँ यह वाक् आया, कि महाराजा आए हैं तो भगवन! मेरे आसन को पवित्र कीजिए, कुछ पान कीजिए जिससे मेरा गृह पवित्र बन जाए।

तो पूज्यपाद गुरुदेव ने और एक बटुक ऋषि से जब उन्होंने कहा तो उत्तर दिया राजन्! तेरे राष्ट्र का अन्न गृहण नहीं करेंगें, क्योंकि राष्ट्र का जो अन्न होता है वह दूषित होता है, हमारी बुद्धि भ्रष्ट हो जाएगी है। परन्तु देखो, जब इस प्रकार यह कहा तो राजा और

उनकी पत्नी ने ऋषि के चरणों को ओत प्रोत हो करके यह कहा कि प्रभु! आओ भगवन! हम स्वयं कला, कौशल करते हैं हम स्वयं मानो कृषि उद्यम करते है। उस के बदले जो वसुन्धरा में जो अन्न देती है उसको पान करते हैं और राष्ट्र का हम क्रियाकलाप करते हैं। मेरे प्यारे! देखो, मुझे ऐसा स्मरण है कि आज भी हम उस राष्ट्र सभा में विद्यमान हो, तो पूज्यपाद गुरुदेव त्यागियों ने, ऋषि मुनियों ने स्थान ग्रहण किया और ग्रहण करके वह प्रसन्नता को प्राप्त हो गए। आधुनिक काल का जो ऋषि मण्डल बना हुआ है उसकी मैं आचार संहिता और ही जगत में ले जाँऊगा।

परन्तु आधुनिक काल के साधु समाज से यदि कोई राष्ट्र अन्न को दे देता है, तो बड़ा प्रसन्न होता है, अरे, ये साधु महात्मा तो बड़ा महान है। इनके तो राजा भी स्वागत करते हैं, नेता जन भी स्वागत करते हैं। परन्तु देखो, वह महापुरुष परन्तु जो राजा को यह कहता है कि मैं तेरे राष्ट्र का अन्न ग्रहण नहीं करूँगा, वह महापुरुष है। परन्तु जो यह कहता है इसकी सेवा तो मानो नेता कर रहे हैं, अरे, नेता के रूप को जो नहीं जानता वे दोनों ही काठ की नौका में विद्यमान हो रहे हैं। इसीलिए मानो देखो, यह ब्रह्मज्ञान का ह्रास मैं आधुनिक काल में दृष्टिपात कर रहा हूँ। इसीलिए ये रूढ़ियाँ बनती चली जा रही हैं। मानो देखो, यदि राजा यह विचारे कि इस साधु में कौन से गुण हैं, इस साधु में मानो कौन से गुण है यह कितना प्रीति कर रहा है, किस भोग में लगा हुआ है। तो इसी देखो, साधु समाज, ऋषि समाज जब पवित्र बन जाएगा तो मानो देखो, राष्ट्र राष्ट्र में ब्रह्मज्ञान की प्रतिभा का जन्म हो जाएगा।

आज मैं देखो, विशेष चर्चा न देता हुआ, इन रूढ़ियों के प्रति तो मेरा अन्तर्हृदय यह कहता है कि राजा को चाहिए इन रूढ़ियों को, सब को समाप्त कर देना चाहिए। एक केवल देखो, वेद का ज्ञान प्रकाश रहना चाहिए। जिस प्रकाश की पतिका के नीचे आ करके सूर्योदय होता है, मानो सूर्य उदय होता है विचार उदय होता है जहाँ मानो देखो, आकार और विद्या की प्रतिभा का जन्म होकर के ब्रह्मचरिष्यामि बनता है। तो आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ केवल यह विचार देने आया हूँ, पूज्यपाद गुरुदेव को यह विचार देने आया हूँ, क्या मानो देखो, मैं उच्चारण कर रहा था, राजा प्रजापति के द्वारा

ऋषि मुनि मानो देखो, उनके चरणों की वन्दना की, उन्होंने कुछ आहार किया और उपदेश देकर के ऋषि कहते थे कि हे राजन्! हम इसीलिए आए हैं कि जहाँ अन्न ग्रहण किया है इस अन्न के बदले तुम्हें कुछ दे जाएँ और देना यह है क्या तुम्हारी आचार संहिता पवित्र होनी चाहिए, तुम्हारा मानव क्रियाकलाप ऊँचा हो, जिससे तुम्हारा अनुसरण करने वाली प्रजा मानो देखो, प्रजा महान बनकर के, तुम्हारे जीवन को ऊँचा बना सके।

आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से ये परिचय देने के लिए आया हूँ, क्या समाज ऊँचा को बनाना है तो मानो देखो, राष्ट्र को ऊँचा बनाना होगा, हिंसा में अहिंसा को विचारना होगा और मानव को ब्रह्मज्ञान की प्रतिभा में रत्त होकर मानो निस्वार्थ होकर के, क्रियाकलाप करना होगा। निस्वार्थ राजा बन जाए, निस्वार्थ मानो देखो, साधना करने वाला साधु बन जाए, कोई भी बन जाए, वही समाज को कुछ न कुछ दे करके अपने जीवन में चला जाता है और जिसकी आचार संहिता पवित्र नहीं है, मानो देखो, वे किसी भी आश्रम में हो, वो अपने आश्रम में, अपनेपन में ही मानो देखो, निस्वार्थ नहीं है, तो वे स्वार्थवाद में परिणत हो रहा है। ऐसे समाज मानव गढ़े और गधेले में परिणत हो करके, नष्ट हो जाता है।

तो आज का विचार विनिमय यह, मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाँऊगा कि प्रभु! मुझे तो इसमें इन दो शब्दों की विवेचना देनी है। मैं यह उच्चारण कर रहा था जिस भूमि पर हमारी आकाशवाणी जा रही है, यह भूमि मानो कहीं महाराजा द्रोणाचार्य की विज्ञानशाला रही है, यहाँ वैज्ञानिक मन्थन करते थे और यहाँ मध्यकाल में रूढ़िवादियों ने आ करके अपनी मानो देखो, धृष्टता यहाँ की। यहाँ मेरी पुत्रियों के श्रृंगारों को नष्ट भी किया है परन्तु देखो, वह भी रही, आज मानव पुनः से देखो, वही परमाणु उलट करके आ करके, मानो पुनः से वेदों का पठन पाठन हो रहा है। मेरा अन्तर्हृदय प्रसन्न हो रहा है, यज्ञमान के लिए मैं सदैव ये कामना करता रहता हूँ, जीवन के सौभाग्य अखण्ड बना रहे, पवित्रता की वेदी का प्रसार होता रहे। इसके पश्चात् अब मैं अपने

पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाँऊगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अपनी वेदनामयी कुछ चर्चाएँ कीं। परन्तु वह वेदना ही है ये विचार तो बड़े भव्य, पवित्र हैं और हमारी शेष चर्चाएँ कल प्रगट होंगी। आज का यह वाक् समाप्त होने जा रहा है, शेष चर्चाएँ कल प्रगट होंगी और वेद का पठन पाठन। बरनावा यज्ञ समय दोपहर 3 बजे।

१६ 28 02 1985 पुष्प 48 राजा दिलीप का पुत्रेष्टि याग

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे हैं ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परगतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव, परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है, क्योंकि वे परमपिता परमात्मा ममतव को धारण करने वाला है।

हमारे अन्तर्हृदय में वह सदैव विद्यमान रहते हैं, और उसकी भी मनोनीत अनुपम जो क्रियाएँ हैं, वह मानो चाहे इस पृथ्वी मण्डल में हों, चाहे मंगल और बुध और सूर्य मण्डल में क्यों न हों, परन्तु उसका जो क्रियाकलाप चल रहा है, अथवा उसमें जो क्रियाएँ रत्त हो रही हैं, वे उस महान मेरे देव की प्रतिभा कहलाती हैं। अथवा ये उसकी महानता का दिग्दर्शन हो रहा है, जिस महानता के दिग्दर्शन को ले करके, मानव परम्परागतों से ही, विचार विनिमय करता रहा है। नाना प्रकार की शालाएँ, नाना प्रकार का विचार मानव के समीप आता रहता है। और जितने भी दार्शनिक हुए हैं अथवा विज्ञानवेत्ता हुए हैं, वे सर्वत्र उस महान देव की प्रतिभा अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान को मानो चिन्तन में लाने का एक विषय बनाते रहते हैं। और उसके ऊपर मनन और चिन्तन होता रहता है।

मानो देखो, इससे पूर्व काल में मेरे प्यारे! महानन्द जी ने, अपने बहुत से विचारों को व्यक्त किया। मानो उन विचारों में राष्ट्रीयता और इनके हृदय की जो विडम्बना है, वो बड़ी विचित्रतव को धारण किए हुए थी, जिसके ऊपर मानो हमें भी आश्चर्य होता रहता

है, क्या मानव इतनी विडम्बना करता रहता है और मानव का विचार एक सूत्र में लाने का है और वह सूत्र मानो देखो, एक महान पवित्र और एक सूत्रमयी धारा कहलाती है, जिसको हम आचार कहते हैं, मानो उसी धारा को ले करके मानव अपने जीवन को उद्बुद्ध करता रहा है। जितना भी विज्ञान है अणु और परमाणुवाद है, जितना भी मानो विज्ञान है, वह मानव के हृदय में, मानव की धाराओं में मानव का एक चिन्तन का विषय बन करके रहा है।
जिसके ऊपर हम बेटा! परम्परागतों से एक महान विचार और चैतन्यवत् की हम प्रतिभा का दिग्दर्शन करते रहते हैं। तो मेरे प्यारे! देखो, इससे पूर्व काल में, हम मानो राजा की और धेनु की कुछ चर्चाएँ कर रहे थे और धेनु की और राजा की ये चर्चाएँ कीं। धेनु है, तो राष्ट्र है और राष्ट्र है तो धेनु है, दोनों का परस्पर मानो समन्वय रहता है, दोनों का एक साम्यवत् विचार रह करके एक दूसरे की सम्मति और एक दूसरे में पिरोया हुआ तारतम्य कहलाता है, तथा एक सूत्र कहलाता है। जिसके ऊपर मुनिवरों! देखो, परम्परागतों से ही, मानव, अपने में अन्वेषण करता रहा है, विचार विनिमय करता रहा है। मानो उसी सूत्र की चर्चाएँ, हमारे ऋषि मुनियों के क्षेत्रो में होती रही हैं।
इससे पूर्व काल में बेटा! हम मानो देखो, यहाँ वसुन्धरा, धेनु और नन्दिनी की चर्चाएँ करते रहे हैं। मानो राजा उस नन्दिनी की और धेनु की रक्षा करता रहा है। मेरे प्यारे! जब सर्वत्र राष्ट्र का भ्रमण करने के पश्चात् महाराजा दिलीप नन्दिनी को ले करके बेटा! अपने राष्ट्र के आए गए, मुनिवरों! बारह वर्ष का उन्होंने कठोर तप किया, बारह वर्ष मुनिवरों! नन्दिनी के साथ और ऋषि मुनियों का जो विचार और समन्वय होता रहा और आत्मा परमात्मा की चर्चाएँ, मोक्ष और अमोक्ष की चर्चाएँ भिन्न भिन्न प्रकार की चर्चाएँ बेटा! उन वाक्यों में उनके तपस्या काल में ऋषि मुनियों के समागम से प्राप्त हुई। परन्तु जैसे हम उन वाक्यों को पुनरूक्तियाँ देना चाहते हैं मानो वह सभा मुझे स्मरण है पुत्रों! जिस सभा में महर्षि वशिष्ठ और महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज विद्यमान थे। महर्षि विभाण्डक ने और महात्मा वशिष्ठ मुनि, महाराज विश्वामित्र नाना ऋषिवर बेटा! विद्यमान थे, परन्तु यह विचार गया कि जब महाराजा दिलीप का तपस्या का काल

समाप्त हो गया है मानो इनसे अब प्राप्त किया जाए कि ये क्या चाहते हैं? महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुणधती ने यह कहा कहो राजन्! आप तपस्या का काल पूर्ण हो गया, तुम चाहते क्या हो?
क्या इच्छा है तुम्हारी? तो मेरे प्यारे! महाराजा दिलीप जी ने यह कहा, प्रभु! ये जो हमारा वंशलज है, जिसमें महान् से महान् तपस्वी राजा हुए, राष्ट्र नायक हुए हैं। परन्तु उसके पश्चात् भी राष्ट्र का जो भविष्य है मुझे अन्धकारमय दृष्टिपात आता रहा है और वह अन्धकार कैसा है? मानो वह अन्धकार ऐसा है जो सहनीय नहीं है। मानो हम उसको सहन नहीं कर सकते। मेरे प्यारे! पुत्र का न होना राजा के यहाँ एक राष्ट्र का अन्धकार दृष्टिपात आ रहा था। तो मुनिवरों! देखो, महर्षि वशिष्ठ ने कहा, हे भगवन! हे राजन्! तुम ऋषियों के द्वारा पुत्र याग करो, पुत्रेष्टि याग करने से देवताओं का हृदय में वास, आत्मबल की विशिष्टताएँ, मानो तुम्हारा परमाणुवाद पुनः से जागरूक हो जाएगा। महाराजा दिलीप जी ने कहा कि प्रभु! मुझे बारह वर्ष हो गए हैं, मैं कामधेनु और नन्दिनी के गो दुग्ध और घृत से मैं याग कर रहा हूँ जिससे वायु मण्डल में पवित्रता आ जाती है। जिस सथली पर हम रहतें है मेरे प्यारे! देखो, महाराजा दिलीप जी के वाक् सब स्वीकार कर लिए। परन्तु पुनः भी ये ही प्रेरणा दी गई कि तुम पुत्रेष्टि याग करो। मेरे प्यारे! नाना प्रकार के उत्तम साकल्य को पान करना, महाराजा दिलीप जी प्रातःकालीन सूर्य जैसे मग्न होता है, प्रातःकाल में प्रकाश को ले के आता है मानो देखो, इसी प्रकार महाराजा दिलीप मानो सूर्य के साथ उदय होते ही स्वतः अन्तर्हृदय में यह मग्न हो रहे हैं, अन्तर्हृदय में कुछ वार्त्ताएँ उमड़ रही है जैसे सूर्य नाना प्रकार की प्रतिभा लेता है, नाना प्रकार का प्रकाश दे करके मानव के जनजीवन को पवित्र बनाता है, इसी प्रकार महाराजा दिलीप अपने मानवीय जनजीवन को ऊँचा बनाने के लिए मग्न हो रहे हैं।
हमारे ऋषि मुनियों ने यह कहा कि जो मानव साधना में रत्त रहना चाहता है वह प्रातःकालीन ढ़ाई घड़ी के लगभग अन्तर्हृदय में मग्न होता रहे अपने परमाणुवाद को वह बलिष्ठ और देखो, उल्लास देने वाला हो उल्लास देता रहे जिससे मानो उसका अन्तरात्मा

पुनः से पवित्रता की वेदी को अपनाने वाला हो।
सूर्य जैसे रात्रि को अपने गर्भ में धारण कर लेता है इसी प्रकार मेरे प्यारे! देखो, वह जो विज्ञानवेत्ता है वह जो महान् अपने अन्तर्हृदय को सूर्य से समन्वय कर रहा है, मेरे पुत्रों! वह मग्न और आनन्दता की धारा में मानो रत्त रहने के लिए तत्पर है।
मेरे प्यारे! देखो, वह सदैव महाराजा दिलीप जी अपने में आनन्दित होकर के अपने में प्रकाश की धारा को अपनाकर के मेरे पुत्रों! वह आनन्दमयी मग्नता की धारा को अपने में धारण कर रहे थे और उस धारणा का परिणाम यह हुआ महाराजा दिलीप ने पुत्रेष्टि याग की रचना की। मेरे पुत्रों! उसमें नाना ऋषिवर विद्यमान थे। महर्षि विभाण्डक और श्वेत्ताश्वतर भी विद्यमान थे, मेरे प्यारे! महर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्र विद्यमान हो करके मुनिवरों! देखो, पुत्रेष्टि याग की रचना की और पुत्रेष्टि याग में बेटा! संकल्प होता रहता था, मानो देखो, यज्ञमान अपने में प्रसन्न हो करके संकल्प करते हैं, होताजन अपने में संकल्प करते हैं।
वायुमण्डल को उसी प्रकार का बेटा! निर्माणित कर देते हैं और उसके पश्चात् याग का प्रारम्भ होता है। उसी याग में उसी याग में, उसी याग की अग्नि में तपा हुआ चरु मुनिवरों! देखो, यज्ञमान स्वतः पान करता है। मेरे प्यारे! देखो, पाण्डितव उद्गाता और अध्वर्यु भी उसी को पान करता है। मेरे प्यारे! यज्ञ में चरु को तपाया जाता है और उस चरु का पान किया जाता है। मानो परमाणुवाद की प्रतिभा का जन्म हो जाता है विचार विनिमय क्या? मेरे प्यारे! मुझे कुछ ऐसा स्मरण है क्या याग प्रारम्भ हुआ, संकल्पोमयी याग का प्रादुर्भाव हो गया।
मेरे प्यारे! देखो, जैसे राजा के यहाँ याग हो रहा था, तो कहीं से बेटा! भ्रमण करते हुए मेरे पुत्रों! देखो, भ्रमण करते हुए कहीं से महर्षि तोड़वत ऋषि महाराज भ्रमण करते बेटा! यज्ञशाला में आ में आ पहुँचे। तो तोड़वत ऋषि महाराज के समीप उनके बहुत से शिष्य भी विद्यमान थे। तोड़वत् ऋषि महाराज ने महाराज दिलीप से कहा, तुम क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा, मैं पुत्रेष्टि याग कर रहा हूँ।
उन्होंने कहा यागां भविते वायुमण्डलां ब्रीहि व्रतां तोड़वत् मानो देखो, ऋषि ने कहा। क्या

महाराज वायुमण्डल का निर्माण कर रहे हो। दिलीप जी ने कहा प्रभु! मेरे प्यारे! उन्होंने कहा तोड़वत् ऋषि महाराज ने कहा महाराज! ऐसा क्यों कर रहे हो? उन्होंने कहा मैं अपने राष्ट्र के लिए उन्नत् क्रियाकलाप कर रहा हूँ। मेरे प्यारे! देखो, मैं याग कर रहा हूँ, देवताओं को जो मेरे अन्तर्हृदय में यज्ञशाला में जो मानो देखो, देवता अपना क्रिया कलाप कर रहे है, उन देवताओं को मैं बलिष्ठ बनाना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा, वे देवता कौन हैं? तुम्हारे शरीर में? उन्होंने कहा, वह देवता मेरे शरीर में वायु, जल, अग्नि तेजस्तव को धारण करने वाले हैं।

मेरे प्यारे! उन्होंने कहा, बहुत प्रियतम, परन्तु ये जो तुहारा याग हो रहा है, मैं इसकी प्रतिभा को अब तक नहीं जान सका हूँ, राजन्! उन्होंने कहा, प्रभु! जानने का प्रयास कीजिए। मेरे प्यारे! देखो, वह अग्न्याध्यान हो रहा था, समिधा अपने में प्रकाश दे रही थी, समिधा के द्वारा ऋषि कहते हैं हे समिधा! मानो तू प्रदीप्त हो करके प्रकाश को दे रही है इसका क्या तात्पर्य है? उन्होंने कहा, मानव वही प्रकाश देता है, जैसे अग्नि अपने को तेज में अपने को उग्रता में परणित कर देती है और वे समिधा उद्बुद्ध हो करके प्रकाश बन कर के आती है, इसी प्रकार जो मानव अपनेपन की प्रतिभा को नष्ट कर देता है और अपने को नष्ट करके दूसरों को प्रकाशित कर रहा है।

वो दूसरो को प्रकाशित करता है तो मानो देखो, समिधा जैसे अपनेपन को समाप्त करके प्रकाश देती है, ऐसी ही प्रत्येक प्राणी मानो अपनी ममतव को त्यागकर के, अहम भाव को त्याग करके, वह स्वयं ही महान बनकर के परमात्मा को साक्षी बना करके मानो देखो, वे अपने को प्रकाश में और द्वितीय को प्रकाश में लाता है बेटा! बड़ी विचित्र बात ऋषि ने प्रगट की। ऋषि देखो, वह अग्नि ने कहा सम्भवा अग्नि समिधा वे समिधा के रूप में मेरे प्यारे! देखो, शब्दों की ध्वनियाँ वे ध्वनित हो रही हैं, जिस ध्वनि को मानव अपने में कल्पना करता रहता है। तो मेरे पुत्रों! वे मानव कल्पना कर रहा है, वे ध्वनियों में परणित हो करके, बेटा! याग और वह अध्वर्यु के द्वारा जाता है अध्वर्यु कहता है कि मानव को अपना हृदय याग में परणित कर देना चाहिए।

जैसे यज्ञमान, ने अपने हृदय को समावेश कर दिया, तो मुनिवरों! देखो, नाना साकल्य

चरु के द्वारा भ्रमण करते हुए, उसके ऊपर ऊँची कल्पना करते हुए वे त्यागा प्रवृत्ति में बेटा! अग्रणीय बन गए और अग्रणीय बनने का परिणाम यह हुआ कि हम मानवता की इस महानता में परणित हो के अपनी महानता को ऊँचा बनाने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। तो विचार क्या मुनिवरों! देखो, यागां भविते वामं मेरे पुत्रों! देखो, वह याग एक माह तक पुत्रेष्टि याग चलता रहा, न्यौदामयी मन्त्रों का उच्चारण होता रहा।

न्यौदा में मन्त्रों का उच्चारण होता रहा, उसको मेरे प्यारे! स्वाहा कह करके वायुमण्डल में परणित करना है, अपने स्वाहा के साथ मैं अपने में सुमति को धारण करना है, जिससे बेटा! देखो, उसका शारीरिक याग और आध्यात्मिक याग और मुनिवरों! देखो, क्रिया कलाप के महानता में परणित होता है। तो विचार विनिमय क्या? बेटा! मैं अपने विचारों को दूरी न ले जाँऊ, मेरे प्यारे! एक माह के पश्चात् वह याग पूर्ण हुआ।

जब पूर्ण होने लगा तो बेटा! पूर्णता को प्राप्त करने के पश्चात् अब मानो देखो, ब्रह्मा इत्यादि को दक्षिणा प्रदान की जाने लगी। जब दक्षिणा का समय आया तो मुनिवरों! देखो, गउओं को प्रदान करने लगे द्रव्य मुद्रा के साथ में परन्तु पुरोहित कहता है यज्ञमान से कहता है, हे यज्ञमान! मैं तेरी गउएँ और द्रव्य नहीं चाहता हूँ। मैं तेरी कामधेनु नन्दिनी को ऊर्ध्वा में चाहता हूँ। मानो जैसे महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराजा को कामधेनु इन्द्र से प्राप्त हुई, ऐसे ही हे राजन्! तुम्हें भी ये कामधेनु इन्द्र से प्राप्त हुई थी, देवताओं की सभा से, अब तुम मानो उसी को गो घृत के द्वारा याग कर रहे थे, दुग्ध के द्वारा आहार मानो याग कर रहे हो, याग के कर्मकाण्ड की प्रतिभा को एक महान बना रहे हो। तो मेरे प्यारे! देखो, मैं, राजन्! यह चाहता हूँ मैं द्रव्य मुद्रा नहीं चाहता। मैं यह चाहता हूँ कि तुम्हारा राष्ट्र पवित्र बना रहे और महापुरूषों की सेवा होती रहें और तुम्हारे गृह में सुन्दर पवित्र सुसज्जित सन्तान का जन्म हो।

मेरे प्यारे! देखो, जब राजलक्ष्मी उन्हें दक्षिणा प्रदान करने लगी तो मुद्रा तो देना ही था परन्तु देखो, उन्होंने कहा, प्रभु! मैं क्या दान देकर आपको दक्षिणा प्रदान करना चाहती हूँ, आप क्या चाहते हो तो महाराजा दिलीप के यहाँ राजलक्ष्मी ने कहा और ऋषि ने कहा हे देवो ब्रह्म माता! मेरे हृदय की यह कामना है क्या मैं तुम्हारे गर्भ से ऊँचे संतान

को चाहता हूँ। मानो जब पुरोहित ने यह कहा तो ऋषि मानो राजलक्ष्मी ने ऋषि से कहा हे प्रभु! ये कैसे हो सकता है? उन्होंने कहा कि भगवन! मुझे आप बल दीजिए शक्ति प्रदान कीजिए।

उन्होंने बेटा! उन्हें शक्ति प्रदान की, शक्ति क्या मानो उन्हें निष्ठा कराई, वेदमन्त्रों की ध्वनियों का मानो उद्गान गाने लगी, परिणाम यह हुआ बेटा! उन्होंने ये संकल्प कर लिया कि अपने गर्भ से ऊँचे सन्तान को जन्म अवश्य दूंगी। मेरे प्यारे! यह सदैव गायत्राणि और उसी समय से गायत्राणि छन्दों का पठन पाठन होने लगा मेरे प्यारे! मुझे कुछ ऐसा स्मरण है, क्या महाराजा दिलीप की जो पत्नी सुलक्षणा थी वे मानो सदैव वेदो की ध्वनि में रत्त रहती थीं और राजा दिलीप जी भी मानो इसी में रत्त रहते थे। ब्रह्मचरिष्यामि का पालन करते रहते थे। प्रत्येक मानव के हृदय में ये कामना बनी रहती है कि मैं ब्रह्मचरिष्यामि बनना चाहता हूँ। तो बेटा! ब्रह्मचरिष्यामि या तो विद्यालयों में बना करता है, ब्रह्मचारी देखो, या मानो यौगिक प्रतिक्रियाओं में रत्त रह करके अपने संकल्प मात्र से ऊँचा बनता है।

तो मेरे प्यारे! महाराजा दिलीप जी तो अपने में ब्रह्मचारी और तपस्वी तपश्चर कहलाते थे। उनकी पत्नी सुलक्षणा भी मानो तपश्चर कहलाती थीं, जिसके ऊपर मुनिवरों! देखो, उनका महान प्रतिक्रियाएँ व क्रियाएँ उनके जीवन की धाराओं का जीवन मानो देखो, उद्बुद्ध होने जा रहा था। तो परिणाम क्या मानो जैसा सम्भवी मानो देखो, राजा दिलीप प्रातःकालीन गऊओं की सेवा करते थे, गउओं की सेवा करके, उसके दुग्धाहार करते हुए मानो देखो, अपने जीवन का पालन और सुलक्षणा बेटा! स्वयं कलाकौशल करती हुई मेरे प्यारे! देखो, उस अन्न को ग्रहण करती रहतीं।

राजा दिलीप और वे दोनों कृषि उद्यम करते, उस अन्न को पान करते, तपस्या में जीवन को व्यतीत करना, ये राजा का कर्तव्य है। मेरे प्यारे! महानन्द जी ने इससे पूर्व काल में, मुझे यह वर्णन कराया था क्या मानो देखो, रूढ़ियाँ समाप्त होनी चाहिए। मैं तो इतना रूढ़ियों को जानता नहीं। महानन्द जी विशेष जानते है परन्तु देखो, धर्म और मानवता को अपना करके मानव को अपने जीवन को व्यतीत करना चाहिए। राजा वह

चाहता है कि मेरा राष्ट्र पवित्र बने, तो राजा स्वतः पवित्र बनना राजा को होगा। महाराजा दिलीप के काल में बेटा! दृष्टिपात किया। कोई राजा के राष्ट्र में हिंसक प्राणी नहीं था। मानो हिंसा में सदैव अहिंसा परमोधर्मः को अपनाने वाला था, ऋषि मुनि उद्गान गाते रहते थे, तो सिंहराज और सर्पराज भी मानो देखो, मौन प्रवृत्तियों को अपनाने वाले थे। मृगराज अपने में महान रहता था परन्तु अपना अपना क्रियाकलाप चलता रहता, राजा के राष्ट्र में। तो बेटा! वह काल मुझे जब स्मरण आता है तो अन्तर्हृदय गद् गद् हो जाता है।

मैं अपने प्रभु से यही कहता रहता हूँ, हे प्रभु! राष्ट्र को कितना आत्मविश्वासी होना चाहिए। महाराजा दिलीप मानो देखो, रात्रि समय अपनी प्रजा के द्वार द्वार पर भ्रमण करते रहते थे कि कोई मेरे राष्ट्र में दुखी तो नहीं है, अन्न से पीड़ित तो नहीं है जैसा मेरे पुत्र महानन्द जी ने कहा था। जिस राजा के राष्ट्र में देखो, अपने अपने मानवतव को द्रव्य के बदले दे करके उदर की पूर्ति करता है वह कोई राष्ट्र नहीं हुआ करता है। मानो देखो, महाराजा दिलीप जी ने सदैव अपने राष्ट्र में नन्दिनी को साथ ले करके भ्रमण करते रहते थे। मेरे प्यारे! गृह गृह में प्रातःकालीन वेदज्ञ ध्वनि हो रही है, याग हो रहे हैं, मानो देखो, वहां एक दूसरे के ऋणी, कोई राजा के राष्ट्र में जहाँ मानो देखो, राजा प्रजा का ऋणी है और प्रजा राजा का ऋणी है, बेटा! देखो, वो प्रजा राजा दोनों न होने के तुल्य कहलाते है।

मेरे पुत्रों! मैंने बहुत पुरातन काल में क्या महानन्द जी के शब्दों को कल मैंने इससे पूर्वकाल में हमने श्रवण किया तो मुझे इसके नीचे हृदय की विडम्बना, हमारे हृदय की तो कोई विडम्बना नहीं है, मानो देखो, राजा रावण का ऐसा काल था जो राजा रावण भी मानो प्रजा को सुखद दृष्टिपात करना चाहता था।

परन्तु देखो, राम के काल में भी नित्यप्रति याग होते थे। मुनिवरों! देखो, राजा का राष्ट्र तो उस काल में, जैसा महानन्द जी ने पूर्वकाल में प्रगट किया, राजा का राष्ट्र उस काल में पवित्र होता है जब राजा मानो एक माह में लगभग चार दिवस ब्रह्मवेत्ताओं के द्वारा अपने जीवन को व्यतीत करता हो, और ऋषि मुनि जो तपस्वी होते हैं, ब्रह्मज्ञानी

होते हैं, उनसे ब्रह्मज्ञान को ले करके देखो, राजा अपने राष्ट्र का पालन करता है, वह राजा पवित्र होता है, उस राजा के राष्ट्र में हिंसा नहीं होती मानव धर्म एकोकी वचन कहलाता है। जिन राजा के राष्ट्र में गोधेनु मानो तपाए जाते हैं, गो धेनु कौन हैं? विचार आता है प्रत्येक मानव की जो इन्द्रियाँ हैं, ये गो कहलाती हैं, ये तपी होती है, विद्यालयों में, तो विद्यालय महान् है। मुझे स्मरण आता रहता है। जिस समय महाराजा उद्दालक मुनि महाराज मानो अपने विद्यालय में शिक्षा ब्रह्मचारियों को देते थे, तो एक समय महर्षि गौतम भ्रमण करते हुए तो तुर्वेत्तम राजा के यहाँ जा करके उन्होंने अन्न ग्रहण कर लिया और तुर्वेत्तम राजा ने मानो अपना एक याग किया था और उन्होंने राष्ट्र कोष स्वयं ब्रह्मभोज किया और भोज में उन्होंने अन्न ग्रहण किया, उसमें कुछ दूषित, अन्न की प्रतिभा का जन्म था, अन्न की प्रतिभा थी।

क्या बेटा! मुझे स्मरण है तो महाराजा गौतम जैसे अन्न ग्रहण करके आये, मध्य रात्रि में उनकी बुद्धि भ्रमित हो गई और जब भ्रमित हो गई तो ब्रह्मज्ञान आने से नहीं आ रहा था। मेरे प्यारे! जो तमोगुण की प्रवृत्ति थी वह बलवती बन गई, तमोगुण की प्रवृत्ति ने सतोगुण और रजोगुण दोनों को अपने में समावेश कर लिया, अब महर्षि गौतम मुनि महाराज बेटा! देखो, प्रातःकालीन हुआ।

प्रातःकालीन जब याग प्रारम्भ हुआ तो उनके यहाँ वशिष्ठ ब्रह्मचारी सत्यकाम ने जब प्रातः कालीन याग का प्रारम्भ किया और पूज्यपाद गुरुदेव को कहा आईए भगवन! कुछ ब्रह्मचारियों को उपदेश कीजिए। गौतम ने कहा कि मेरे हृदय में नहीं आ रहा है ब्रह्मचारी! मैं क्या करूँ? ऐसा कहा जाता है, मुनिवरों! देखो, सत्यकाम ने समाधिष्ट हो करके गुरु के अन्तःकरण को, अपने अन्तर्हृदय से मिलान किया, गुरु के अन्तःचित्त के मण्डल को अन्तःकरण को अपने अन्तःकरण दोनों को जब मिलान किया तो गुरु का अन्तःकरण अन्तर्हृदय मानो दूषित अन्न के प्रवाह से मानो देखो, अशुद्ध तरंगों का जन्म हो रहा था, अशुद्ध तरंगो का जब जन्म हो रहा था, तो मुनिवरों! देखो, महर्षि आचार्य गौतम से कहा कि प्रभु! आपके हृदय में तो अशुद्ध धाराओं का जन्म हो रहा है, आपकी

बुद्धि भ्रमित हो गई है भगवन!

गौतम ने कहा, सत्यकाम! यथार्थ कहते हैं। भगवन! अब क्या किया जाए? तो महात्मा गौतम ने मेरे प्यारे! बारह वर्ष का उस तप का पुनः लाने के लिए बेटा! बारह वर्ष का अनुष्ठान किया और वह बारह वर्ष का कैसा अनुष्ठान? मानो जल को पान करना है और वायुमण्डल से शीतली खेचरी मुद्रा में मानो प्राणायाम करने से उस वायु में से पोषक तत्त्व को लेना है। बारह वर्ष का उन्होंने तप किया और तप करने के पश्चात् बेटा! देखो, पुनः उनके द्वारा वह तपस्या की प्रतिभा, वह मानो देखो, ब्रह्मज्ञान पुनः मानो उन्हें प्राप्त हुआ।

तो बेटा! वे राजा के यहाँ पहुँचे। बारह वर्ष के पश्चात् और राजा से कहा हे राजन्! तेरा राष्ट्र पवित्र नहीं है, तेरे यहाँ राष्ट्र कोष में जो अन्न आता है, वह दूषित है। मानो तुम अपने अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाओ। मानो देखो, उनके यहाँ चार दिवस वायु का सेवन करते और राजा को ब्रह्मज्ञान देते राजा ब्रह्म ज्ञान में रत्त हो करके मानो देखो, वह स्वतः प्रजा में अपने में एक दूसरे के ऋणों से उऋण होने का प्रयास करते रहे।

तो मेरे पुत्रों! मुझे कुछ ऐसा स्मरण है क्या मानो देखो, इसी प्रकार यदि राजा को ऊँचा बनना है। मेरे प्यारे! महानन्द जी ने मुझे कल बहुत ऊर्ध्वा में आचार संहिता के सम्बन्ध में चर्चा की। आचार्य उस काल में ऊँचा बनता है गौतम की भांति वह मानो अनुष्ठान करता है, तो उसका अनुसरण करने वाला ब्रह्मचारी बना करता है। ब्रह्मचारी कैसे ऊँचा बनता है विद्यालयों में? मेरे पुत्र महानन्द जी ने कल एक बात बहुत प्रिय कही मुझे लग रहा था कि आचार्यों की विद्यालयों में आचार संहिता होनी चाहिए। जो आचार्य क्रोध में तल्लीन होता है, क्रोध के पश्चात् उसे मोह की प्रतिभा का जन्म होता है, तो उसके विद्यालय में ब्रह्मचारी मानो एक रस वाला ब्रह्मचारी का निर्माण नहीं हो सकता। एक रस वाला वहाँ होता है जहाँ आचार्य अपने हृदय से तपस्या करता है, अनुष्ठान करता है, प्राणायाम करता है, अन्न का शोधन करता है, प्राणायाम से मानो वायु पोषक तत्त्वों से अपने जीवन की धारा का वो मानो देखो, पालन कर रहा है, तो

ब्रह्मचारी उसका अनुष्ठान करता है।
वह ब्रह्मचारी विद्यालय से निकल करके, राष्ट्र में भी जाएगा तो अपने ब्रह्मज्ञान की प्रतिभा का प्रकाश देता रहेगा आधुनिक काल में जैसा मेरे पुत्र ने मुझे वर्णन कराया, आधुनिक काल में मेरे पुत्र ने वर्तमान के ब्रह्मचारियों की व्याख्या यही की है क्या ब्रह्मचरिष्यामि को मानो दमन करके ब्रह्मचरिष्यामि को नहीं लाया जा सकता। ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मचारिष्यामि वही बनता है जो ज्ञान के द्वारा जिसका शोधन होता है और जिसका मानो केवल भय से शोधन करना चाहता है, उसका शोधन नहीं होता। भय की प्रतिभा का विनाश होते ही मानो देखो, वे पुनः निर्लज्ञता में परणित हो जाता है। मानो देखो, वह भी तपस्या नहीं कहलाती, तपस्या वह है जो ज्ञान के द्वारा ब्रह्मचरिष्यामि ब्रह्मचारी बनता है, जाप के द्वारा राष्ट्र अपने राष्ट्र का कर्त्तव्य का पालन करता है, प्रजा के त्रास से नहीं। अपने अन्तर्हृदय के त्रास से जो राजा राष्ट्र का पालन करता है, वह राष्ट्र पवित्र बन करके रहता है और जो प्रजा की मानो देखो, भयभीतता से या मानो लोकाचार से रहता है वह पवित्र नहीं होता।
मेरे प्यारे! मैंने बहुत पुरातन काल में बेटा! मुझे एक सौ एक वर्षों तक महाराजा अश्वपति के यहाँ बेटा! अध्यापन का मानो सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मैंने ब्रह्मचारियों को दृष्टिपात किया। ब्रह्मचारी विद्यालय से जा रहा है उसके पीछे पीछे आगे प्रकाश जा रहा है, आ रहा है ब्रह्मचारी आ रहा है ब्रह्मवेत्ता। परन्तु देखो, जिस प्रकार की ध्वनियाँ होती रहती हैं, वो राष्ट्र व समाज वह ब्रह्मचारी मानो देखो, राष्ट्र की सम्पदा बन करके राष्ट्र समाज को ऊँचा बना करके रहता है।
मानो देखो, आज मैं विशेष चर्चाएँ देने नहीं आया हूँ। विचार ये दे रहा था कि महाराजा! दिलीप के यहाँ पुत्रेष्टि याग हुआ और पुत्रेष्टि याग हो करके, बेटा! देखो, उनकी पत्नी सुलक्षणा, मानो देखो, महाराजा दिलीप के यहाँ उस याग के प्रभाव से ब्रह्मज्ञान से नन्दिनी के अनुष्ठान से उसके गृह पुत्र का जन्म हुआ था, जिसका नामोकरण महाराजा रघु के नाम से उनका प्रतिपादन हुआ। महाराजा दिलीप के रघु हुआ था।
बेटा! देखो, मैं ये चर्चाएँ तो आज देना नहीं चाहता हूँ। विचार केवल हमारा यह है, कि

हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा, का गुणगान गाते हुए, बेटा! राजा के राष्ट्र में याग होने चाहिए, याग की सुगन्धि होनी चाहिए, वो विचारों की सुगन्धि हो वायुमण्डल में यागों की सुगन्धि हो, देखो, ध्वनि पवित्र होनी चाहिए और उसी के साथ गऊ की रक्षा होनी चाहिए।

मेरे प्यारे! महानन्द जी गो रक्षा के विचार देते रहते हैं, हम भी देते रहते हैं। किसी भी काल में ऐसा नहीं हुआ जहाँ गऊ की रक्षा न हो। गो चाहे इन्द्रिय रूप में हो, गो चाहे पशु रूप में हो? गो चाहे सूर्य की किरणों के रूप में हो, गो चाहे पृथ्वी बन करके रहे, इनकी सदैव रक्षा होती रहती है और देखो, ऐसा काल नहीं आया इसकी ध्वनियों में ध्वनित होने वाला समाज अपने में समर्थ नहीं हो पा रहा।

परन्तु आज का विचार विनिमय क्या? हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान करते हुए, सदैव अपने जीवन को नवीन बनाते रहें, क्योंकि विचारों में वृद्धपन नहीं हुआ करता है। सत्यता में हम सदैव सत्य ही रहता है मानो देखो, वृद्धपन नहीं हुआ करता है, वृद्धपन वहाँ आता है जहाँ मानो देखो, मानव की अन्तःकरण से मृत्यु हो जाती है। मेरे प्यारे! देखो, ये हमारा क्या कह रहा है? आज का विचार ये कह रहा है कि हमारा राष्ट्र मानो देखो, जहाँ विचारों में मानो इस प्रकार पवित्र हो आहारमय विज्ञान बहुत ऊर्ध्वा वाला होना चाहिए।

मैं इससे पूर्व कल समय मिलेगा तो हनुमान के विज्ञान की चर्चाएँ कल प्रगट करेंगे क्या हनुमान जी ने सूर्य को कैसे अपने मुखारबिंदु में निंगला और उन्होंने इस विद्या का कैसे प्रसार किया। ये चर्चाएँ मानो देखो, हम कल प्रगट करेंगे। आज का वाक् समाप्त होने जा रहा है।

मैंने ये वाक् पुनरूक्तियाँ भी की हैं, होती रहती है मानो देखो, अपने विचारों में विचारयुक्त हो करके अपने जीवन को महान बनाना ये हमारा कर्तव्य है। मानो देखो, आहार और व्यवहार जब तक पवित्र नहीं बनेगा जब तक रूढ़ियाँ महानन्द जी के कथनानुसार समाप्त नहीं होंगी और रूढ़ि समाप्त नहीं होगी तो राजा का राष्ट्र भी पवित्र नहीं बनेगा, क्योंकि वेद नाम प्रकाश का है और वेद का प्रकाश जब तक राजा के राष्ट्र में राजा के

गृह में उसके हृदय में ओत प्रोत नहीं हो जाता, तब तक राष्ट्र वेदी कदापि नहीं बन सकती।

तो ये आज का विचार अब समाप्त अब वेद का पठन पाठन होगा। इसके पश्चात् हमारा वाक् ये क्या कह रहा है क्या प्रत्येक गृह में याग होना चाहिए। यागों की चर्चा तो पुनः पुनः हम करते रहते हैं आज का वाक् अब समाप्त, वेदों का पठन पाठन। बरनावा यज्ञ समय दोकपहर 3 बजे, दिनांक 28 02 1985।

१७ 01 03 1985 पुष्प 48 महाराजा हनुमान जी ने सूर्य कैसे निगला?

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने, पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा वरणीय माने गए हैं।

जो भी मानव उसे अपना वरणीय बना लेता है अथवा उसे वर लेता है वो उसी को प्राप्त हो जाता है, तो इसीलिए प्रत्येक मानव को, उस परमपिता परमात्मा को अपना वरणीय स्वीकार कर लेना चाहिए, क्योंकि वह वरणीय महान् और पवित्र कहलाता है, जिसकी महानता का दिग्दर्शन मानवीतव के हृदयों में परणित रहता है और महापुरुषजन सूक्ष्म चिन्तन करते हुए उसे अपने अन्तर्हृदय में, मानो उसका दिग्दर्शन करते रहते हैं जो भी मानव साधना के क्षेत्र में परणित हो जाता है।

वो अन्तर्मुखी हो करके, वे शान्त मुद्रित हो करके उस परमपिता परमात्मा को अन्तर्हृदय में ध्यानावस्ति हो जाते हैं। तो इसीलिए वे परमपिता परमात्मा वरणीय माने गए हैं। जो भी मानव उसका वरण कर लेता है, उसी को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए हमारे ऋषि मुनि, उस परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार की उड़ानें उड़ते रहे हैं। और उनकी उड़ान बड़ी विचित्र रही है। कोई वैज्ञानिक बनकर के मानो उसको बाह्य जगत में मानो उसको दृष्टा और उसको अपने में दृष्टिपात, बाह्यजगत में कर रहा है।

जो अपने अन्तर्हृदय में और बाह्य जगत् दोनों को अपने में समावेश करना जानता है, मानो वह परमात्मा का दिग्दर्शन करता है, उस महान देव को अपने में दृष्टिपात करता रहता है। जिससे मेरे प्यारे! उस परमपिता परमात्मा की अनुपमता अथवा महानता का प्रायः दर्शन होता रहता है।

तो आज का हमारा वेदमन्त्र मानो हमें कुछ प्रेरित कर रहा है, हमें कुछ अपने में, अपनेपन का दिग्दर्शन करा रहा है, क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र में, बेटा! संसार का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है। जितना भी ज्ञान और विज्ञान वह प्रत्येक वेदमन्त्र में निहित हो करके बेटा! दृष्टिपात आता है। जब मैं उस परमपिता परमात्मा की महती और उसका आनन्दमयी ज्योति को अपने में धारण करने का मानो समावेश वेदमन्त्रों में दृष्टिपात अथवा उसकी निहितता का दर्शन करते हैं। तो वह काल स्मरण आने लगता है, जिस काल में बेटा! मानो अपने वेद की आभा और मन्त्र को लेकर के नाना प्रकार के यानों का निर्माण करते रहे हैं।

नाना प्रकार के विज्ञानमयी, धाराओं में, रत्त रहे हैं। हमारे यहाँ बहुत पुरातन काल हुआ, वह त्रेता का काल था, जिस काल में मुनिवरों! देखो, ऋषि मुनि अपने में विद्यमान हो करके, विज्ञान की उड़ानें उड़ते रहते, नाना प्रकार की आभा में रत्त रहते थे। मुझे एक समय प्यारे महानन्द जी ने ऐसा प्रगट कराया, उसका उत्तर तो प्राप्त हो गया, परन्तु वह वाक् बड़ा विचित्र मुझे दृष्टिपात हुआ कि मानव समाज कहता है क्या महाराजा हनुमान ने सूर्य को अपने मुखारबिन्दु में परणित कर लिया था और उसको निगल लिया था।

तो मेरे पुत्रों! यह निगला नहीं जाता, सूर्य मानो निगला नहीं जाता है उसकी विद्या को निगल लिया करते हैं। मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय महर्षि लोमश और महर्षि कागभुषुण्ड जी और महाराजा जामवन्त, मुनिवरों! देखो, महाराजा हनुमान, एक स्थली पर विद्यमान थे।

तो मुनिवरों! देखो, कागभुषुण्ड जी से एक प्रश्न किया गया। हनुमान जी बोले कि प्रभु! मैं सूर्य विद्या को निगलना चाहता हूँ, कैसे निगलूं? कागभुषुण्ड जी ने कहा कि तुम

विज्ञान के माध्यम से निगलना चाहते हो या योगाभ्यास के द्वारा, प्राणों के द्वारा निगलना चाहते हो। तो मेरे प्यारे! महाराजा हनुमान ने कहा कि मैं दोनों प्रकार से उसको निगलने की प्रतिक्रिया को जानना चाहता हूँ। तो महाराजा कागभुषुण्ड जी ने, महर्षि लोमश मुनि से कहा कि महाराज! इसका उत्तर दो। ये बाल्य युवा क्या कह रहा है? उन्होंने कहा प्रिय! वाक् तो यथार्थ है, परन्तु उत्तर आप ही दीजिए। महर्षि कागभुषुण्ड जी ने कहा क्या बाह्य जगत् में ये जो सूर्य है यह अदिति बन करके रहता है।

ये उदयन बन करके रहता है यह भास्कर बन करके रहता है, यह ऊर्श बन करके रहता है मानो सूर्य के नाना पर्यायवाची शब्द हमारे वैदिक साहित्य में आते रहते हैं। परन्तु भास्कर इसीलिए कहते हैं वह भासता रहता है, सदैव प्रकाश देता रहता है, उदयन इसीलिए कहते हैं क्योंकि वह उदय होता है, प्रकाश को ले करके उदय होता है, इसीलिए उदयन कहते हैं। वही सूर्य को अदिति कहते हैं क्योंकि अदिति बन करके यह ग्रहों की धारा को ले करके इस रात्रि को अपने में निगल जाता है।

मानो यही है जो मेरे प्यारे! देखो, सूर्य के भिन्न भिन्न बामन रूप धारण करके उस रात्रि को अपने गर्भ में धारण कर लेता है। तो ये जो सूर्य है इसको तुम निगलना चाहते हो, तो तुम सूर्य की किरणों के माध्यम से यन्त्रों का निर्माण करो। मेरे प्यारे! महाराजा हनुमान ने कहा, प्रभु! मेरी एक विज्ञानशाला है। मैं महाराजा गणेश जी हम दोनों समुद्र के तट पर मानो सूर्य के ऊपर हम अन्वेषण कर रहे हैं। परन्तु इसकी प्रतिक्रिया से आपसे और जानना चाहते हैं महर्षि कागभुषुण्ड जी बोले, मेरे विचार में तो हे हनुमान! तुम इस विद्या को निगलना चाहते हुए, इसके ऊपर तुम्हें अनुसन्धान करना होगा अथवा विचार करना होगा।

तो मेरे प्यारे! एक एक किरण को वह अपने में शोधन कर रहे थे। मेरे प्यारे! देखो, महाराजा हनुमान और गणेश जी दोनों ने बेटा! किसी काल में एक यन्त्र का निर्माण किया था, जो यन्त्र मुनिवरों! देखो, वह सूर्य की किरणों के साथ गति कर रहा है और सूर्य की परिक्रमा कर रहा है। मानो वही सूर्य विज्ञान में उसकी ऊर्ज्वा को ले करके मानो उससे ऊर्ज्वा ले करके मानो उससे विद्युत धाराओं को वह ग्रहण करते यन्त्रों में

लेते रहते, और मुनिवरों! देखो, उससे वह राष्ट्र का जीवन ऊँचा बनता। मानव समाज में प्रकाश आता रहता है।
तो मेरे प्यारे! देखो, महाराजा हनुमान के जीवन का मैंने दृष्टिपात किया कि उनका जीवन बड़ा विचित्र रहा है। मानो सूर्य की किरणों के साथ, एक समय यन्त्र में बेटा! वह गति कर रहे थे। गति करते हुए मानो देखो, वह सूर्य की ऊर्ज्वा से ही इस पृथ्वी मण्डल पर मानो देखो, गमन करना और देखो, ऊर्ध्वान करना, ऊर्ध्वा में ध्रुवा में दोनों में प्रायः गति करते रहते। तो मुनिवरों! देखो, मुझे ऐसा काल स्मरण है कि वह अपने यानों में विद्यमान हो करके बेटा! सूर्य की किरणों से यान गति करता था। सूर्य की किरणों से यान गति करके, वे कहीं चन्द्रमा की यात्रा में रत्त हो जाते थे। मानो देखो, कहीं वह बुधेश्वर की मानो देखो, और भी लोकों की यात्रा करने में तत्पर रहे।
मेरे पुत्रों! मुझे स्मरण है, कागभुषुण्ड जी से चर्चा हो रही है, कागभुषुण्ड जी यथोचित्त उनका उत्तर दे रहे हैं। कागभुषुण्डजी ने कहा कि तुम्हारा जीवन धन्य है। तो महाराजा हनुमान ने कहा प्रभु! मैं तरंगोवाद में जाना नहीं चाहता हूँ। मैं तरंगों से उपराम होना चाहता हूँ।
मेरा अन्तर्हृदय यह कहता है मुझे निर्णय कराइए, क्या हे प्रभु! मैं योगाभ्यास से मानो देखो, उसका चिन्तन कैसे कर सकता हूँ? मेरे प्यारे! देखो, वह महाराजा कागभुषुण्ड जी ने कहा कि प्रभु! हे राजप्रहे! हे राज विज्ञानाम्! हे हनुमान! जब यदि तुम योगाभ्यास से उसको पान करना चाहते हो, तो प्राणों का संचय करना होगा, प्राणों में खेचरी मुद्रा को लाना होगा और मुद्रा को ला करके मानो देखो, अपने अन्तर्हृदय में अपने आन्तरिक ब्रह्माण्ड में जाना होगा। और आन्तरिक ब्रह्माण्ड में जो बाह्य जगत् में ब्रह्माण्ड में जो क्रिया हो रही हैं उन्हीं क्रियाओं को जब योगी अपने अन्तर्मन अन्तरात्मा में दृष्टिपात करने लगता है, तो मानो वह महान और पवित्रतव प्राणों का अपने में सिञ्चन करता है।
क्योंकि जितना भी संसार का ज्ञान और विज्ञान है, वह मनों की धाराओं तक सीमित रहा है। जहाँ तक मन की उड़ान है, वहीं तक विज्ञान पञ्च महाभौतिक तत्त्वों में ज्ञान

अपने में निहित रहा है, अपने में रत्त होता रहा है। तो विचार आता रहता है कि अपने तक ही मानव को मानवीय मानो देखो, मन की आभा को जानना है। मन से जब प्राण का समावेश कराया जाता है मानो देखो, वह अपने में सुसज्ज्ति हो जाता है।

मुनिवरों! देखो, जो योगी मानो एक दूसरे प्राण को पूर्व प्राण में पिरोना जानता है अथवा उसको सूत्र बनाकर के सूत्रित करना चाहता है, मेरे पुत्रों! देखो, वह महान् योगेश्वर है और बाह्य आन्तरिक ब्रह्माण्ड दोनों का दिग्दर्शन करता है।

योगेश्वरों की चर्चाएँ एक समय मेरे पुत्रों! महर्षि श्वेत्ताश्वेतर अपने आसन पर विद्यमान हो करके बेटा! नाग प्राण को वह आदित्य में पिरोना चाहते थे, मानो देवदत में पिरोना चाहते थे देवदत और तो राजप्रहे दोनों का समावेश हो करके मुनिवरों! देखो, वह अपान में जब परणित हो गए, तो अपान में अपान को समान को में और समान को व्यान में, व्यान को उदान में और उदान को मुनिवरों! देखो, प्राण अपान का समावेश करके तो ब्रह्माण्ड में जो ये नाना प्रकार की निहारिका दृष्टिपात आती हैं। जितनी भी पृथ्वियाँ हैं मानो उन पृथ्वियों से जो सूर्य का क्रियाकलाप हो रहा है। उन किरणों को अपने में समावेश करने वाला योगेश्वर बन जाता है।

मेरे पुत्रों! जितना भी यह जगत् है मानो देखो, वह चित्त के मण्डल में विद्यमान है। चित्त के मण्डल में है और चित्त का मण्डल मानो मन के साथ है। मन का समावेश उदान प्राण के साथ है, उदान प्राण का सम्बन्ध मेरे प्यारे! मानो देखो, अन्तरात्मा में रहता है। अन्तरात्मा से रह करके, इनका सबका एक समावेश हो करके मेरे पुत्रों! देखो, इस ब्रह्माण्ड का खिलवाड़ बनाकर के, ब्रह्माण्ड को अपने में और अपने को ब्रह्माण्ड में दृष्टिपात करने लगते हैं। मेरे प्यारे! तो मुझे स्मरण आता रहता है मुझे बहुत पुरातन काल की वार्त्ताएँ, क्या मानो यह कागभुषुण्ड और लोमश जी से मैंने तुम्हें कई काल में चर्चाएँ की हैं।

मानो जब अनुष्ठान लोमश मुनि जी करते थे तो कागभुषुण्ड जी मानो कृतिका को जानते थे और जब मानो कागभुषुण्ड जी अनुष्ठान करते तो लोमश मुनि मानो देखो, इंगला पिंगला दोनों का एक दूसरे में समावेश मानो वृत्तियों में रमण करा करके उसमें वेद

विप्रतियों में परणित कराते रहते थे। तो विचार विनिमय क्या? मेरे प्यारे! देखो, कागभुषुण्ड जी ने कहा हे हनुमान! कि तुम योग के द्वारा मानो यदि उस महान् सूर्य को अपने में सिंचन करना चाहते हो, तो जानो कि देखो, दस प्राण कहलाते हैं प्राण, अपान, व्यान, उदान व समान और नाग, देवदत्त, धनञ्जय, कूर्म और कृक्कल। इन मानो देखो, नाग को देवदत्त में, देवदत्त को कृकल में, कृकल को स्वाति में और मुनिवरों! देखो, एक दूसरे के प्राणों को प्राण की समावेशता दृष्टिपात आती रहती है।

ये संकल्प शक्ति के द्वारा ये प्रतिक्रियाएँ होती रहती हैं परन्तु देखो, वह प्राण को अपान में, अपान को मुनिवरों! देखो, व्यान में व्यान को, समान में और समान को, उदान में उदान को, चित्त के मण्डल का एक दृश्य कहलाता है। उदान में तो चित्त मण्डल रहता है जहाँ जन्म जन्मांतरों के संस्कारों को बेटा! योगेश्वर अभ्यास करके मुनिवरों! देखो, जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों को वह अपने में दृष्टिपात करता रहता है। मेरे प्यारे! यह कैसा यह विचित्र जगत् है, यह मानो अपान और प्राण कैसा जगत् है।

मेरे पुत्रों! देखो, जब प्राण और अपान को योगेश्वर मानो अपनी विज्ञानशाला में सम्मिलान करता है, अणु और परमाणु का मिलान करने लगता है, तो मानो देखो, मुझे स्मरण आता रहता है, मैंने बहुत ये चर्चाएँ की हैं परन्तु दृष्टिपात भी किया गया है। एक समय बेटा! दण्डक वन में मानो एक ऋषि रहते थे, जिनका नाम विभाण्डक कहलाता था। महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज के मानो पुत्र एक और जिनके नाना ऋषिवर जिसमें मुनिवरों! देखो, महर्षि सोम और महर्षि पारेत्वर ऋषि भी उनके समीप रहते थे। मेरे प्यारे! एक समय वह अपने में अन्वेषण कर रहे थे। महर्षि विभाण्डक मुनि महाराजा अपने में एक दूसरे में समावेष्टा चाहते थे।

प्राण को मेरे प्यारे! देखो, चित्त के मण्डल में, चित्त के मण्डल को देखो, समष्टि में रत्त करना चाहते थे। जहाँ व्यष्टि और समष्टि का मानो समावेश होता है, वहीं तो मुनिवरों! देखो, योगी को इस ब्रह्माण्ड का दर्शन होता है। तो मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषिवर अपने में अन्वेषण, अनुसन्धान एक दूसरे में समावेश की चर्चाएँ होती हैं। तो प्रत्येक मानव को अपने में बेटा! महान् बनने की आवश्यकता है। प्रत्येक मानव को जीवन की धारा को

अपनाने की आवश्यकता है जिससे मानवीय जीवन एक पवित्रतम बनता चला जा रहा है।
तो आओ मेरे पुत्रों! मैं कहाँ चला गया हूँ। मैं गम्भीर विचारों में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार क्या मानो मैंने तुम्हें कई काल में चर्चाएँ की थी। मुनिवरों! देखो, जब संकल्प शक्ति के द्वारा मेरे पुत्रों! देखो, मानव ऊर्ध्वागति को प्राप्त होता है, इसीलिए मानव की संकल्प शक्ति में, एक महानता रहनी चाहिए। संकल्प शक्ति से ही मानव जीवन को ऊँचा बनाता है, संकल्प शक्ति से ही मुनिवरों! देखो, अपने में जगत् को समावेश कर लेता है। तो परिणाम क्या? मुनिवरों! देखो, वह जो समावेशता है, विचारो की महानता है, उन विचारों में मानव को रत्त रहना चाहिए। जिससे मानव का अन्तर्हृदय वैज्ञानिकता में परणित करता हुआ सूर्य की किरणों में रत्त रह करके मानो देखो, उसमें गति करने वाला हो। तो मैं आज विशेष चर्चाएँ न करता हुआ, विशेष वार्त्ता हम प्रगट नहीं करना चाहते। विचार यह देना चाहते हैं कि हमारे जीवन उस विज्ञान में रत्त रहे।
जब हनुमान जी से कागभुषुण्डजी ने ये चर्चाएँ कीं तो मेरे प्यारे! उन्होंने कहा प्रभु! आप अपना क्रियात्मक कुछ मानो अपना अनुभूति प्रगट कराइए जब मुनिवरों! देखो, हनुमान जी ने ये कहा तो कागभुषुण्डजी बोले कि हम अनुभव की बात क्या प्रगट करें, वह तो संसार के बहुत कुछ हैं, परन्तु उस अनुभव से हम उपरामता को प्राप्त होने जा रहे हैं। मेरे प्यारे! देखो, जब अनुभव की चर्चाएँ, जब काग भुषण्डजी ने की, काग भुषण्डजी ने यह कहा कि एक समय मैंने हनुमानजी अनुष्ठान किया था, और मैंने बारह वर्ष का अनुष्ठान किया।
बारह वर्ष में मैं मानो पत्र और पुष्पों की मानो उनका चूर्ण बना करके उसको मैं पान करता रहा, मानो एक एक वर्ष का अनुष्ठान करने से तो आत्मा बलवान् और बलिष्टता को प्राप्त हो गया। जब वह बलिष्टता को प्राप्त हो गया, तो इससे हमें प्रतीत हुआ कि हमें अपने जीवन में बलिष्टता को लाना है, पवित्रता को लाना है, जिसके लाने के पश्चात् मानव का जीवन पवित्र बनता है। अनुभूति आभा वाला हमारा जीवन बनता रहता है। तो मेरे प्यारे! विचार क्या? ऋषि ने कहा है कि मैंने एक समय अनुष्ठान अपान और

प्राण को दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास किया और प्रयास करके मानो उसमें ऊर्ध्वतव को प्राप्त हो गया।

मेरे प्यारे! देखो, वह उनके अनुभव लेकर के महाराजा हनुमान ने भी मानो जहाँ वह विज्ञान में परायण थे वहाँ ब्रह्मचरिष्यामि में भी परायण थे। वे ब्रह्मचर्य की ऊँची ऊँची उड़ानें उड़ते रहते थे। मेरे प्यारे! देखो, हनुमान के जीवन में एक घटना है कि उन्होंने एक सन्तान को जन्म दिया था। अपने जीवन में। मानो देखो, एक सन्तान थी जिस सन्तान को जन्म दिया मानो देखो, वह अप्रहोसम्भवा पातालंवृही ऊर्ज्वा। मेरे प्यारे! वह पातालपुरी में रहते थे। वह पातालपुरी में अपने जीवन को व्यतीत करते थे। मेरे प्यारे! देखो, वह हनुमान का एक ही पुत्र था, जिसे वह दीक्षा देने में लगे हुए थे, परणित होने की धाराओं में रत्त रहना उनका एक महान् विप्रहा पारा प्रही लोका वे महान् बनते चले गए।

तो विचार विनिमय क्या है मेरे पुत्रों! मैं यह विचार दे रहा हूँ कि मानव को अपनी मानवता और यौगिकता को अपने से दूरी नहीं जाने देना चाहिए। वे सदैव उसमें समावेश होती रहें। तो मुनिवरों! देखो, चित्त के मण्डल में जब वह दृष्टिपात करते थे तो उसे नाना कामधेनुएँ दृष्टिपात होने लगतीं।

मेरे प्यारे! देखो, यह जो ब्रह्माण्ड है, जगत् है, यह महानता वाला प्रियतम है, जिसको अपना करके मानव को सागर से पार होने का प्रयास करना चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, विज्ञान में अब जाना चाहता हूँ मुनिवरों! देखो, जब विद्यालयों में जब अन्वेषण करने वाला विज्ञान में रत्त होता है। मुनिवरों! देखो, महाराजा हनुमान एक मन्त्र को लेकर के चले चित्रं दधि ब्रह्मा वाचो रचितं यातुकं ब्रह्मा मेरे प्यारे! देखो, यह वाक् आता रहता है और यह वाक् कहता है कि मानव को अपनी मानवता को यदि ऊँचा बनाना है, पवित्रता को एक सूत्र में लाना है, महानता का दिग्दर्शन करना है, विचित्रता की धाराओं को अपने में लाने का प्रयास करना है, तो मेरे प्यारे! देखो, इनका जीवन इस सम्बन्ध में एक अग्रणीय है, वाचप बन करके रहा है जिसके ऊपर मानव अपने मानवता को

न्यौछावर कर देता है।
तो मेरे पुत्रों! मैं विचार यह दे रहा हूँ इन विचारों में हम चले जा रहें है। क्या मुनिवरों! वे नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण करते हैं, और निर्माण करके बेटा! हनुमान के द्वारा एक यन्त्र ऐसा था जिस यन्त्र में विद्यमान होकर के वे मानो देखो, चन्द्रमा के पृथ्वी के दोनों की आकर्षण शक्ति जहाँ मिलन करते हैं वहाँ अपने यन्त्र को स्थिर करते और स्थिर करके मानो देखो, वह यन्त्र उनका सूर्य की ऊर्ज्वा से गति करता है, सूर्य की ऊर्ज्वा में रत्त रहता है, मानो देखो, उनकी महानता का दिग्दर्शन अपने में महान् रहा है विचित्र रहा है। मेरे प्यारे! देखो, मैंने तुम्हें कई काल में प्रगट भी किया है क्या हम अपने जीवन में सदैव महान् की महानता को जानना चाहते हैं, जिसको जानकर के मानव को एक मानव का भास हो जाए, मानव की प्रतिभा उसके समीप आ जाए।
मेरे प्यारे! मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में क्या वह सूर्य की किरणों के द्वारा नाना प्रकार का अनुष्ठान करते रहे और उस अनुष्ठान का परिणाम यह हुआ कि वे मुनिवरों! जहाँ वह आध्यात्मिकवाद जहाँ वह भौतिकवाद दोनों में रत्त रहते थे, दोनों में सुगठित होकर के दोनों की धाराओं में प्रायः वह परणित रहे।
तो मुनिवरों! देखो, महाराज हनुमान के एक ही पुत्र था, मानो देखो, उसके पश्चात् वह ब्रह्मचरिष्यामि। ब्रह्मचारिष्यामि का अभिप्रायः क्या है? क्या जो मानो एक ही सूत्र में बेटा! अपने ब्रह्म को चरी में परणित कर देता है, वह ब्रह्मचारिष्यामि कहलाता है।
तो आओ मेरे पुत्रो! मैं विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ। मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ। परन्तु परिचय करने के लिए चला आता हूँ। मानव को अपने जीवन का परिचय दे देना चाहिए और वह परिचय क्या है? जिस परिचय को ले करके मुनिवरों! देखो, मानव विज्ञान में परणित हो जाता है, योग में प्रवेश कर जाता है। तो मुनिवरों! देखो, चित्त के मण्डल में और अपने वृत्तियों के मण्डल में भी अन्तर्द्वन्द्व रहता है, इन दोनों में अन्तर्द्वन्ता रहती है, परन्तु यह बड़ा आश्चर्य और वृत्तियों की विशेष मानो देखो, एक आभा में कहलाता है।
तो विचार विनिमय क्या? मेरे पुत्रों! देखो, हमें अपने जीवन को ऊँचा बनाना है। हे

माता! तुझे वेद वसुन्धरा के नामों से वर्णन करता रहता है। तू वसुन्धरा कहलाती है, हे माता वसुन्धरा! तू प्रायः हमारा कल्याण करने वाली है हम माता वसुन्धरा तेरे ही गर्भ में मानो देखो, हम सब यह दृष्टिपात होने वाला अनुपम जगत् है, मानो जगत् के ऊपर तुम विचारों और परमपिता परमात्मा की महती को जानते हुए अपने देव की महिमा का गुणगान गाना चाहिए। जिस आनन्दमयी गान गाने से मानव के हृदय में पवित्रता आती है। बेटा! गान एक पवित्रतम क्रियाकलाप है, मेरे प्यारे! देखो, भिन्न भिन्न रूपों में हमें वह दृष्टिपात आता रहता है, जिसको दृष्टिपात करने के पश्चात् जीवन एक महान् और पवित्र बन करके रहता है।

आओ मेरे प्यारे! अप्रत भू ब्रह्मा वाचो देवो ब्रह्म विष्णु वह सूर्य विष्णु कहलाता है, पालन करने वाला है, मानो देखो, पालना का अध्ययन मानव का समावेश हो जाता है। इसीलिए उसकी धारा को हमें जानना है। मेरे प्यारे! देखो, माता का, इसमें बड़ा सहयोग रहता है, ये वसुन्धरा है और वसुन्धरा के गर्भ में ये सर्व ब्रह्माण्ड विराजमान है। एक समय महाराजा हनुमान और गणेश जी ने एक यन्त्र का निर्माण किया, इसको स्वाति नक्षत्र, स्वाति वेदकेतु कहते हैं। स्वाति वेदकेतु क्या है मानो एक यन्त्र को उन्होंने जाना उस यन्त्र में मानो सर्वत्र अपने में विद्यमान हो करके उस यन्त्र के समीप जाना, उसकी आभा को जानना, उसकी मानवीयतव पर विचार विनिमय करना। तो मुनिवरों! देखो, यह बड़ा सुशोभनीय अपने में विषय बन जाता है। तो आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा तुम्हें देने नहीं आया हूँ।

मैं तुम्हें ये परिचय देने के लिए आया हूँ, कि मानव को अपने जीवन में महानता और पभु का परिचय देना चाहिए। वास्तव में प्रभु! का कोई परिचय दे नहीं पाता, क्योंकि प्रभु अनन्तता में रत्त रहने वाला है। मेरे प्यारे! देखो, वह एक आभा को अपने में धारण करके और जीवन को पवित्र बनाने में लगा हुआ रहता है। तो महाराज हनुमान के जीवन में ये नाना घटनाएँ, नाना विचार विनिमय होते रहे हैं। जिन विचारों को लेकर महाराजा हनुमान मानो इस संसार को निहारता रहा है। उन्होंने एक समय, बेटा! देखो, अपने यान का निर्माण किया। जिस यान को स्वावृषिका कहते हैं। वह यान को अमृत

करते हुए मेरे प्यारे! देखो, सूर्य की किरणों के साथ उस यान में विद्यमान होकर के वह गति किया करते थे।
उस गति का परिणाम यह होता शोभा करु सम्भवा लोकाम् सम्भवे रुद्रो भागां वाचन्नम् ब्रह्मलोकाम् वाचो सम्भवाः। मेरे प्यारे! हमें इन वाक्यों पर विचार विनिमय करना है, जिनके ऊपर हमारा जीवन, प्रायः ऊँचा बने, प्रायः हम धारा में रत्त रहने वाले हों। परन्तु देखो, विचार विनिमय क्या कह रहा है? कि हम परमपिता परमात्मा की प्रायः आराधना करते रहें, देव की महिमा का गुणगान गाया जाए। ये है बेटा! आज का वाक्, अप्रहो सम्भवा लोकां वाचन्नमं ब्रह्म ही का सम्प्रहे वाचां दधि ब्रह्म वाचो देवाः अपने यानों में विद्यमान होकर के वे मानो देखो, मंगल में, मंगल में क्या बुध में, बुद्ध में क्या मुनिवरों! देखो, चन्द्रमा में और चन्द्रमा से आगे बेटा! देखो, नाना लोकों में उड़ान उड़ना, उनका एक क्रियाकलाप बन गया था।
उनकी धाराएँ उनको अपने में बेटा! जहाँ वे परमाणुओं के ऊपर अन्वेषण करते, उसी के उपरांत में वह मुनिवरों! देखो, वह नाना प्रकार के विज्ञान, नाना प्रकार के विज्ञान में वह सदैव रत्त रहने वाले, नाना प्रकार के विज्ञान में रत्त रह करके मुनिवरों! देखो, अपने को ऊँचा बनाना जीवन की धाराओं को पवित्रता की वेदी पर ले जाना बेटा! ये भी मानव का कर्त्तव्य कहलाता है। महाराजा हनुमान की भांति मानो वह अपने में, बेटा! यन्त्रों में विद्यमान हो करके उड़ान उड़ता हुआ सूर्य की किरणों के साथ मंगल में चला गया, मंगल के कुछ वैज्ञानिकों से उनका मिलन हुआ और मिलन होकर के कुछ वार्त्ताएँ प्रगट हुईं, परन्तु देखो, वार्त्ताओं के प्रगट होने पर सम्भूति वाचन्नमं ब्रह्मा वे सम्भूति और रुद्रकेतु नामक अपने जीवन को नामोकरण की धाराओं में रत्त रहकर के महानता का दिग्दर्शन होता रहा है। तो विचार विनिमय क्या? मेरे प्यारे! वह नाना प्रकार के लोक लोकान्तर की उड़ान उड़ने वाले ब्रह्मचरिष्यामि अपने में महानता को धारण करने वाले जीवन को सुन्दर बनाना, यह प्रायः हमारा कर्त्तव्य कहलाता है।
तो आओ मेरे प्यारे! आज का विचार हमारा क्या कह रहा है? हम विज्ञान की वार्त्ता कुछ दे रहे हैं। विज्ञान की कुछ चर्चाएँ हो रही थी, परन्तु देखो, उसके पश्चात् विज्ञान

एक मौलिक रूप बन करके रह गया है। विज्ञान एक खिलवाड़ बन करके रह गया। मेरे प्यारे! देखो, विज्ञान उस काल में पवित्र बना करता है जो पुरातन काल में वाक् प्रगट किए थे क्या प्रत्येक मानव अपने अपने कर्त्तव्य को जानने का प्रयास करे। माता पिता जब अपने कर्त्तव्य को जान लेते हैं, तो बाल्य उसकी ऊर्ध्वा में गति करते हैं। मेरे प्यारे! उसकी ऊर्ध्वा महान बन जाती है। तो पवित्रतम् यह क्या प्रायः हमें अपने जीवन की धाराओं को अपना करके, और परमपिता परमात्मा की महती को जान करके और ऋषि मुनियों का जीवन जो कागां भवि सम्भवा लोकां वाचम् सम्भवो देवो वाचो ब्रह्मणा स्व कृतं मेरे प्यारे! देखो, ये विज्ञान है। मुनिवरों! एक समय महाराजा हनुमान व गणेश जी भ्रमण करते हुए वह श्वेताश्वेतर के आश्रम में पहुँचे। श्वेता श्वेतर ने कहा, कहो आगमन कैसे हुआ? उन्होंने कहा, प्रभु! आपं ब्रह्मवाचोः सम्भवा देवाः मेरे प्यारे! देखो, वह भ्रमण करते हुए अपने यान में विद्यमान हो करके, सूर्य की किरणों के साथ बेटा! उनका यान चलता रहा है, गति कर रहा है। सूर्य की नाना प्रकार की जो किरणें हैं, उन्हीं को तो ले करके बेटा! यान गति करता है। वह द्यौ ब्रहे, मेरे प्यारे! उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया, जैसे शब्द अन्तरिक्ष में गति कर रहा है, वह शब्द की छाया आ रही है, गति होने की और उसकी छाया का प्रतिबिम्ब मानो देखो, उस रूप में पोथियों में भी जैसा पोथियों में है परन्तु ऐसा ही क्रिया में लाने का उन्होंने प्रयास किया।

मेरे प्यारे! अपनी क्रियाओं से निवृत्त हो करके, वैदिक क्रियाओं से सदैव नियुक्त होना चाहिए। क्योंकि देखो, यही तो मानवीय धारा एक आभा में परणित रहती है। परन्तु देखो, उसमें विद्यमान हो करके वे सूर्य की किरणों के साथ गति करते हुए बेटा! देखो, उनका एक यन्त्र उसका जहाँ शब्दों की छाया आती है। यन्त्र उनके आकार को दृष्टिपात करता है। तो वह यन्त्र जो अन्तरिक्ष में हमारे शब्द की वाणी ध्वनित हो रही है, ध्वनियाँ विद्यामान है बेटा! उनका, उनकी तरंगों से उन यन्त्रों में उनकी धारा विद्यमान हो जाती है। तो परिणाम यह होता है क्या मानो देखो, अन्तरिक्ष में रहने वाला जो शब्द विज्ञान है, जिससे मानव का आत्मा पवित्र बनता है, जो मानो देखो, अपने में विचित्र कहलाता

है।

तो मेरे प्यारे! आज का हमारा विचार अब हमें क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते रहें और आराधना करते हुए जीवन को पवित्र बना कर अपने जीवन की महानता को जानने का प्रयास किया जाए, क्योंकि वे परमपिता परमात्मा तो सदैव देखो, एक एक दृष्टियों में निहित हो रहे हैं।

परमपिता परमात्मा जब निहित है तो उसकी धारा भी निहित रहती है, उसका ये विज्ञान अपनी स्थलियों पर एक धारा बन करके रहता है। आध्यात्मिक विज्ञान इसी का रूपांतर है। वह अपने नेत्रों और अपने शरीर को शोधन में लगाना, वही तो शोधन करते हैं। शोधन कौन करता है? जो यागां भविते देवां यागां रुद्रयागां भविते सम्भवानवा ब्रह्मं आज का हमारा वाक् यह हमें क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की महती को जान करके अपने जीवन को जाने।

परन्तु हे परमात्मन्! आप तो महान हैं। आप धिराज हैं, आप पवित्र हैं और आप मानवीयता को धारण करने कराने वाले हैं, परन्तु आज का हमारा वाक् ये क्या कह रहा है? कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए विज्ञान में रत्त रह करके बेटा! यही यन्त्र मानो भ्रमण करते हुए भारद्वाज मुनि के आश्रम में पंहुचा था, भारद्वाज मुनि ने कहा कहो भगवन! क्या अशुद्धियाँ हो गई हैं तो मानो देखो, उन्होंने कहा कि अशुद्धि भवा सम्भवा देवा गौर्वन्धनं वाचन्नमं ब्रह्मे मेरे प्यारे! देखो, वाचन्नमं ब्रह्म वाचा वे सगतं ब्रहे वाचं ब्रह्म गो वसुन्धरू वाचन्नं ब्रह्मा कृति असतो वाचं ब्रह्मे कृतिसम्भवा लोकां हिरण्यं ब्रीती कृतो मेरे प्यारे! जब इस प्रकार वैदिक मन्त्रों की जहाँ ध्वनियाँ प्रारम्भ होती हैं। वहाँ उनकी प्रवृत्ति देख करके अपने जीवन की धाराओं को अपने तक सीमित बना लेती है। तो विचार विनिमय क्या, कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, इस संसार से पार होना चाहते हैं। ये है बेटा! आज का वाक्, आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता परमात्मा को अच्छे प्रकार जानने वाले बनें। परमपिता परमात्मा की महती को जान

करके ऊर्ध्वा गति में प्राणी अपने में ऊँची उड़ान उड़ रहा है।
मेरे प्यारे! महाराजा हनुमान ने भी मानो देखो, उनके द्वारा कुछ शिक्षा का अध्ययन किया विज्ञान से ऊँचा उठे। परन्तु समय मिलेगा, तो मैं शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूँगा। आज का वाक् अब समाप्त होने जा रहा है। अब शेष वार्त्ताएँ कल प्रगट हो सकेंगी, आज का वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह, कि हम परमपिता परमात्मा को जानने वाले बने, परमात्मा की अनुपम धारा में रमण कर जाएं जिस मानव धारा को जान करके मानव का जीवन उदबुद्ध हो जाता है अथवा पवित्र बन जाता है तो आज का यह वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन पाठन होगा, इसके पश्चात यह वार्त्ता समाप्त। लाक्षागृह बरनावा समय दोपहर 3 बजे

१८ 02 03 1985 पुष्प 48 सृष्टि विज्ञान भी एक यज्ञ है

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि जितना भी यह जड़ जगत् अथवा चैतन्य जगत् हमें दृष्टिपात आ रहा है। उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रायः वे मेरा देव दृष्टिपात आ रहा है प्रत्येक वेदमन्त्र, उस परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन कर रहा है, क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनुपम है, वह विज्ञानमयी स्वरूप माने गए हैं। प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही, विज्ञान की वार्त्ताओं में रत्त होता चला आया है। चाहे वह आध्यात्मिक विज्ञान हो, चाहे वह भौतिक विज्ञान हो, परन्तु वह जो परमपिता परमात्मा, जो विज्ञानमयी स्वरूप माने गए हैं, मानो उसकी प्रतिभा का वर्णन, हमारे प्रायः वैदिक साहित्य में आता रहता है वेदाः अमृतं मानो वह वेद अमृत है जिसको पान करने से मानव अमरावती को प्राप्त हो जाता है, और वह अपनी आभा में रत्त हो करके अपनी मानवीयता का दिग्दर्शन करता है।
तो आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष विवेचना तो तुम्हें देने नहीं आया हूँ, विचार केवल यह

कि विज्ञान की चर्चाएँ हमारे यहाँ प्रायः होती रहती हैं। जैसे परमपिता परमात्मा विज्ञानमयी स्वरूप हैं आज तक बेटा! जितना भी विज्ञान मानवीय मस्तिष्कों में नृत्य करता रहा है वह विज्ञान उस परमपिता परमात्मा की धरोहर है। वे परमपिता परमात्मा की कृतिका है जिसको मानव जानने के लिए सदैव उत्सुक रहता है क्योंकि जैसे माता और पुत्र का दोनों का समन्वय है, मानो माता के गुणों को पुत्र अपने में धारण करना चाहता है। पिता के गुणों को पुत्र अपने में धारण करना चाहता है। आचार्य के गुणों को ब्रह्मचारी अपने में ग्रहण करना चाहता है। अपनी आचार संहिता का निर्माण किरना चाहता है। इसी प्रकार प्रत्येक वेदमन्त्र बेटा! उस परमपिता परमात्मा की महती का अथवा उसके विज्ञान की प्रायः चर्चा करता रहता है और जितना विज्ञान, वैज्ञानिक मानव आत्मा की पिपासा है और आत्मा यह चाहता है कि मैं उस परमपिता परमात्मा की, अपने सखा के ज्ञान और विज्ञान को मैं जानता चला जाऊँ और उसमें वैज्ञानिक बनता चला जाऊँ, क्योंकि वह उस पुत्र जो आत्मा है। उसके पिता की धरोहर यह विज्ञान है। यह विज्ञानमयी स्वरूप होने से बेटा! उसकी महती को यह अन्तरात्मा देखो, कहीं बाह्य जगत् में विज्ञान में रत्त होना चाहता है। कही वह अन्तर्मुखी हो करके बेटा! आत्म विज्ञान में प्रवेश होना चाहता है। मानो जिस भी आभा में वह रमण करता है। उसी आभा में विज्ञान को उस परमपिता परमात्मा के गुणों को अपने में लाना चाहता है। तो मेरे प्यारे! वह कैसा मेरा प्यारा प्रभु विज्ञानमयी स्वरूप है। बेटा! उसकी उग्र ही उस परमपिता परमात्मा की उग्रता में ही सर्वत्र विज्ञान और ज्ञान निहित रहता है।

ज्ञान और विज्ञान की चर्चाएँ, मेरे पुत्रों!, मैंने कई काल में तुम्हें प्रकट की। आज मैं विशेष में आभाओं में जाना नहीं चाहता हूँ। आओ, तुम्हें मैं वहीं ले जाना चाहता हूँ, जहाँ बेटा! कागभुषुण्ड जी की चर्चाएँ, महर्षि लोमश मुनि की चर्चाएँ और बेटा! महाराजा हनुमान अनुष्ठान करते रहते थे। अपने में अनुष्ठान करना बड़ा प्रियतम है। आज कोई भी मानव परमपिता परमात्मा के निकट जाना चाहता है या चित्त के मण्डल में प्रवेश करना चाहता है या मानव उदान प्राण के ले करके आत्म तत्त्वों को जानना चाहता है। जो जब तक नहीं जानेगा, तब तक परमपिता परमात्मा का आश्रय नहीं देगा क्योंकि

परमपिता परमात्मा का आश्रय लेना बहुत अनिवार्य है क्योंकि वह विज्ञानमयी, ज्ञानमयी, योगमयी, उसमें वह स्वरूप माने गए, स्वतः अपने स्वरूप में रहने वाला है। मानो देखो, इसी प्रकार मानव को अपनी मानवीयता के ऊपर विचार विनिमय करते हुए मानव विज्ञान की धाराओं में महानता की ज्योति में मानव को रत्त रहने के लिए, मेरे उस देव ममतव को धारण करने वाला प्रभु जो विष्णु हैं। पालन करने वाला है पालना करता रहता है। हम उसके आश्रित हो जाएँ और बेटा! उस आश्रित बिना हम आध्यात्मिक ज्ञान को नहीं जान सकते, भौतिक विज्ञान में पूर्णरूपेण नहीं बन पाते।

मेरे प्यारे! देखो, एक समय महाराजा हनुमान ने यह प्रश्न महर्षि कागभुषुण्ड जी से किया था किसी काल में। उन्होंने कहा था, हे प्रभु! मैं विज्ञानमयी रत्त होना चाहता हूँ। जब मैं बाल्यकाल में मानो ऋषियों के द्वारा अध्ययन करता रहा तो मुझे बहुत सी विद्याओं का उन्होंने प्रतिपादन कराया है। उन विद्याओं में मैंने रत्त रहने का अपने बहुत से संकलन किए हैं। अपनी धाराओं को जानने के लिए मैंने मानो देखो, नाना प्रकार की प्रतिभा, आनन्दमय विज्ञान और यौगिकता में प्रवेश होने के लिए मैं तत्पर रहा हूँ तो मेरे प्यारे! कागभुषुण्ड जी ने कहा कि तुम क्या जानना चाहते हो। उन्होंने कहा, प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो आध्यात्मिक विज्ञान और भौतिक विज्ञान मानो प्रायः वैदिक साहित्य में, आता रहता है, वैदिक साहित्य हमें उसको अग्रणीय बनाता रहता है, मानो देखो, उस वैदिक साहित्य में, हम प्रवेश होना चाहते हैं, जिससे मानवीयता हमारे समीप आता हुआ, हम विज्ञान की प्रतिभा में रत्त हो जाएँ और राष्ट्र और समाज कल्याण में रत्त हो जाएँ।

मेरे पुत्रों! देखो, जब हनुमान जी ने ऐसा कहा, तो कागभुषुण्ड जी ने कहा कि तुम यौगिक मानो आध्यात्मिक विज्ञान में रत्त रहना चाहते हो या भौतिक विज्ञान में जाना चाहते हो? मेरे प्यारे! उन्होंने कहा, मैं दोनों प्रकार के विज्ञान की प्रतिभा को जानना चाहता हूँ। आज भौतिक विज्ञान क्या है, आध्यात्मिकवाद क्या है? आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता क्या चाहता है भौतिक विज्ञानवेत्ता क्या चाहता है, मानो मेरे पुत्रों! उन्होंने जब यह वाक् कहा तो कागभुषुण्ड जी की प्रतिभा मानो उनके वचनामृतों को पान करने लगे। उन्होंने

कहा, हे हनुमन्तम्! यह जो स्वांति ब्रह्मवाचो देवो ब्रह्मा! यदि तुम चाहते हो कि मैं इसका निर्णय करूँ, मानो देखो, भौतिक विज्ञान वह है जिसमें अणु और परमाणुओं में मानो देखो, जो गतियाँ हो रही हैं अणु और परमाणु में जो प्रतिभाषिता हो रही है उन अणु और परमाणुओं को जान करके नाना प्रकार के यन्त्रवाद में प्रवेश होना है और परमाणुवाद में एक प्रतिभा का दिग्दर्शन करते हुए अपने में वह विज्ञान एक अद्भुत कहलाता है। एक परमाणु की तरंगें जानीं, दूसरे परमाणु की तरंगें एकत्रित हो जाती हैं। तृतीय तरंग को जाना तो तरंगों का जन्म हो जाता है। तो वह इतना सूक्ष्म विषय है, वह इतना सूक्ष्म क्रियाकलाप क्या मानो कि एक को जानो दूसरे उपस्थितियों को मार्ग नहीं प्राप्त होता।

अंत में उसका शरीरान्त हो जाता है तो उस विज्ञान को मुनिवरों! देखो, वायुमण्डल में अपनी आभा के साथ चला जाता है, परन्तु देखो, वह विज्ञान जन्म जन्मान्तर व्यतीत हो जाते हैं। जन्म जन्मान्तर मानो देखो, उसके चले जाते हैं अंत में विज्ञान में वह बाह्य जगत् में वह वैज्ञानिक जगत् में बेटा! अपने को सफल स्वीकार नहीं करता, क्योंकि उसको सफलता नहीं प्राप्त होती। एक परमाणु और दूसरे परमाणु में मिलान और संगतिकरण की भावना वह उसमें रत्त कर देते हैं। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा, हे हनुमान! और द्वितीय यह है कि एक हम यह आध्यात्मिक विज्ञान कहते हैं। आध्यात्मिक विज्ञान क्या है? मानो जब योगी, यौगिकवाद में प्रवेश करता है, जब वह शान्त मुद्रा में मुद्रित होता है, मुद्रित हो करके , मानो देखो, वह प्राण का प्राण को अपने में दृष्टिपात करता है। प्राण के ऊपर ध्यानावस्थित होता है, मन की प्रतिभा को वहाँ ले जाता है। ज्ञान इन्द्रियाँ प्राणों के ऊपर एक दूसरे में समावेश में लग जाता है।

मुझे स्मरण आता रहता है, कागभुषुण्ड जी ने कहा कि एक समय हम भ्रमण करते, महर्षि च्यवन ऋषि के द्वार पर पहुँचे। मानो महर्षि च्यवन मुनि देखो, वह अनुष्ठान कर रहे थे। वह यह चाहते थे कि मेरी आयु दीर्घ हो, वह मानो देखो, कायाकल्प के सम्बन्ध में, अश्वनी कुमारों की सहायता ले करके नाना प्रकार का मानो अपने में अनुष्ठान कर रहे थे और विचार रहे रहे थे, मेरा यह शरीर बहुत पौष्टिक और युवा होना चाहिए। वे

मानो उसी कल्पना में लगे हुए, अहा जब वे योगाभ्यास में परणित होते, यौगिक क्षेत्रों में जब च्यवन ऋषि प्रवेश कर जाते तो मानो उसे नाना प्रकार परमाणु अपने में मानो भरण दृष्टिपात हो रहे थे। तो विचार विनिमय क्या है मेरे पुत्रों! आज मैं तुम्हें मानो कागभुषुण्डजी ने कहा तो भगवन्! हमने महर्षि च्यवन से यह प्रश्न किया, कि तुम कैसे यौगिकवाद में, कैसे आज मैं तुम्हें इसके क्रिया में संलग्न हो? उन्होंने कहा, मैं प्राण को प्राण में, प्राण को अपान में और अपान को प्राण में और प्राण को समान में और समान को व्यान में और व्यान को उदान में और उदान को नाग में, नाग को कूर्म में, कूर्म को देवदत्त में, देवदत्त को धनञ्जय में, धनञ्जय को कृकल में, मैं दस प्राणों को एक प्राण सूत्र में पिरोना चाहता हूँ और वह प्राण सूत्र में कैसे पिरोएं जाते हैं, जैसे मैंने पुनः वार्त्ता प्रकट की नाग, कूर्म, देवदत्त, धनञ्जय, कृकल यह जो प्राण हैं पञ्च महा प्राणों में समावेश हो जाते हैं।

जब योगेश्वर समाधि के पिपाद में प्रवेश करता है ध्यानावस्थित हो जाता है तो वह एक दूसरे प्राण में, एक दूसरी इन्द्रियों में इनका संगतिकरण हो जाता है और इनका जब संगतिकरण होता है उस संगतिकरण का अभिप्राय यह होता है, वही देखो, मुनिवरों! संगतिकरण करते करते योगेश्वर अपने में अनुष्ठान करता है।

बारह बारह वर्षों के अनुष्ठान बेटा! प्राण को अपने में लगाने में लगा रहता है योगी। मेरे प्यारे! देखो, उनकी आयु भी दीर्घ बनती रहती है। विचार आता रहता है कि इस समय वह चित्त के मण्डल को भी त्याग देता है। वह मानो मोक्ष की प्रतिभा में रत्त हो जाता है। तो वह प्रभु के आनन्द में आनन्दित होता हुआ सतचित्त आनन्द की प्रतिभा में रत्त हो जाता है।

तो मेरे प्यारे! विचार क्या? महर्षि कागभुषुण्ड जी ने कहा कि तुम सबसे प्रथम प्राण का अनुरोध करो। प्राण का संगतिकरण अपान के साथ में किया जाए। मेरे प्यारे! देखो, मूलाधार में उसको किया जाता है। जब इसकी ही प्रतिभा एक महानता की ज्योति बन करके, अपने में रत्त रहने के लिए बेटा! तत्पर हो जाती है तो अपनी महानता आभा में युक्त होते हुए, अपने में धारा का प्रतिपादन, मानो आभा में रत्त हो जाता है। तो आओ

मेरे प्यारे! आज का विचार हमारा क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन करते हुए, महती को जानते हुए, अपने में, आभा में रत्त रहना चाहते हैं।

आओ मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या, हम परमपिता परमात्मा की महती में आनन्दतव को प्राप्त करते चले जाएँ। तो महाराजा हनुमान ने कहा, प्रभु! यह मैंने वाक् कई काल में श्रवण किया है। कई काल में इस आभा को प्रायः लाता रहा हूँ। जिसके ऊपर हम सदैव तत्पर रहे हैं।

तो महात्मा कागभुषुण्ड जी ने कहा कि हमें च्यवन ऋषि ने यह वाक् प्रकट कराया, तो हम भी अपने में अनुष्ठान करने लगे। जब अनुष्ठान में परणित हो गए, अनुष्ठान करने लगे तो मानो देखो, उसी अनुष्ठान वेला में परणित हो करके, अपनी मानवीयता को, अपने यौगिकवाद में, आध्यात्मिकवाद में प्रवेश कर गए। आध्यात्मिक विज्ञान एक ईश्वरीय विज्ञान है। जो अपने को बाह्य जगत् से उसका कोई समन्वय नहीं है। वे केवल आन्तरिक जगत् से ही उसको मानो संगतिकरण किया जाता है।

आध्यात्मिकवाद आन्तरिक जगत् से जाना जाता है। ये जो भौतिक विज्ञान है ये भौतिक विज्ञान वैज्ञानिक बाह्य जगत् से जानना चाहता है और बाह्य जगत् का जो विज्ञान है उसमें कोई वैज्ञानिक आज तक पूर्ण सफलता को प्राप्त नहीं हुआ।

किसी ने परमाणु से किसी अंग को जाना है कि कोई काल ऐसा हुआ किसी अंग को जाना है उसी में देखो, भौतिक चमत्कार भौतिक आभामयी विज्ञान रत्त हो गया है। अंत में उसका राष्ट्रीयकरण हो जाता है। अंत परिणाम यह होता है कि राष्ट्रीयकरण होते ही, राष्ट्र में मानो देखो, संग्राम के अवशेष बन जाते हैं। उस संग्राम के अवशेष करके ही मानव का ह्रास हो जाता है। वह भौतिक विज्ञान रसातल को चला जाता है। फिर पुनः से उसका उत्थान होता है। मेर प्यारे! ये तो देखो, बाह्य जगत् का भौतिक विज्ञान रहा, परन्तु आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता जब अन्तरात्मा से इस विज्ञान को बाह्य जगत् का अनुसन्धान आन्तरिक जगत् में कर रहा है। बाह्य ब्रह्माण्ड को अपने अंतर्हृदय में दृष्टिपात

कर रहा है।
पृथ्वी के विज्ञान को, अपने ही परमाणु पार्थिव तत्त्वों में अन्वेषण कर रहा है। मेरे प्यारे! देखो, वह विज्ञान से, इन इन्द्रियों पर प्राणों से विजय करता हुआ दसों प्राणों वाले इस भवन को जानकर के मेरे प्यारे! प्राणायाम् भविते देवाय सतप्रमाणं वृही लोकाम्। मेरे प्यारे! देखो, अन्तरात्मा के सखा अपने सखा प्रभु जो विज्ञानमयी स्वरूप है, जो मानो ब्रह्माण्ड को रचता है वह उसके आनन्द में रत्त हो जाता है। तो बेटा! आज मैं तुम्हें विशेषता में ले जाना नहीं चाहता हूँ, आज मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ। केवल तुम्हें संक्षिप्त परिचय देने चला आया हूँ और वह परिचय यह है कि मुनिवरों! देखो, वह जो मेरे देव हैं, जो विज्ञानमयी स्वरूप माना गया है, जो विज्ञान का पुंज कहलाता है, जो विज्ञान में रत्त रहने वाला है। मेरे पुत्रों! जब वैज्ञानिक इस परमपिता परमात्मा को अपना साथी बना लेता है, अपना मित्र बना लेता है, उसको प्रणव स्वीकार करता है, मन को उसी धारा में परिणित कर देता है।
वह योगेश्वर अपनी आभा में परिणित हो जाता है पुत्रों! कागभुषुण्ड जी ने यह वाक् कहा तो कागभुषुण्ड जी के यह वाक्य पा करके। महाराजा हनुमान ने कहा, प्रभु! हमें आज्ञा दीजिए। मैंने आपसे बहुत कुछ प्राप्त किया है। कागभुषुण्ड जी के वाक्यों को ले करके बेटा! भ्रमण करते हुए, वह मानो देखो, पुनः कैलाश के आँगन में प्रवेश कर गए। महाराजा गणेश जी के द्वार पर पहुँचे। महाराजा गणेश जी ने कहा, आईए, मित्रोभव! मेरे प्यारे! अब क्योंकि महाराजा! हनुमान और गणेश जी की विज्ञानशाला समुद्रों के तट पर थी, वह अन्वेषण करते रहते थे, तरंगों के ऊपर, तरंगों को तरंगित करते रहते थे। मेरे प्यारे! सूर्य की किरण आई, जो पृथ्वी में स्वर्ण की मात्रा को जन्म दे रही है, उन किरणों को अपने में आभायित करते थे। मेरे प्यारे! महाराजा हनुमान और गणेश जी दोनों योगाभ्यास भी करते थे, योग में परिणित भी रहते और भौतिक विज्ञान को भी जानने का प्रयास करते। आध्यात्मिकवाद में भी रत्त रहते।
महाराजा गणेश जी के सम्बन्ध में तो यह आया है कि क्या सूर्य की किरणों के साथ में मानो वह सूर्य लोक की यात्रा करते रहते थे। मेरे प्यारे! महाराजा हनुमान, अहा जब

सूर्य विद्या को निगलते रहते थे कि कौन कौन सी विद्या सूर्य की किरण जब पृथ्वी पर आती है, कोई पृथ्वी के गर्भ में स्वर्ण का निर्माण कर रही है। कहीं रत्नों का निर्माण हो रहा है, कहीं जल को शक्तिशाली बनाया जा रहा है। मानो देखो, एक नवीन ब्रह्माण्ड उनके समीप आ जाता है। जब नवीन ब्रह्माण्ड आ जाता है तो मानो देखो, उन किरणों को अपने में सिञ्चन करना प्रारम्भ कर उन किरणों के ऊपर अनुसन्धान करना अनुसन्धानशाला में उन किरणों को लाना। यन्त्रों का निर्माण करना, उन किरणों को जानना जो किरण मानो देखो, इस पृथ्वी के गर्भ में, माता वसुन्धरा के गर्भ में जो नाना प्रकार का जो विज्ञान जो धारा में रत्त हो रहा है। आभा में नृत्य हो रहा है, मेरे पुत्रों! देखो, वह आभा से युक्त होता हुआ वह ऊर्ध्वा में गति वाला मुनिवरों! देखो, बन करके, आभा में रत्त रहने वाला है।

हे मेरी माँ वसुन्धरा! तेरे गर्भ में क्या नहीं है। यह मानव सब तेरे ही गर्भ में वशीभूत हो रहा है। तू अपने गर्भ से नाना प्रकार का खनिज और खाद्य दे करके मानव के जीवन को ऊँचा बना रही है। हे मां! तेरे गर्भ में कौन सी वस्तु नहीं है, तू कैसी पवित्र मां है। मानो ये जो संसार तेरे गर्भ में वशीभूत हो रहा है। और मां तेरे से सहायता पा रहा है। नाना प्रकार की सहायता पा रहा है।

जो सहायतावत है वही तो तेरा विज्ञान है, महानता की ज्योति पर ले जाता है। मेरे प्यारे! मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था, बेटा! देखो, महाराजा हनुमान और गणेश जी दोनों समुद्र के तट पर मेरे प्यारे! जहाँ सूर्य की किरणों का आदान प्रदान दृष्टिपात करते रहते थे। मानो सूर्य की किरणों का आदान प्रदान हो रहा है, एक ही पृथ्वी की आभा किरणों में बेटा! एक किरण आई, वह स्वर्ण की मात्रा दे रही है, द्वितीय किरण का आदान हुआ तो मानो वह अन्य धातु उसी धातु, में दूसरी धातु का मिश्रण हो रहा है। मेरे पुत्रों! उस नाना प्रकार की किरणों को सिञ्चन करने वाले वैज्ञानिक अपने विज्ञान में रत्त रहे हैं।

विज्ञान को जानते हुए, मेरे प्यारे! इस आभा में नियुक्त होते हुए परमपिता परमात्मा को अपना साक्षी बना दें। तो विचार विनिमय क्या? मेरे पुत्रों! नाना प्रकार के यन्त्रों का जन्म

होना यह एक आश्चर्य नहीं है। परन्तु यन्त्र का सदुपयोग करना, उस यन्त्र को आभा में नियुक्त करना, वही यन्त्र मेरे प्यारे! राष्ट्र में सार्थक बन करके मानवीय जीवन की धारा और महानता की ज्योति को जन्म देने वाला है। वही तो महानता की ज्योति आती है। और जब विज्ञान के दुरूपयोग का प्रतिपादन होता है, तो विज्ञान में मानो देखो, संकीर्ण समाज बन जाता है। संकीर्ण समाज बन करके राष्ट्रों में पुनः से अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। मानो देखो, उस अग्नि को कोई शान्त नहीं कर सकता। जब तक विज्ञान का दुरूपयोग रहेगा, जब तक विज्ञान में सार्थकता नहीं आती, आध्यात्मिकवाद नहीं आता। आध्यात्मिकवादी क्या कहता है? आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता यह कहता है कि हे मानव! तू अपनेपन को जान करके तू मानो देखो, परमात्मा में एकरस हो जा।

परमात्मा में एकरस होगा तो तेरे जीवन से, जब तक तू उसके मार्ग में गति करेगा तेरी उस गति से सहस्रों के जीवन की धारा और राष्ट्र की धारा और समाज की धारा संकीर्णता की धारा का परिवर्तन जब तक नही होगा जब तक मानो देखो, विज्ञान और योग का दोनों का समन्वय नहीं हो जाएगा दोनों का संगतिकरण नही होगा।

आज मैंने बहुत पुरातन काल में बेटा! तुम्हें ये चर्चाएँ पुनः से प्रकट की हैं। मानो महाराजा हनुमान और गणेश जी दोनों इस विज्ञान में रत्त रहते थे कि हम वैज्ञानिक यन्त्रों का निर्माण करें, तो मेरे प्यारे! वे ऐसे ऐसे यन्त्रों का निर्माण करते रहते थे, जिन यन्त्रों में विद्यमान हो करके मानो पृथ्वी की और चन्द्रमा की जहाँ सीमा प्रारम्भ हो जाती है वहाँ अपने यन्त्रों से यन्त्रशाला और वहीं एक निर्माण प्रही आभा में मानो यन्त्र को स्थिर कर देते थे। उस पर विद्यमान हो करके वायु का संचय करना पृथ्वी के परमाणुओं को ले करके वह यन्त्रों का निर्माण करके दूसरे लोकों में लोकों के लिए विज्ञान में रत्त हो जाते थे। मानो सूर्य की किरण कहीं से यन्त्र गति करने वाला बेटा! जो सूर्य की यात्रा करने वाला प्राणी होता है। मानो उसकी परिक्रमा करता रहता है। तो आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चाएँ तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ, केवल परिचय यह हमारा कि मुनिवरों! देखो, यही विज्ञान, हनुमान के जीवन में एक विज्ञान हमें प्राप्त होता है।

मेरे प्यारे! देखो, मेरे प्यारे! महानन्द जी ने मुझे कई काल में यह प्रकट कराया है,

विज्ञाना भविते देवाम् मेरे प्यारे! ऐसे ऐसे यन्त्र थे, समुद्रों पर, वह गति कर रहा है, समुद्रों में प्रवेश नहीं हो रहा है, मानो देखो, यन्त्र उसकी आभा में गति कर रहा हैं यन्त्र जिसमें विद्यमान हो करके अग्नि प्रदीप्त करके यन्त्र में देखो, जो लंका को मुनिवरों! देखो, रावण की लंका को विध्वंस कर सकती है। मेरे प्यारे! देखो, वह सब यन्त्र उसके आभा में नियुक्त रहते थे। तो परिणाम क्या? आज मैं विशेषता नहीं, विचार केवल यह देने के लिए आया हूँ कि मुनिवरों! देखो, विज्ञान की नाना प्रकार की धाराएँ, मानव के जीवन में हैं। ऐसा ऐसा परमाणुवाद अन्तरिक्ष में विद्यमान है। यदि हम देखो, उसे सूक्ष्म से एक एक अणु एक परमाणु को एकत्रित करने, उन्हीं परमाणुओं के ऊपर मुनिवरों! देखो, सौ वर्षों तक प्रकाश की धाराएँ उत्पन्न होती रहती हैं। प्रकाश की धाराओं में मानव रत्त होता रहा है। तो मेरे प्यारे! देखो, वे छह माह तक दोनों विज्ञान में रत्त रहते थे। और छह माह के पश्चात् मेरे प्यारे! महाराजा शिव के आश्रम में प्रवेश करके, मानो देखो, यौगिक आचार्य शिक्षा को अध्ययन करते और देखो, कुछ समय वह ऋषि मुनियों में रत्त रह करके बेटा! आध्यात्मिकवाद में आत्मा कैसे जाना जाए, प्राण का हम कैसे निरोध करें, प्राण को हम कैसे स्वीकार करें।

मेरे प्यारे! वह दोनों याग भी करते थे, याग का अभिप्राय यह है, याग करना यह मानव की प्रतिभा का एक अंग बना हुआ है, परम्परागतों से, सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके, बेटा! जब तक यह पृथ्वी, जब तक यह मानव सृष्टि का काल चलता रहेगा, जब तक मुनिवरों!, देखो, एक धारा का जन्म होता रहेगा। एक धारा अपने में धारित होती हुई मेरे प्यारे! वह याग एक मानव का अंग बना हुआ है, मानव का एक व्यवहार उक्तियों में रत्त रहने वाला है।

याग का अभिप्राय क्या है? मैंने कई काल में तुम्हें वर्णन करते हुए कहा था, एक समय महाराजा हनुमान और महाराजा गणेश जी दोनों अपने समुद्र के तट पर याग कर रहे थे, जहां उनकी विज्ञानशाला थी। उसमें एक यज्ञशाला थी, यज्ञशाला में याग कर रहे थे। अहा! जो शब्द उच्चारण करते, शब्दों में जो चित्र आते रहे, वह चित्रावलियों में दृष्टिपात करते रहते थे। हमारे शब्द के साथ में एक एक चित्र बन करके बेटा! अन्तरिक्ष

में गति करता रहता है। अन्तरिक्ष में रत्त होता रहा है। वह अपना क्रियाकलाप भी करता रहता है, वह मानो देखो, याग के चित्र मुनिवरों! देखो, द्यौ लोक में प्रवेश कर जाते हैं। मेरे प्यारे! दोनों याग कर रहे थे, याग करते करते एक सुदेतकेतु नाम के ब्रह्मचारी वहाँ आ गये। सुदेतकेतु उस यज्ञ में विराजमान हो गये, वे पवित्र थे, ब्रह्मचारिष्यामि थे। बेटा! जब वे याग करने लगे इतने में मुनिवरो! देखो, महर्षि अटूटी मुनि महाराज वहाँ विराजमान हो गये। महर्षि अटूटी मुनि महाराज ने जैसे वह याग में रत्त रहना चाहते थे, तो उन्होंने कहा आईए, भगवन! ते महर्षि अटूटी किसी शास्त्रार्थ में से किसी वैदिक चिन्तन में से आ रहे थे। मानो ऋषियों की सभा में से महर्षि प्रवाहण और शिलक उसकी सभा में से वे वहाँ आए। तो वह विद्वेष भाव की चिन्तन में लगे। चिन्तन में लगे हुए थे। अहा, वह कल्पना कर रहे थे यदि मैं प्रवाहण को ऐसा उच्चारण कर देता, कि ब्रह्म तो ब्रह्मा आभा में निहित रहता है तो यह चिन्तन एक द्वेषा भावातुर था। मुनिवरों! देखो, इतने में ही श्वेत्तामभविते ब्रह्मा हनुमान जी ने कहा, गणेश जी ने कहा, प्रभु! यह जो यन्त्र विद्यमान है कि आप की जो तरंगें हैं विचारों की याग में जो आपका विचार जा रहा है।

ग्रह यज्ञ के परमाणुओं को अशुद्ध बना रहा है। ये जो तरंगेंवाद जा रहा है, यह याग के स्वाहा के साथ में यह तुम्हारा दूषित हो गया है। आप याग की आहुति न दीजिए क्योंकि विज्ञान के लिए परमाणुवाद को एकत्रित करने के लिए याग कर रहे हैं। तो मेरे प्यारे! देखो, महर्षि अटूटी ने कहा, प्रभु! वास्तव में मेरा विचार दूषित है। मेरे प्यारे! उन्होंने आहुति देना शान्त कर दिया। इतने में मानो कुछ ऋषि और आ गएं और देखो, उन ऋषियों में स्वाति मुनि महाराज ने बेटा! याग प्रारम्भ किया। स्वाति मुनि महाराज ब्रह्मरूप बन करके यह जो विज्ञान, यह जो याग है, यह तो विज्ञानमयी स्वरूप है। यह तो यज्ञमयी स्वरूप है यह तो परमपिता परमात्मा का अंग है।

मानो देखो, जब सुगन्ध जैसे परमपिता परमात्मा मानो प्रकृति के गर्भ में भरण कर देते हैं वही सुगन्धि अग्नि के गर्भ में देवतव मानो भेदन करने के लिए याग कर रहे हैं। तो जब वे याग में विद्यमान हो गये। तो उनका याग सार्थक हो गया। वे जो याग की तरंगें

थीं वह द्यौ लोक में, उनके यन्त्रों के साथ में जब लोक में प्रवेश कर रही थीं। यन्त्रों में दृष्टिपात कर रहे थे, यन्त्र स्थिर हैं।

महाराजा गणेश जी बोले, देखो, तुम्हारे ये जो शब्द हैं, ये जो स्वाहा है, साकल्य है मानो इसका परमाणु वाक् बन करके द्यौ लोक में प्रवेश हो रहा है। शब्दों के साथ में तारतम्य में लगा हुआ है। तो मेरे पुत्रों! वह हर्षध्वनि होने लगी। याग मानो सम्पन्न हो गया। सम्पन्न हो करके, बेटा! याग एक ऐसा सूक्ष्म तन्तु है, एक ऐसा सूक्ष्म विचार है, जिस विचार को ले करके मेरे पुत्रों! देखो, याग जब पवित्र होता है। याग करने वाला पवित्र होता है, याग तो सदैव ही पवित्र है अग्नि को तो उसी प्रकार भेदन करता है, परन्तु तुम्हारे जो विचार है, यदि वे दूषित होंगे मानो भावावृत्तियों में होंगे, तो अग्नि को तो वही भेदन करना है वही अन्तरिक्ष में तुम्हें पहुँचाना है। उन्हीं विचारों को द्यौ लोक में मानो पवित्र करके तो पहुँचाना है। तो विचार विनिमय क्या है? हमारे यहाँ पुरातन कालों में याग का इतना उत्तम महत्व माना गया है क्या योगेश्वर एक समय मुनिवरो, देखो, कागभुषुण्ड जी के पिता जी, सोमवृत्तिका यह विचारने लगे कि मुझे याग के द्वारा, द्यौ लोक में प्रवेश करना है, द्यौ लोक में जाना है।

दण्डक वनों में जा करके याग करने लगे, समिधा चुनते रहते, साकल्य को एकत्रित करते रहते चरु बना करके, जब वे याग करते, जब याग करते करते एक समय वह याग कर रहे थे परन्तु देखो, याग करते हुए मुनिवरों! देखो, मृचि नामक ऋषि वहाँ आ पहुँचे, मृचि नामक ऋषि आयुर्वेद के भी जानने वाले थे। जब वे याग में सम्मिलित होने लगे तो उस ऋषि को कहीं क्रोध आ गया था, उनको क्रोध के आवेश में उनकी तरंगें द्वेष में भावातर हो रही थीं, तो ऋषि ने कहा, ऋषिवर आपका जो विचार है मुनिवरों! देखो, वह मानो देखो, द्वेषारोपण है यह तरंगेवाद कह रही है अग्नि की धारा कह रही है मानो इनको विचारा जाएं उन्होंने कहा प्रभु! आप यथार्थ उच्चारण कर रहे हैं। उन्होंने याग समाप्त कर दिया, तो योगी जन वायुमण्डल को पवित्र बना करके जब साधना करता है तो उसकी साधना पूर्ण हो जाती है।

यदि वायुमण्डल पवित्र नहीं है, वायुमण्डल में दूषितपना है जहाँ वह विश्राम कर रहा

है। यदि उसको दूषितपना है विचारों की दूषिता है, तो योगी की साधना भी पूर्णरूपेण को प्राप्त नहीं होगी। मेरे प्यारे! अनुष्ठान भी पवित्र नहीं होते। तो ये विचार और आत्मीयता का बेटा! समन्वय रहता है। आध्यात्मिकवाद उसे कहते हैं जो तरंगेवाद को पवित्र करता है। जो तरंगें अपने मानसिक जीवन को ऊँचा बनाता है। जिससे बेटा! मानवीयता का दिग्दर्शन हो करके बेटा! मानो इस सागर से पार होने का प्रयास करता रहता है। आओ मेरे प्यारे! देखो, मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन कराया है कि हमारे यहाँ जिस भी काल में ऋषि मुनियों ने मानव जीवन के रहस्य तत्त्वों को जाना तो उसी काल में उन्होंने याग को सबसे प्रथम माना है, बालक जन्म लेता है माता के गर्भ स्थल से, उस समय भी याग की लोरियों का पान कराते हैं। उस बालक को याग की लोरियाँ क्या है? मानो गृह में सुगन्धी करते हैं, याग करते हैं और वह मानो याग जैसे गर्भ में से बालक आया है उसके ही देखो, उसके नथनों, में उसके अंगों में सुगन्धि जानी प्रारम्भ हो जाती है। मानो उस समय उसका साकल्य, चहुँ ओर प्रकार का होता है, जैसा मुझे वशिष्ठ मुनि महाराज और आदि ऋषियों से ये प्राप्त हुआ है, ऐसा उन्होंने कहा है कि बालक जब गृह में आए, तो उसमें गोगुली वर्णिका, सम्भेदी मृचिका आदि सुगन्धयुक्त पदार्थों द्वारा याग किया जाए तो उस बालक के अंगों का शोधन हो जाता है। उसके पश्चात् जितने भी संस्कार जितने भी मानो देखो, संगतिकरण हैं उनमें याग को प्रधान माना है। तो याग क्या है? याग है मुनिवरों! मानव का साकल्य के द्वारा, सुगन्धित पदार्थों के द्वारा मानव के विचारों को सुगन्धित विचारों का समन्वय उनमें जब तक नहीं होगा।

तो बाह्य औषधियों का विचार इतना प्रभावित नहीं करेगा। तो मेरे प्यारे! इसलिए विचार हमारा पवित्र होना चाहिए। विचार में संकल्प होना चाहिए। जैसे माता का पुत्र माता के संकल्प में ही कटिबद्ध रहता है, माता को पुत्री है वह पिता के संरक्षण में रह करके, अपने संकल्प से कटिबद्ध रहती है। इसी प्रकार यह जो संकल्प है ये जो संकल्प की धारा है। इसको ऊँचा बनाना, इनमें विचारों को प्रवीण करना, इससे ही मेरे प्यारे! मानव का कल्याण होता है। मानव कल्याणकारी बन करके अपने जीवन को ऊँचा

बनाता है।

आओ, मेरे प्यारे! मैं विशेष विवेचना न देता हुआ, विशेष चर्चा न प्रकट करता हुआ मैं तुम्हें वहीं ले जाना चाहता हूँ, जब मानव यह स्वीकार करता है कि यह जो ब्रह्माण्ड है यह विज्ञानमयी स्वरूप है। विज्ञान ही मानव की प्रतिभा है, यह जो यज्ञमयी स्वरूप प्रभु है जब यह स्वीकार करता है कि प्रभु याग कर रहे हैं। हम उसके होता बने हुए हैं, यह ब्रह्माण्ड एक यज्ञशाला है। यह पृथ्वी भी एक यज्ञशाला रूप बन करके रहती है। हम इसके गर्भ में हैं और परमपिता परमात्मा वसुन्धरा बना हुआ है। वह कहीं माता के रूप में प्रेरणा देकर के, वह उसका वहाँ वसुन्धरा माता बनी हुई है, पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश होते हैं तो पृथ्वी वसुन्धरा बनी हुई है जब प्रभु की गोद में जाते हैं, तो प्रभु! ही वसुन्धरा है। मेरे प्यारे! देखो, अपने में बसाने वाली, मानो देखो, माता वसुन्धरा है, कल्याण करने वाली है आनन्दमयी देने वाली है, वही पालन करने वाला विष्णु है। जब ही अपने में हम स्वीकार हैं तो कोई विज्ञान हो बेटा! चाहे वह बाह्य जगत हो, चाहे वह आन्तरिक जगत् का ही दोनों विज्ञान बेटा! अपने में सार्थकता को प्राप्त हो जाते हैं और दोनों का जब समन्वय होता है तो राष्ट्रवाद, समाजवाद, मानववाद मेरे प्यारे! देखो, सब ऊँचे बनते चले जाते हैं। तो विचार विनिमय क्या आज मैं तुम्हें विचार देने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव को वैज्ञानिक बनना चाहिए, प्रत्येक मानव विज्ञान की धाराओं में रत्त रहना चाहिए, जिससे देखो, हमारा मानवीय जीवन पवित्रता की आभा में परणित होता हुआ इस संसार सागर से हम पार हो जाएँ। यह हमारा मन्तव्य है। यह जो नाना प्रकार की आभा वाला जगत् है आओ, मेरे प्यारे! आज का विचार क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए मानो देखो, इदन्नमं ब्रह्मा जो हनुमान जी विज्ञान को अपने में सिञ्चन करते रहते। वे विज्ञान को अपने में लाते रहते थे, उस विज्ञान में जाना एक दूसरा, एक दूसरे में रत्त रह करके, संगतिकरण हो करके मेरे प्यारे! इस संसार की आभाओं का जन्म होता है। उसी प्रकार से उनको हम प्राप्त करते रहते हैं।

यह है बेटा! आज का वाक्। आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि

परमपिता परमात्मा मेरा देव हैं। वे परमपिता परमात्मा महान हैं। विज्ञानमयी स्वरूप हैं वह। चाहे भौतिकवाद हो, चाहे वैज्ञानिकवाद, चाहे आध्यात्मिकवाद हो दोनों प्रकार के विज्ञान मानो उसकी संरक्षणता में हों तो उसका दुरूपयोग नहीं होगा, वह सार्थक बन करके अपने को प्राप्त होता रहेगा। अपने को अपने में ही समावेश करना यह हमारा मानवीय जीवन है। यह आज का वाक्, समय मिलेगा में तुम्हें विशेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा। आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएँ। यह बेटा! आज का वाक् और वेदों का पठन पाठन। लाक्षागृह बरनावा समय दोपहर तीन बजे

१९ 03 03 1985 पुष्प 48 राष्ट्र उत्थान पर महानन्द जी के विचार

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव जो यज्ञोमयी स्वरूप माना गया है। जिसका याग भी आयतन माना गया है। मानो उस परब्रह्म परमात्मा की हम, उपासना के रूप में मानो उसका सदैव गान गाते रहते हैं क्योंकि प्रत्येक मानव जब उसकी आभा में अथवा उसकी रचना के ऊपर गुणगान गाने लगता है, तो उस मानव का हृदय पवित्र बन जाता है। अथवा उसकी प्रवृत्तियाँ मनोनीत आभा में परणित हो जाती हैं।

हमने बहुत पुरातन काल हुआ, बेटा! कुछ न्यौदा में मन्त्रों का उच्चारण किया गया था और वह न्यौदामयी मन्त्र यह कहता है कि हम परमपिता की महती में सदैव रत्त हो जाएँ। जिससे हमारा मानवतव, पवित्रता की वेदी पर निहित हो करके अपने मानवतव को हमे ऊँचा बनाना है। क्योंकि परम्परागतों से ही, वैदिक साहित्य में, भिन्न भिन्न प्रकार की वार्त्ताओं का वर्णन होता रहा है। जहाँ वेद अमृतमयी कहलाता है। मानव सदैव उसे पान करना भी चाहता है। आज हमारा प्रथम वेदमन्त्र यागाम् विष्णु वरणां वृत्ति लोकाः

मानो यह जो संसार है। यह मानो एक याग हो रहा है। प्रत्येक रूपों में हम यागों का जब दर्शन करते हैं, तो हमारा मानवतव हमें पवित्रता की वेदी पर ले जाता है। तो आओ, आज का हमारा वेदमन्त्र विष्णु की याचना कर रहा है, और यह कह रहा है कि यह विष्णु तो प्राण है।

वेद का मन्त्र कहता है, प्राणाम् वृतां विष्णुः वेद का मन्त्र कहता है कि यह जो विष्णु है यह प्रायः प्राण कहलाता है, प्रत्येक मानव अपने में प्राण प्रतिष्ठा को चाहता है। और उस प्राण प्रतिष्ठा में वह मानव उसमें प्रवेश हो करके, अपने मानवतव को महान और पवित्रतम में आभायित हो जाता है। आज मैं विशेष विवेचना देने नहीं आया, क्योंकि आज मेरे प्यारे! महानन्द जी की भी कुछ उत्कट इच्छा बनी हुई है कि मैं भी अपने कुछ उद्गार अपनी उद्गमता को अपनी आभा में उस परमपिता परमात्मा की आभा का समन्वय चाहता हूँ, क्योंकि प्रत्येक मानव समन्वय ही चाहता है। ऐसे मेरे प्यारे! महानन्द जी भी समन्वय चाहते रहते हैं। अब मैं विचार न देता हुआ मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने वाक् प्रकट करें।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् यंशौ सर्वांगतं यज्ञं भविताः माम् रथेषु सर्वाणि गायन्त्वा मनाः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! और भद्र समाज! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, अभी अभी विष्णु को याग की उपाधि में, सम्बोधित कर रहे थे, और यह विचार दे रहे थे, कि यागां भवि सम्भवाः मानो यह याग कर्म हैं यह एक महान कर्म है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अनादि काल से, अपने संस्कारों की प्रतिभा को लेकर के और समय समय पर उन्होंने यागों की रचनाएँ की। वह काल जब स्मरण आता रहता है, जिस काल में दण्डक वनों से कहीं कजली वनों से इनको लाया जाता और यज्ञशाला में, जैसे यज्ञशाला जैसे शरीर में यह प्राण प्रतिष्ठा है।

इसी प्रकार यज्ञशाला में, जो याग की क्रियाकलाप में लाने वाला है, वह याग का प्राण माना गया है। वेद का आचार्य कहता है कि याग का प्राण क्या है? तो मैंने तो अपने हृदयों में, दर्शनों की प्रतिभा में, प्राण मेरे अस्स्सुतम् भविते देवां पूज्यपाद गुरुओं ने वह वर्णन कराया है, कि यह जो याग है, इसका प्राण ब्रह्मा माना गया है। इसका प्राण

उद्गीत गाने वाला माना गया है। क्योंकि यागों में गान गाया जाता है, यागों में उद्गीत गाया जाता है, गायन के रूप में गान गाया जाता है। जैसे शरीर में प्राण प्रतिष्ठा है। और प्राण और वाणी का समन्वय जब होता है, तो मानो वह उद्गीत गाता रहता है। इसी प्रकार, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो वह समय था मुझे स्मरण है, कि कजली वनों से लाया जाता और वे यज्ञ में प्राण प्रतिष्ठा की स्थापना होती तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का एक तो वह भव्यकाल था। इनके बिना याग की रचना अथवा याग का कर्मकाण्ड हो नहीं पाता था। परन्तु एक स्थान वह मानव अपने भोगों के वशीभूत हो करके कहाँ चला जाता है परन्तु वह कहाँ चला जाता है?

इसके ऊपर मैं परम्परागतों से ही, पूज्यपाद गुरुदेव से उनके जीवन की आभा को दृष्टिपात करता रहता हूँ। मैं इस क्षेत्र में जाना नहीं चाहता हूँ। परन्तु जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है, वहाँ एक पारायण याग की रचना, याग का पूर्णत्व को प्राप्त हो रहा है, और वे यागों के ब्रह्मा यज्ञ कृतों जो वेद का पठन पाठन करने वाले जो वेद की विद्या की सुरक्षा करने वाले, मेरा अन्तरात्मा उनके साथ रहता है। हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, क्योंकि तेरे जीवन की प्रतिभा महानता में रमण करती है। मेरा यज्ञमान के साथ, यज्ञमान की प्रतिभा में, मेरी प्रतिष्ठा रहती है। क्योंकि यज्ञशाला में यज्ञमान यागां ब्रह्माः प्राणः यज्ञमान भी याग का प्राण माना गया है, क्योंकि प्राण भविते देवां यह संसार एक प्राण रूप है। यह जगत् एक प्राण रूप माना गया है।

परन्तु विचार जब आते रहते हैं, अपने में अनुसन्धान करते रहते हैं, तो मैं यह कहता हूँ कि याग होने चाहिए। आज मेरा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न हो रहा है, जहाँ मैं यज्ञमानों की प्रशंसा कर रहा हूँ, वह काल था जब याग होते, और यागों में महापुरुष आकर के अपना अपना आशीर्वाद दे करके चले जाते थे। यह वह पवित्र स्थली है जिस स्थली पर, महात्मा जैमिनी मुनि महाराज अपने में लेखनियाँ बद्ध करते रहते। यह वह पवित्र स्थली है जहाँ प्रत्येक मानव अपने में मानवीयता का उद्गीत गाता हुआ अपने में उद्गीत गाता रहता था। यह वह पुण्य भूमि अप्रताम् पवित्रतम कहलाती है जहाँ वेदों की ध्वनियाँ

होती रहतीं, ब्रह्मचारी वेदों की ध्वनियों में रत्त रहते थे। जब वह काल और आधुनिक काल दोनों कालों की जब संतुलना करने लगता हूँ, तो मुझे आश्चर्य चकित होने के सिवाय, कुछ नहीं प्राप्त होता।

यह हमारे जीवन की प्रतिभा है। मैं यज्ञमान को यह उच्चारण करने कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। तेरे जीवन की प्रतिभा महान कर्म करने के लिए सदैव तत्पर रहे। मानो देखो, जिस आहार को देने से, देवता प्रसन्न होते हैं, देवतव को प्राप्त हो जाते हैं। तो ऐसा जो क्रियाकलाप है, वह हमारे लिए लाभप्रद कहलाता है। आज मैं विशेषता में ले जाना नहीं चाहता हूँ। मैं पूज्यपाद गुरुदेव को वहाँ ले जाना चाहता हूँ जहाँ यह वार्त्ता, अपने में ही वार्त्ता नहीं बन करके रह पाता, परन्तु यह क्रिया का रूप धारण कर लेती है।

तो आओ आज का विचार हमारा यह क्या कह रहा है, कि हम परमपिता परमात्मा की आभा में रत्त हो जाएँ। परन्तु जब मैं अग्रणीय बनने के लिए तत्पर होता हूँ, तो मानो मुझे आश्चर्य, आधुनिक काल के जगत् में दृष्टिपात करता रहता हूँ, निहारता रहता हूँ। आधुनिक काल में आधुनिक काल का जो समाज है, अथवा चाहे वह राष्ट्रवाद में हो, चाहे राष्ट्र की प्रतिनिधि बन करके रहो। परन्तु देखो, वह अपने में याग कहलाता है। वह अपने में यागां भविते देवां वह याग के रूप में रहता है। तो हमें याग को दृष्टिपात नहीं करना है। हमें यह विचारना है कि हम अपने में यागां भविते देवां हमारा वह काल बड़ा भव्य काल था। जिस काल में आचार्य ने घोषणा की है। उस घोषणा का आचार्य अपने में पालन करते हैं, और उसके पश्चात् वह यागां भविते देवां वह याग में परणित हो जाते हैं। तो इसीलिए मैंने बहुत पुरातन काल में यह वाक् पुनरुक्ति देते हुए भी कहा था क्या ब्रह्मो वाचो ब्रह्मलोकां हिरणायं रथा गायन्तो सम्भवा देवाः। मेरे प्यारे! देखो, जब यह वाक् जब स्मरण आता रहता है, मैं पूज्यपाद गुरुदेव को परिचय देता रहता हूँ।

आधुनिक काल में मैंने बहुत सी चर्चाएँ की हैं। परन्तु मुझे देखो, उनकी उन चर्चाओं में कुछ बड़ी भ्रामक वार्त्ताएँ प्राप्त हुई। जैसे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कल हनुमान जी की चर्चा कर रहे थे। हनुमान जी ने इस सूर्य विद्या को निगलने का प्रयास किया और वह

निगली भी गई, परन्तु उसकी भौतिकता के ऊपर विचार विनिमय करना यह प्रायः हमारा कर्त्तव्य रहता है।

जहाँ मैं राष्ट्रवाद की चर्चा करूँ, जहाँ घृणित वाक्यों की चर्चा करूँ, वहाँ द्वितीय भाव हुए बिना नहीं रहता। तो विचारना यह है पूज्यपाद गुरुदेव को मैंने कई काल में वर्णन किया है कि आधुनिक काल का जो समाज है, वह बड़ा विचित्र है। जहाँ हनुमान और देखो, गणेश जी विज्ञान में महान थे। अपने में पारायण थे, अपने में जो पारायण होता है, वह कुछ उसमें गुणों की कृतिकाएँ होती हैं। सब गुणों की कृतिकाएँ होनी चाहिए, उनका आहार बृहे आहार पृथ्वी आहार वाचम् ब्रह्मारिक्तो यह आभा में परणित करने वाला समाज बेटा! अपने में अपने को समाहित करना चाहता है।

परन्तु विचार विनिमय क्या देता चला जा रहा था बेटा! सम्भवाः वाचन्ननमाः सम्भवाः वाचः न स्वस्ति रुद्रदेवा भविते देवाम्। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक समय यह कहा था हे पुत्रों! हे यागां भविते रुद्रां वचन सम्भवाः पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराया था प्रायः ऐसा नहीं है, जब मैंने इनसे एक प्रश्न किया था कि भगवन्! आधुनिक समाज हनुमान को वानर के रूप में जो एक पशु के तुल्य रूपी संज्ञा प्रदान की जाती है, उनके बहुत ऊर्ध्वा के रंग रंगने वाली सृष्टि भी कहलाती है। तो कहा प्रभु! यह कहाँ तक है?

कागभुषुण्ड जी को यह कहते हैं कि वह कागा वह पक्षी था। उन्होंने, राम ने अपना तरकस उसके पक्षी के निचले भागों में स्थापित किया था। क्या भगवन्! यह कहाँ तक यथार्थ है! तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यह निर्णय देते हुए कहा कि हनुमान, पवन पुत्र कहलाते थे, अञ्जना का पुत्र, परन्तु देखो, वह कैसे कैसे उन्होंने जन्म थे और वह कदापि भी पशु नहीं हो सकते।

वह प्राणी मानो वह मानो बुद्धिमान विज्ञान में रत्त रहने वाला जो विज्ञान रत्त रहने वाला हो, राम का वह प्रिय सखा हो, मन्त्री रहा हो जो देखो, उनका सखा प्रहे, जिस समय लंका को उन्होंने विजय किया था, तो लंका को विजय करने के पश्चात्, उस समय विभीषण राम के समीप आए और राम से यह कहा कि हे भगवन्! आप यहाँ से अब

प्रस्थान करेंगे। आपने बड़ा अनुग्रह किया है। अब मेरे यहाँ अन्न का ग्रहण करो। मैं आप को निमन्त्रण देने आया हूँ। राम की ये इच्छा बन गई थी कि हम ग्रहण कर सकेंगे। परन्तु देखो, जब हनुमान जी उनके मध्य में आ गये, हनुमान जी ने कहा कि इसके पर हम विचार करेंगे। तब देखो, उन्होंने ऐसा कहा तो राम अपने वाक्यों को आगे को उच्चारण नहीं कर सके, तो उस हनुमान जी से राम ने एकान्त स्थली में यह कहा कि तुमने ऐसा क्यों कहा हनुमान जी? उन्होंने कहा, भगवन्! ये राष्ट्रीयता है। इसमें राष्ट्रीयता कहलाती है।

यदि आप भोजन के लिए निमन्त्रण स्वीकार करते हैं और आप यह स्वीकार न करें। विभीषण हमारा मित्र ही बना रहेगा। यह भी स्वीकार न करो हो सकता है कि इसका कुटुम्ब लंकापति स्वामी समाप्त हो गया हो। कुटुम्ब समाप्त हो गया हो। उसको मोह भी आ सकता है। तो इसीलिए भगवन्! आप मानो देखो, इस निमन्त्रण को स्वीकार न करो। राम ने उस वाक् को स्वीकार कर लिया। राम ने कहा, लक्ष्मणं भविते देवां वाचो नमः देवा वृत्ति मानो राम ने कहा हे लक्ष्मण! अस्सुतम् हनुमान जी तो बड़े बुद्धिमान हैं। बड़े कुशल हैं। मानो पुष्पक विमान को ले करके चले आए, वह तो लंका में से चले आए विभीषण जी, राम अपनी अयोध्या को चले गये। उसी काल में ऐसा मुझे स्मरण है कि हनुमान जी को उन्होंने अपना सर्वोपरि मन्त्री, अस्सुतो वाचकृताः मानो देखो, उसको उस प्रकार की उपाधियाँ राम ने प्रदान कीं।

तो विचार विनिमय क्या? परन्तु आधुनिक काल का जगत् ऐसा विचित्र है कि हनुमान जैसे महा बुद्धिमान को, जो समुद्रों के तटों पर यन्त्र से भ्रमण कर सकता हो, जो सूर्य की किरणों के साथ सूर्य में गमन कर सकता हो, चन्द्रमा की कांति के द्वारा जो चन्द्रमा में गमन करता हो, उससे ऊर्ज्वा को पाने वाला हो, ऐसे को प्रभु के तुल्य कहा जाता है उसको पशु संज्ञा प्रदान की जाती है। तो जब मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा, प्रभु! यह ऐसा खिलवाड़, महापुरुषों के लिए हो रहा है। मानो देखो, महर्षि कागभुषुण्ड जी अपने में कितने महान प्राण विद्या पर उनका कितना अधिपथ्य था।

एक समय महर्षि वशिष्ठ और माता अरुणधती जैसे महानतम प्राण की विद्या को जानने

के लिए प्राण को अपने में जानने के लिए, देखो, उसके समीप गएं और विद्या का अध्ययन करते रहे। इस प्रकार लोमश इत्यादि की चर्चाएँ आती रहती हैं। मुझे स्मरण आता रहता है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराया और मैं भी परिचय ही देने आया हूँ और वह परिचय यह है कि महापुरुष को जैसा हो वैसा उसी को स्वीकार करना चाहिए।

कागभुषुण्ड जी जहाँ लोमश के चरणों में अथवा लोमश दोनों अपने में अध्ययन करते रहते थे, माता अरुणधती को महर्षि कागभुषुण्ड जी ने छह माह तक प्राणों की विद्या प्रदान की थी। वशिष्ठ को, विश्वामित्र को भी उन्होंने प्राण विद्या प्रदान की। प्रतिष्ठा का ज्ञान कराया। यह प्राण क्या है? तो एक समय माता अरुणधती ने महर्षि कागभुषुण्ड से कहा क्या हे ऋषिवर! आप इसका नाग प्राण को कहाँ समावेश करेंगे योगाभ्यास में। उन्होंने यह कहा कि नाग प्राण को देवदत्त में समावेश कर दूंगा। और उन्होंने कहा कि देवदत्त को, धनञ्जय में समावेश करूँगा। और धनञ्जय प्राण को कृकल उद्गीतों में मैं प्रदान करूँगा। नाग, देवदत्त धनञ्जय कुरु, कृकल को एक दूसरे में जब ओत प्रोत हो करके, एक प्राण प्रतिष्ठा बन करके प्राण में और अपान में, अपान को व्यान में व्यान को समान में और समान को देखो, उदान में प्रवेश करके ही जब योगेश्वर अपनी आभा में पवित्र बन जाता है तो इस प्रकार प्राण प्रतिष्ठा हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने प्राणों की अभी अभी प्रतिष्ठा का वर्णन किया। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे जब मैं योगाभ्यास में रमण करता था तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इसी प्रकार मनकों को पिराते रहते थे। हम सूत्र में सूत्र को अपनेतव को सीमित बनाते रहते थे। तो इसी प्रकार यह जगत् बना हुआ है। अब जब मैं इन वाक्यों को लेता हूँ, कि वह कितने बुद्धिमान थे वह कितनी प्राण प्रतिष्ठा को जानने वाले थे, परन्तु आधुनिक काल यह कहता है, कि वह तो कागा थे। वे कागा जब कहते हैं, तो मेरा अन्तरात्मा दुखित होता है। हे भोले प्राणियो! आज तुम अपने महापुरुषों को जैसे थे वैसे ही स्वीकार करो। तो उसमें इनकी महानता है। तुम्हारा यथार्थवाद है। मानो देखो, उसी से तुम्हारा जीवन पवित्र बन सकता है। मैंने इनके दर्शनों की आभा में जब मैं परिणित होता रहता हूँ, तो

मुझे पूज्यपाद गुरुदेव का जीवन भी स्मरण आता रहता है, वनों में इसी प्रकार का क्रियाकलाप होता रहता है।
परन्तु आज मैं दूर न जाता हुआ, आज मैं मानो कुछ कुछ विज्ञान की यागों की चर्चा करता चला जाऊँ। आज इस समाज में इस आधुनिक काल में जो रूढ़ियों का एक समूह बना हुआ है मैं उनके ऊपर कुछ अपना विचार देना चाहता हूँ।
ये जो नाना प्रकार की रूढ़ियाँ हैं, इस मानो कणाद के भवन में जहाँ यागों की और विज्ञान की चर्चा करते रहते हैं, जहाँ महर्षि गौतम मानो न्याय की चर्चा करते रहते थे, जहाँ व्यास मुनि वेदान्त की चर्चाएँ करते रहते थे, जहाँ महर्षि जैमिनी अपने में दर्शनों का अभूभा स्वस्तम् पठन पाठन करते रहते थे। परन्तु जब मैं इनके उस भव्य जगत्, भव्य भवन के ऊपर विचार विनिमय करता हूँ। तो मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह परिचय देता हूँ, कि आधुनिक काल में उन दर्शनों को न लेकर के, पतंजलि का अनुशासन न ले करके, नाना प्रकार का रूढ़िवाद बना हुआ है। यहाँ रूढ़िवादों का अभिप्राय परम्परागतों से खंडन करता रहता हूँ, और उसका मण्डन भी करता रहता हूँ और जब खंडनीय खंड खंड होते हैं, तो उसको प्रतीत होता है, कि तू कहाँ था। तो इसलिए मैं यह राजा के राष्ट्र आज के राष्ट्र नायकों के द्वारा जब मैं प्रवेश करता हूँ, तो मुझे आश्चर्य तो होता ही है। वह धर्म को भी नाना धर्म कह रहे हैं। रूढ़ियों के कारण नाना धर्मों की प्रतिभा लेते हैं। अरे, जब भोले प्राणियो! एकोकी वचन है देखो, धर्म द्वितीय वचन नहीं है। यह जो धर्म है, यह एकोकी वचन है। धर्म सदैव बना रहता है, धर्म अपनी स्थलियों में महान बना रहता है। इसलिए धर्म ही मानव का जीवन है, धर्म ही मानव की प्रतिष्ठा कहलाती है, परन्तु जब मैं इन विचारों को लेता हूँ, कि राष्ट्रनायक नाना धर्मों को उच्चारण करता है, क्योंकि धर्म एकवचन है, धर्म एकवचन है, परन्तु नाना धर्म उच्चारण करने वाला राष्ट्र को भस्म कर देता है। वह राष्ट्र को भस्म कर रहा है, राष्ट्र की सभ्यता को नष्ट कर रहा है। यौगिकवाद को वह नष्ट करने में लगा हुआ है। जितने भी नाना प्रकार के काना वाले हैं। मैं इन गुरुओं की काना वाले कहा करता हूँ इन रूढ़ियों को। काना वाले वे होते हैं क्या कान में कोई वाक् प्रकट किया, और कानामयी

हुई और शिष्य गुरु का बन जाता है और रूढ़ियों में गुरु यह जानता है कि यह तो नास्तिकवाद का प्रसार कर रहा है, अपने स्वार्थ के साथ अपने लोलुपता के कारण अपने द्रव्य की आभा के कारण। एक राष्ट्रीयता को न अपनाता हुआ केवल अपना ही वाक्य प्रकट कर रहा है। जब मैं यह विचारता हूँ कि वेद में राष्ट्रीयता का वर्णन है, आयुर्वेद का भी वर्णन है, नाना प्रकार की विद्याओं का वर्णन है। रूढ़ि का भी वर्णन है। परन्तु ये जो नाना प्रकार की रूढ़ियाँ बन रही हैं एक दूसरे प्राणी, प्राणी को अपना भोजन बनाना चाहता है। आहार करने के लिए तत्पर है, तो विचार आता है मानो यह विचार आता है, कहाँ क्या वाक् प्रकट कर सकते हैं? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो बहुत ऊँची वार्त्ता उच्चारण करते हैं। परन्तु मैं तो यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ क्या प्रत्येक मानव को अपने जीवन की आभा को अपनाना है। **पाण्डितव यहाँ वेद का पठन पाठन करता है, तो मेरा अन्तरात्मा प्रसन्न हो रहा है। परन्तु यही पठन पाठन, जब द्यौ लोक में आता है, यह कृतिका बन करके रहती है, एक समय वही अणु और परमाणु बन करके रहता है। अणु और परमाणु मानो देखो, पुनः साकार रूप को धारण करता है।** इस प्रकार आज मैं जब इन वाक्यों को उच्चारण करता रहता हूँ, तो हृदय प्रायः गद्गद हो जाता है, और मैं यह कहा करता हूँ, हे परमात्मन्! तू कितना महान है, तू कितना पवित्रतम कहलाता है परन्तु देखो, मैं विशेषता में जाना नहीं चाहता हूँ। विचार यह नाना प्रकार रूढ़ियाँ हैं, इनमें मानो अश्लीलता का भी चित्रण होता रहता है, नाना प्रकार की रूढ़ियों में वेद की प्रतिभा वेद का कुछ अंग है, कुछ नहीं है। परन्तु देखो, वह अज्ञान की प्रतिभा कल्पना बनी हुई है। वह अज्ञानता की कल्पना मानव को अज्ञान में ले जाती है। जैसे मानो आचार्य कुल में ब्राह्मण। आचार्य कुल में ब्रह्मवेत्ता तपा हुआ है, तो उसके अनुसार ब्रह्मचारी अपना क्रियाकलाप करके अपने विद्यालय को ऊँचा बनाता है। परन्तु इसी प्रकार जब हम इन विचारों को लेते हैं, तो हृदय प्रायः गद् गद् हो जाता है। हृदय में वह तरंगें जागरूक हो जाती हैं। जिन तरंगों को हम परम्परगतों से ही उत्सुक रहते हैं। परन्तु विचार विनिमय क्या है? आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह परिचय देने आया हूँ कि यह संसार किस आभा में रत्त हो रहा है, किस आभा

में गति कर रहा है, परन्तु जब मैं नाना प्रकार की रूढ़ियाँ रूढ़ियाँ तो ऐसी हैं। जो मानव का ह्रास कर रही हैं। कुछ रूढ़ियाँ ऐसी हैं जो कानावती में अपनी वार्त्ता को प्रकट करते हैं। वह भी तुल्य नहीं है। वे प्रियतम में नहीं प्रतीत होती परन्तु अपनी अपनी आभा अपना स्थान स्थलियों में परिणत रहना चाहिए। परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को टिप्पणी से परिचय करा रहा हूँ। यहाँ जैसे नाना प्रकार की रूढ़ि हैं, जैसे एक मुहम्मद यह भी एक रूढ़ि कहलाती है। देखो, मुहम्मद की रूढ़ि कहलाती है उनमें देखो, न दार्शनिकता है, न प्रतिभा है, न महानता का दिग्दर्शन होता है, केवल ऐसा एक क्रियाकलाप आभा में निहित हो रहा है। आज जब मैं यह विचारता हूँ यह समाज कहाँ चला गया है। हे राजन्! तू अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना है तुझे, तो महानता से क्रियाकलाप करना होगा। और महानता की ज्योति जीवन का सार कहलाता है। इसी प्रकार आज जब हम यह विचारते रहते हैं कि हमारा जीवन इस प्रकार आधुनिक जगत् किस में परणित हो रहा है। आधुनिक जगत में आने के पश्चात् मानव अपनी आभा में निहित हो करके और जीवन की धाराओं का निर्माण करता है, परन्तु वह जो निर्माण है वह तुम्हारा क्रिया में आना प्रारम्भ हो जाएगा। सम्भवाः देवो ब्रह्मा। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को मैं यह परिचय अवश्य देना चाहता हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यहाँ नाना प्रकार के आचार्य सम्मिलान करने के लिए विचार विनिमय करने के लिए, यहाँ आभा में परणित होने के लिए उसमें विद्यमान हुए। परन्तु जब मैं यह विचारता हूँ, कि आधुनिक काल का जो विज्ञान है, राजा है, हे राजन्! तू अपने राष्ट्र को पुनः पवित्र बना, इसके पश्चात्, तेरा जो ये भौतिक याग है यह याग भी ऊँचा बनेगा। इससे यदि हमें ज्ञान नहीं होगा हम क्या जान पाएँगे। इसलिए हमें वैदिक साहित्य का ज्ञान होना चाहिए। जिस ज्ञान के द्वारा मानव अपने में पवित्रता को धारण करके जीवन को ऊर्ध्वा में पहुँचता है। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैं व्याख्या करने नहीं आया हूँ। मैं आपसे परिचय देने के लिए आया हूँ। यहाँ मोहम्मद के मानने वाले हैं वे बड़े विचित्र हैं, इसी प्रकार बुद्ध को मानने वाले हैं वह विचित्रता से उपराम मानो देखो, इस प्रकार, जब विचार आता है उन्हीं विचारों में रत्त रह करके, मानव अपने जीवन को ऊँचा बनाता हैं, पवित्र बनाता है

जिससे उसकी धारा, एक महानता में परणित होती चली जाएं। अब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मैं आपको देखो, उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ, मेरे पूज्यपाद जब गृह में प्रवेश होते हैं। उस समय क्रोधाग्नि की प्रतिभा का जन्म हो जाता है। तो इस प्रतिभा का जो जन्म है यह नही अर्पित रहना चाहिए। तो विचार विनिमय क्या है? मानो देखो, उस आभा का निर्माण, उसकी पवित्रता उसकी धारा के ऊपर विचार उसकी महानता एक दिग्दर्शनों वाली कहलाती है।

तो आओ मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कुछ वाक् प्रकट करूँ। हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! आपने कई काल में मुझे कई वार्त्ताएँ प्रकट कराईं। उन वार्त्ताओं का जो स्रोत है, वह केवल आप ही माने जाते हैं। परन्तु देखो, क्रियाओं का जो सम्भूति ब्रह्मवाचा है वह अपने में रत्त रहने वाला है इसी प्रकार मैं विशेष चर्चा नहीं, विशेष वार्त्ता नहीं, केवल अपने वाक् इस प्रकार उच्चारण करने के लिए, जैसे मानव का जीवन अग्नि की धाराओं में रत्त रह करके उसका परमाणु का स्वरूप बन जाता है। इसीलिए परमाणु का स्वरूप बन जाना, बहुत अनिवार्य है। ये प्राणतव कहलाता है। परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, जहाँ मोहम्मद के मानने वालों के ऊपर, इतनी प्रतिभा का आघात हुआ, परन्तु आक्रमण हुआ, वह कैसे ऊँचा हो सकता है। उन्होंने कहा प्रभु! यथार्थतम देवो! अब देखो, यह जो उच्चारण किया तो है अपनी स्थलियों में आ गये। परन्तु अपने जीवन को ऊँचा बनाने में, सदैव तत्पर लगे हुए हैं, तत्पर होना भी चाहिए। जिससे जीवन एक मर्यादा में परणित हो करके हमें सुखद बनाता है। हमें मानव कृतियों में रत्त करा देता है। तो विचार क्या है? यहाँ मोहम्मद के मानने वाले हैं। उनका भी राजा को एक भय की प्रतीति लगी हुई है। इसी प्रकार प्रभु प्रहा अस्ते जब मधु प्राप्त हुआ तो इससे यह सिद्ध हुआ क्या आज जो हैं सम्भूति कहलाते हैं। आप राजन्! जब ही कहलाते हैं आज इसके ऊपर विचार विनिमय करते हुए हम किसी प्रकार का संकोच हमे नही हो रहा हैं। परन्तु देखो, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को कई काल में यह प्रकट कराते हुए कहा था, क्या हे प्रभु! यह राष्ट्र कैसे ऊँचा बन सकता है? तो पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा कि वेशभूषा और अपनी संस्कृति दोनों ही विनाश के मार्ग पर हैं, दोनों ही विनाश की धारा

को अपना रहे हैं, तो इसीलिए आज मैं यह उच्चारण करने अवश्य आया हूँ कि किसी के प्रति किसी की शत्रुता हो, परन्तु अपनी वार्त्ता को वहीं अपने जीवन में सीमित कर लेना चाहिए। विशेष चर्चाओं में जाना भी नहीं चाहिए। विचार विनिमय क्या है? आज मैं तुम्हें यह विचार दे रहा हूँ, कि पूज्यपाद गुरुदेव के वाक्यों की पुनरूक्ति कर रहा हूँ। हे यज्ञमान! हे उद्गान गीत गाने वाले ब्राह्मणजन! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे! यज्ञमान अपनी धाराओं में महानता का दर्शन करता रहे। इसी प्रकार जब मैं इस प्रकार के वार्त्ताओं को प्रकट करा रहा हूँ, तो तुम अपने जीवन में, उन वाक्यों को धारण करो, जिससे तुम्हारा विच्छेद हो गया है, कुछ वाक्यों का वाक्यों से विच्छेद हो जाता हैं, यह वाक्य और क्रियाएँ अपनी आभा में सदैव रत्त रहती हैं। सदैव सदैव निहित रहती हैं। जिसको जान करके हम अपने जीवन का एक अंग बना लेते हैं। परन्तु विचारना यह है कि हम मानव को अपना अंग लेते हैं परन्तु जब यह वार्त्ता आती हैं शोभाम् वृहे वाचाम् ब्रह्मावाचाः तो सोम की प्रतिभा समाप्त हो जाती है। तो परिणाम क्या है कि हम अपने जीवन को ऊँचा बनाने में सदैव लगे रहें। जीवन को ऊँचा बनाएँ और जीवन एक सार्थक बन करके हमारा जगत् से प्यार होने वाला बने, परन्तु इस प्रकार की विचारधाराएँ, हमारे मानवीय मस्तिष्कों में प्रायः होती रहती है। और उन दर्शनों की आभा को हम सदैव पान करते रहते हैं। इसी प्रकार आज का हमारा वाक् मोहम्मद के मानने वाले कहते हैं कि याग एक पाखण्ड है। और भी धर्मावलम्बी कहते हैं, कि हम याग को पाखण्ड स्वीकार करते हैं।

तो विचार आता है कि याग पाखण्ड नही है। तो विचार आता है कि याग पाखण्ड नहीं है याग तो देखो, यहाँ पितर लोकानाम् भविते पितर लोक में अपनी आभा को जान करके, और उसे ऊर्ध्वा में गति करने के लिए मानव सदैव तत्पर रहे। तो इसी प्रकार आज का हमारा यह जो वाक् की प्रतिभा है, यह हमें किसी मार्ग के लिए हमें प्रेरित करती चली जा रही है। और वह प्रेरितता क्या है? वह प्रेरितता कि हम देखो, नाना रूपों में रूढ़ियों में न परणित हों। हम अपने हृदयों में विशालता के हृदय वाले बनें। जिससे हमारा जीवन वेद की कोटि को लेकर के हम संसार में वेद और याग को

अपनाते हुए पुनः से यह मनु जी का काल आ जाएँ, पुनः से यह मनु राष्ट्र बन जाए। जिस राजा के राष्ट्र में एक दूसरे का ऋणी नहीं था। एक दूसरे का ऋणी नहीं रहना चाहिए। याग जैसे कर्म को एक पुरुष कहता देखो, अपने वशीभूत में देखो, क्या यह याग पाखण्ड है? परन्तु देखो, पाखण्ड की व्याख्या मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से बहुत पुरातन काल में कराई। पाखण्ड का पाखण्ड खण्डनीय गच्चतम् यह हमारा आज का विषय नहीं है। आज हम देखो, अपने वाक्यों में दूर चले गएं हैं। तो विचार यह देना है, विचार यह उच्चारण करना है कि जीवन की धाराएँ एक सूत्र में रमण करनी चाहिए। हम नाना प्रकार के गुड़म्बाद में, नाना प्रकार के देखो, रूढ़ियों में अपने को समाप्त न करें। यह जो नाना रूढ़ियाँ होती हैं रूढ़ियों का जो चलन है यह राष्ट्रीय समाज को देखो, भ्रष्ट कर देता है। यह पवित्र नहीं रहता है इसलिए रूढ़ि को त्याग देना चाहिए ये रूढ़ि मानव का द्यौतक नही है। मानव इसका द्यौतक बना हुआ है। परन्तु देखो, इस विचार में न जाता हुआ इस विचार में इस प्रकार की वार्त्ताएं न प्रकट करना यह हमारे शोभनीय नहीं है।

परन्तु आओ मैं आज दो वाक् प्रकट करा सकूँ सम्भूति ब्रह्म लोकाम् यह जो नाना प्रकार के जो लोक लोकान्तर हैं यह रूढ़ि वार्त्ता में मानव को परिणाम के क्षेत्र में तो ले ही जाते है। परन्तु बृहे सम्भो गातम बृही वाचा नमो परब्रह्म पृहे वाचाः सम्भवो लोकाम् वाचन्नमे सम्भवाः। हे यज्ञमान! तेरे जीवन की धाराएँ पवित्र होती हैं, तेरा यह जो द्रव्य है वह सुकर्म में लगा रहे, सुकर्म में उसकी गति और प्रतिष्ठा होनी चाहिए। तो इस प्रकार मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव की आज्ञा को पाना चाहता था परन्तु देखो, मैं उनके हृदय को जानता, प्रतिवस्तो, तो जब मैं विचार ले करके आया तो वह विचार एक महान महापुरुषों के विचार रहे। जिसके ऊपर मानव आज से नहीं परम्परागतों से अनुसन्धान कर रहा है। विचार रहा है कि यह संसार इस प्रकार क्यों है? परन्तु देखो, रूढ़ियों के आने पर, उनका अन्तरात्मा शान्त मुद्रा में परणित हो गया। परन्तु जहाँ ये वाक्य आता है क्या शान्त मुद्रित होना, रजोगुणी मुद्रित होना, परन्तु ये अपने तक ही सीमित नही रह पाता यह महान् ज्योति वाला भी नहीं बन पाता, तो इसलिए नाना

प्रकार की रूढ़ियों में, मानव को परणित नहीं होना चाहिए। जब मैं यह विचारता रहता हूँ, कि ये तो नहीं होना चाहिए। और क्या होना चाहिए? तो पितरोभवाः सम्भवे लोकाम् भविवाचाः लोकाम् देवम् ब्रह्मयाचक बुद्धि जहाँ गृह अपने गृह से आईस्त्नम् सचिताम् देवाम् वाचान्नमो देवो गृहस्थम्। तो मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव की प्रतिभा को लेना नहीं चाहता हूँ। उनके वाक्यों की केवल में यह उच्चारण कर रहा हूँ। कि हे राजन! आज का जो राष्ट्रवाद है, शिक्षाप्रणाली है, पद्धति है, उसमें एक धर्म का प्रसार होना चाहिए, और यह धर्म नाना नहीं होते, धर्म केवल एक होता है एक ही वचन कहलाता है। यह धर्म अपनी आभा में निहित रहता है। इस प्रकार का जो विचार है यह मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को पूर्वकाल में भी प्रकट किया है। आधुनिक काल का जो विज्ञान है, आज मैं विज्ञान के युग में ले जा रहा हूँ। परन्तु जो मानव यह कहता है कि याग पाखण्ड है यागों की कृतिका देखो, नहीं जानते। हे भोले प्राणी! यदि याग पाखण्ड है तो फिर पाखण्ड की कौन सी वार्त्ता है, संसार में इसको पाखण्ड नहीं कह सकते। दृष्टम् शुद्धिकरण कह सकते हैं।

पुरातन काल में राजा रावण के राष्ट्र की चर्चाएँ मैंने पूज्यपाद गुरुदेव से महाराजा अश्वपति के यहाँ प्रायः गृह गृह में याग होता था प्रातःकालीन और वह राष्ट्र पवित्र और देवतव कहलाता है। वह देवताओं की पुरी बन करके रहते हैं, परन्तु देखो, जब इस प्रकार उन्होंने अपना उद्गार प्रगट किया, तो उद्गार देते हुए उनका हृदय अस्तो ब्रह्मवाचो देवाहाम हृदय वाचपृही लोकाम्। वह सत्यग्राही होना चाहिए, सत्यग्राही होना चाहिए क्योंकि विज्ञान अपने में अद्वितीय नहीं हुआ है। मानो उसमें अधूरापन है। परमाणुवाद अग्नि के परमाणु को अग्रणीय बनाया, जल के परमाणुओं को अपने अग्रणीय नहीं बनाया। परन्तु देखो, आपो जलम भ्रातीवासम् भवे। अपने में निहित होने वाला अमूल्य जगत् कहलाता है। पूज्यपाद गुरुदेव को मैंने कई काल में यह वाक् प्रकट करते हुए कहा था, कई वाक् कहे चाहे यह समाज, यह राष्ट्रवाद अपने में नष्ट होना चाहता है। परन्तु देखो, मैं यह कह सकता हूँ यह सम्भवाः देवम् दधि ब्रह्म लोकाम् यह ब्रह्म लोकाम् कहलाता है, वाक् कहलाता है तो इस प्रकार आज का हमारा यह वाक् हमें बुद्धिमान

और प्रेरणा के सूत्रों में ले जा रहा है। उन प्रेरणामयी सूत्रों को हम अपने में धारणा करने वाले हो। परन्तु देखो, वह धारणा अपने में समाधि बन करके रहती है। तो विचार विनिमय क्या है कि हम परमपिता परमात्मा की आभा, परमात्मा के गुणगान गाना, यह हमारा प्रायः कर्त्तव्य कहलाता है।

सबका एक ही तारतम्य है कि प्रत्येक मानव को निष्काम कर्म करना चाहिए। निष्काम कर्म ही मोक्ष की पगडण्डी कहलाती है, वह मोक्ष की पगडण्डी है। आहुति से स्वाहा उच्चारण करता हुआ, वाणी पवित्र बन जाती है, वाणी से उसका समन्वय रहता है। परन्तु देखो, इसी प्रकार जब विचार मैंने प्रकट किया तो वह विचार क्या है, यह विचार है मानवीयतव परन्तु देखो, इन विचार को लेकर के हम अपने वाक्यों को अब विराम देना चाहते हैं, परन्तु हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। तेरे जीवन की प्रतिभा महान बनी रहे। तेरा द्रव्य का सदुपयोग होता रहे और द्रव्य एक महान सत्ता कहलाती है। तो परमात्मा से कटिबद्ध रहती है। जो परमात्मा से कटिबद्ध रहती है, परन्तु इसी प्रकार हम अपने विचारों को अपनाने में धारणा में, रूपों में प्रवेश करने के लिए अपने विचारों की धाराओं को लेकर के आएं परन्तु देखो, जहाँ वो धाराएँ पवित्र बन करके अन्तरिक्ष में रमण करती हैं, यज्ञमान वहीं तेरे हृदय में प्रवेश करती हैं। इस प्रकार मैं विशेष चर्चा न देता हुआ मेरे प्यारे! पूज्यपाद गुरुदेव अपना कुछ वाक् क्या देखो, इतना उच्चारण किया पूज्यपाद गुरुदेव मुझे क्षमा करें। अब मैं आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अपने पुनः से कुछ उद्गार दिए हैं। उन उद्गारों के गर्भ में वही एक विडम्बना निहित रहती है, कि हमारा राष्ट्र कैसे महान और पवित्र बने। ये राजाओं की चर्चाएँ करते रहते, परन्तु जहाँ ब्रह्मज्ञान मानव के समीप होना चाहिए। वहाँ यह राष्ट्रवाद की चर्चा करते हैं, परन्तु देखो, राष्ट्रवाद एक अपने में अद्वितीय कहलाता है। राष्ट्रवाद अपने में महानतव कहलाता है परन्तु एक दूसरे सदैव ऊर्ध्वा में क्रियाकलाप होता रहता है। यहाँ क्रियाकलाप ऊर्ध्वा में जब होता रहता है, तो प्रायः जीवन की धारा भी महान बन जाती है। हे यज्ञमान! जैसा मेरे पुत्र ने कहा है, हे यज्ञमान! तेरे जीवन सौभाग्य अखण्ड बना रहे, तो आज मेरा भी ये

कामना। तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। तो अखण्डतव को प्राप्त हो, तो ये आज का वाक् हमारा क्या कह रहा है? परमपिता परमात्मा को अपने में रत्त करना चाहते हैं, अपना देवतव में रमण कराना चाहते हैं, तो ये विचार, अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। इन विचारों के साथ अपने विचारों को, मैं विराम देना चाहता हूँ। विरामाम् भुवि सम्भवे देवों बृहसुता मानो जब देवों की आभा में देवों की कोटि में आ जाता है वह देवता बन जाता है। तो इसीलिए आज का विचार यह हमारा क्या कह रहा है कि हमारा जीवन पवित्र और महान बने और पवित्र धारा को अपनाने वाला बने। ये आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन पाठन। ओ३म् देवाः गा ता रथं मां वायाः। ओ३म् भू रथं माणां। बरनावा।

२० 07 04 1985 पुष्प 46 महर्षि भारद्वाज का महाराज ज्ञानश्रुति को उपदेश

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ परंपरागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महत्ता का वर्णन किया जाता है। वे परमपिता परमात्मा विज्ञानमयी स्वरूप चाहे वह विज्ञान आध्यात्मिकवाद में हो, चाहे वह भौतिक विज्ञान में रत्त रहने वाला हो, परन्तु उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड उसके आयतन के रूपों में परणित किया गया है क्योंकि उसका जो गृह है, उसमें वह वास करता रहता है। इसीलिए प्रत्येक मानव को उस परमपिता परमात्मा के विज्ञान के स्वरूप का वर्णन अथवा अपने में रत्त रहना चाहिए। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा ज्ञान और विज्ञान में रत्त रहने वाले हैं अथवा वह उसका गृह माना गया है।

आज का हमारा वेदमन्त्र कुछ कह रहा है। हमने तुम्हें बहुत पुरातन काल में नाना प्रकार की चर्चाएँ की हैं, क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है अथवा उसका वर्णन कर रहा है। जिस प्रकार माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है। जिस प्रकार यह पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है। इसी प्रकार प्रत्येक वेदमन्त्र परमपिता

परमात्मा की महत्ता का वर्णन कर रहा है उसका गान गा रहा है। इसलिए प्रत्येक मानव को परमपिता परमात्मा का गान गाना चाहिए। क्योंकि संसार में जब ब्राह्मण्ड के ऊपर मानव कल्पना करना प्रारम्भ करता है और इस ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध मं चिन्तन गम्भीर मुद्रित हो करके इसके गर्भ में प्रवेश करता है तो प्रायः यह ब्रह्माण्ड उसका अनुपम दृष्टिपात आने लगता है। हमारे यहाँ पृथ्वी माता को वसुन्धरा के यप में वर्णन किया है और यहाँ वसुन्धरा के नाना प्रार के पर्यायवाची शब्द हैं वसुन्धरा का केवल इतना अभिप्राय है जिसके गर्भ में हम सदैव वशीभूत होते हुए चिरणा करते हैं, जिसमें हम उस रहे हैं। चाहे वह पृथ्वी के रूप में विद्यमान हो, चाहे वह जननी माता के रूप में विद्यामरन हो, चाहे वे परमपिता परमात्मा के स्वरूप में विद्यमान क्योंकि न हो, उसका एक ही मन्तव्य है। तो हम उसमें बस रहे हैं और वह अपने में हमे बसा रही है। इसीलिए हम परमपिता की आराधना करते चले जाएँ।

हे मां! तुझे वेद वसुन्धरा के रूपों में परणित कर रहा है। तुझे वेद वसुन्धरा कर रहा है। नाना प्रकार के पृथ्वी तत्त्वों को जानने वालें ने इस संसार के ऊपर ऊँची से ऊँची कल्पनाएँ की आज मैं उन कल्पनाओं में तो जाना नहीं चाहता हूँ। परन्तु विचार केवल यह कि हम वसुन्धरा के ऊपर चिन्तन करते चले जाएँ। पृथ्वी के गर्भ में जब मानव विद्यमान होता है तब यह वसुन्धरा वन करके नाना प्रकार के खनिजों को देना प्रारम्भ करती है। खाद्य और खनिज पदार्थ को पान करके मानव अपने जीवलन को उद्बुद्ध कर रहा है। प्रत्येक प्राणी मात्र अपने में परणित हो रहा है। अपने में अनुशासित, अपने में प्रतिभाषित हो रहा है। अपने में अनुशासित, अपने में प्रतिभाषित हो रहा है। जब पृथ्वी के गर्भ में जिस भी काल में वैज्ञानिकों ने जाकर के नाना प्रकार के खनिजों को जानना प्रारम्भ किया, खाद्यों को जानने का प्रयास किया, उसी काल में यह माता वन करके अपने में हमें बसा लेती है, अपने में हमें स्वीकार कर लेती है। योगीजन समाधिष्ट हो करके पृथ्वी के गर्भ में जाने के लिए तत्पर रहें।

आज मैं यज्ञों के सम्बन्ध में कोई विवेचना देना नहीं चाहता हूँ। केवल विज्ञान के ऊपर अपनी विवेचना दे रहा हूँ। वह विज्ञान अपने में कितना महान् कितना सार्थक माना गया

है। विचार केवल यह है कि हम माता वसुन्धरा की याचना करते चले जाएँ। आज मैं तुम्हें गाड़ीवान रेवक मुनि के आश्रम में ले जाना चाहता हूँ। जहाँ गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज एक गाड़ी के ऊपर विद्यमान हो करके तपस्या कर रहे थे। वह अपना उद्गीत गा रहे थे, उद्गान गा रहे थे। उस गान को गाने वाला प्रत्येक परमाणु के शब्दों का समन्वय करता रहा है। महाराजा ज्ञानश्रुति तथा नाना ऋषिवर उनके यहाँ अनुसन्धन करते रहे। मैं उसी ज्ञानश्रुति की चर्चा करने चला हूँ। जिस समय ज्ञानश्रुति ने नाना प्रकार की मुद्राओं को त्याग कर के अपना स्वरूप बनपया तो वह गाड़ीवान रेवक मुनि के द्वार पर पहुँचे। गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज ने उनके स्वागतार्थ ब्रह्मज्ञान की चर्चाएँ की। इस ब्रह्मवान की चर्चाएँ इससे पूर्व काल में भी उन्हाँने कीं। आज भी मुझे स्मरण आ रहा है गाड़ीवान रेवक से महाराजा ज्ञानश्रुति ने कहा प्रभु! मैं ब्रह्मज्ञान चाहता हूँ। अपना राष्ट्र मैंने अपने ज्येष्ठ पुत्र को प्रदान कर दिया है। मैं ज्ञान और विज्ञान में रत्त रहना चाहता हूँ। देखा जब हम यह विचारते हैं कि जैसे ब्रह्म का आयतन यह विज्ञानमीय स्वरूप वाला जगत्, विज्ञानमयी स्वरूप वाला वह ब्रह्म हमें दृष्टिपात आता है। तो यह जो शरीर है, यह जो प्राण वंच महाभौतिक तत्त्वों में रत्त रहने वाला ह है यह आत्मा का आयतन है। आत्मा का यह गृह माना गया है। जैसे एक एक परमाणु ब्रह्म का आयतन माना गया है। वह मानव शरीर में आत्मा भी ब्रह्म का आयतन माना गया है इसलिए वह वास कर रहा है। तो जब यह विवेचना आने लगी तो गाड़ीवान रेवक मुनि माहराज ने यह विवेचना प्रारम्भ की।

महाराजा ज्ञानश्रुति ने कहा प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ, जब में नाना मुद्राएँ ले करके आपके समीप आया तो आपने मुझे यह कहा। परन्तु संसार में माया नाना प्रकार की मुद्राओं के बिना राष्ट्र का क्रिया कलाप नहीं चलता, क्रियाशील नहीं हो पाता। याग इत्यादिओं का जो कर्म वह भी मुद्रा के बिना नहीं हो पाता। तो उससे अनभिज्ञ होने को आपने मुझे कहा। गाड़ीवान रेवक ने कहा, कहो राजन्! आपके हृदय में जब यह विचार आया कि मैं ब्रह्मवेत्ता बनना चहता हूँ। हे राजन्! जब तुम्हारी यह जिज्ञासा थी तो द्रव्रू का कोई समन्वय नहीं रह पाता। जब उन्हाँने यह कहा तो महाराजा ज्ञानश्रुति

ने कहा, प्रभु! ज्ञान और माया का प्रायः समन्वय रहता है। मानव का जो शरीर है यह पञ्च महाभौतिक है यह माया के गुणाध्यान कहलाया गया है इसी प्रकार यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड और राष्ट्र में एक ही क्रिया कलाप हो रहा है। महाराजा ज्ञानश्रुति के वापक्य को पान करके गाड़ीवान रेवक ने कहा, हे राजन्! जब तुम मेरे समीप मुद्रा ले करके आए तो ब्रह्म में मुद्रा का कोई समन्वय नहीं होता। रहा विचार यह कि तुम्हारा पथ यह कहता है कि माया कृतियों में भी निष्पद्व हो करके मानव निर्बन्धन हो रके इसमें रमण कर सकता है और तुमने ऐसा वर्णन कराया कि यही जनना चाहते हो। परन्तु मैंने इसलिए क्षुद्र कहा कि तुम ब्रह्मवेत्ता द्यौ को अपनाना चहते थे, स्थापित करना चाहते थे और उस ब्रह्मवेत्ता की इच्छा नहीं है, जब इसकी इच्छा नहीं है तो देने वाला भी क्षुद्र के तुल्य है और यही लक्ष्मी तो चंचल है ही जो मानव को कहीं का कहीं ले जाती है। उन्होंने यह कहा तो गाड़ीवान रेवक मुनि के वाक्यें को पान करके ज्ञानश्रुति मौन होने लगे और उन्होंने कहा, हे राजन्! तुम रथ को सजातीय बना करके तुम रथ को ले करके यहाँ आए तो तुम्हारा मन नाना कृतियों में रत्त रहने वाला नहीं था। महाराजा ज्ञानश्रुति मौन हो गए।

तो विचार क्या मुनिवरों! जब ब्रह्मवेत्ता के समीप पहुँची तो तीन समिधा ले करके जाना चाहिए। समिधा का अभिप्राय क्या? मैंने बहुत परातन काल मं कहा, तीन समिधा वह होती हैं जो आत्मा को चेताने के लिए अग्नि में उद्बुद्ध की जाती हैं, जिन समिधाओं के द्वारा देव पूजा होती है। वर्तमान के काल में जब हम गुरुओं के समीप पहुँचते थे तो तीन समिधा लेकर के जाते। यह विचार करके कि पूज्यपाद गुरुदेव कहीं याग कर रहे होंगे परन्तु याग में तीन सविधा होनी चाहिएँ। तीन प्रकार का कर्म होता है। मेरे प्यारे! ज्ञान, कर्म और उपासना यही तो मानव का जीवन कहलाया जाता है जिससे ज्ञान, कर्म और उपासना में हम रत्त रहें। क्योंकि हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में वेद के तीन शब्दे में वेद प्रतिपादित रहता है जिसे ज्ञान, कर्म और उपासना के रूप में हम सवीकार करते हैं। वही तो वेद की प्रतिभा, वेद की मीमांसा, वेद के सव्रूपों में रत्त रहते हैं। तो विचार आता है जब माहराजा ज्ञानश्रुति के लिए गाड़ीवान रेवक ने यह वाक्य कहा कि

ज्ञानब्रह्मः, वास्तव में तीन समिधा ले करके आचार्य के समीप जाना चाहिए। अभिमान के रूप में तीन ही उपाधियाँ होती हैं। सतोगुण में भी अभिमान के रूप में तीन ही उपाधियों होती हैं। सतोगुण में भी अभिमान होता है, रजोगुण तमोगुणाम तो अभिमान की प्रबलता होती ही है। तो यह ज्ञान, कर्म और उपासन यही तो मानव को ऊँचा बनाती हैं, यही तो मानव को अग्रणीय बनाते हैं। ज्ञानाम् ब्रह्म कृतः वेद का आचार्य कहता है, हे मानव! तू अपने को तीन समिधा में ले करके ब्रह्मवेत्ताओं के समीप पहुँच, जिससे तेरा आत्म कल्याण हो, जिससे तुझे आत्मा के प्रति आत्मा की प्रतिभाषिता होनी चाहिए।

महाराजा ज्ञानश्रुति बोले कि! आज तो हमारी इच्छा यह है कि कहीं भ्रमण करें। तो महाराजा ज्ञानश्रुति और गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज, देनें ने वहाँ से गमन किया। पीपल की समिधा ले करके वहाँ से उन्होंने गमन किया और भ्रमण करते हुए महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज के आश्रम में पहुँचे। महर्षि भारद्वाज अनेक उपाधियों के रूप में परणित हुए हैं भारद्वाज, विज्ञान में जो पारायण हैं वह उपाधियों को प्राप्त होते रहे हैं। वह ज्ञान और विज्ञान में रत्त रहने वाले, भारतद्वाज एक वंश माना गया था। ब्रह्मा के पुत्रों! से जिसका निकास हुआ था। ब्रह्मा के पुत्रों! से निकास होने वाला ऐसा मुझे स्मरण है इस सम्बन्ध में कि ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा थे। अथर्वा के पुत्र का नाम रोहिणी कृतवाची था। वाची के पुत्र का नाम स्वातिक था और स्वतिक के पुत्र का नाम गुणीवाचकेतु था। उनका जो वंश था, वह अथवा का जो वंश था, ब्रह्मा के पुत्र का वह लगभग इक्कीस हजार वर्ष तक, उसके पश्चात् उसका परिवर्तन हुआ। वह वायु गोत्र में परिवर्तित हो गया और वायु गोत्र में भी उन्नीस हजार वर्ष्ज्ञ के पश्चात् उसका परितर्वन हरिदत्त गोत्र में हो गया। हरिदत्त गोत्र का जो वंश इक्कीस हजार पांच सो पांच वंश समाप्त हुए। हरिदत्त गोत्र का निकास भारद्वाज गोत्र में हुआ, भारद्वाज गोत्र में उसका परितर्वन हुआ हैर परितर्वन हो करके यह सब उपाधियाँ प्रारम्भ हुईं। भारद्वाज वह कहलाया गया जो विज्ञान में पारायण होगा। तो महाराजा ज्ञानश्रुति और गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज, उन्होंने वहाँ से गमन किया और भ्रमण करते हुए वह भारद्वाज मुनि के

आश्रम में आ पहुँचे।

भारद्वाज मुनि महाराज ने उनका स्पागत किया और स्वागत करने के पश्चात् उन्हाँने कहा कि कहिए भगवन्! मेरे लिए कया आज्ञा है? गाड़ीवान रेवक मुनि ने कहा, तुम्हें यह प्रतीत है कि मैं इस संसार का भ्रमण नहीं करता। उन्हाँने कहा भगवन्! कौन कहता है कि आप भ्रमण नहीं कर रहे हैं? गाड़ीवान रेवक मौन हो गए। उन्होंने कहा, आप तो भगवन्! हृदय रूपी गुफा मे विद्यमान हो करके संसार का भ्रमण कर लेते हैं। परन्तु यह नहीं कि तुम पगों से भ्रमण करो। तुम्हारी जो अन्तरात्मा जिसमें पग प्राण बन करके क्रिया कलाप करता है, अपने अन्तर्हृदय में प्राण और मन को एक ही सूत्र में पिरो करके इस ब्रह्माण्ड में भ्रमण कर लेते हैं। जितना भी प्रकृति का यह मण्डल है चाहे वह चित्त का मण्डल हो, चाहे वह परमाणुवाद का मण्डल हो, चाहे वह अग्नि का मण्डल हो उसमें तुम भ्रमण कर लेते हो। गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज मौन हो गए। वह नतमस्तक हो गए, उन्होंने कहा, गाड़ीवान रेवक! तुम जानते हो ऋषिवर! हमारे वंश के सम्बन्ध में भी जानते हो।

परन्तु भारद्वाज मुनि ने कहा, भगवन्! आपका पदार्पण कैसे हुआ? मेरे प्यारे! ऋषि ने कहा, महारजा ज्ञानरुति मनु वंश उनका माना गया है। महाराजा ज्ञानश्रुति से कहा कि कहो राजन्! मेरे लिए कोई आज्ञा है? उस समय राजा ने कहा कि यही आज्ञा है, आप मुझे राष्ट्र की उपाधि न प्रदान करें, मुझे राजा कहकर आप सम्बोधित न करें। उन्होंने कहा, ऐसा इसलिए क्योंकि राष्ट्रीय आभा में अभिमान होता है, मात्रा ममतावाद होता है। भगवन्! मैं तो नम्र बन करके प्रभु का पुत्र बनना चाहता हूँ। मैं प्रभु के राष्ट्र में आ गया हूँ, जिसके राष्ट्र में मेरा निकास नहीं हो सकता। कितने भी जन्म जन्मातर मेरे व्यतीत हो जाएँ परन्तु मैं इस राष्ट्र से दूरी हनीं जा सकता। मैं आपसे यही चाहता हूँ। आप मुझे भगवन्! राजा सम्बोधित न कीजिए। महिर्षि ज्ञानश्रुति के निरभिमान नम्र वाक्यों को पान करके चकित हो गए। उन्होंने कहा, धन्य है राजन्! उसको क्या उपाधि प्रदान करूँ? उन्होंने कहा, भगवन्! आप मुझे का पुत्र उच्चारण करके सम्बोधित कीजिए। उस समय भारद्वाज मुनि ने कहा, आप तो धन्य हैं। आप वास्तव में आध्यात्मिक जिज्ञासु हैं,

आत्मवेत्ता बनने के जिज्ञासु हैं।

यह उच्चारण करके उन्होंने कहा कि हे जिज्ञासु! उच्चारण कीजिए कि मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ? क्योंकि हमारे यहाँ परम्परा का एक वाक्य है, दर्शनें का एक विचार है कि द्वार पर कोई प्राणी आ जाए तो उसका स्वागत करना है, उसका आतिथ्य करना है। अब मैं आतिथ्य करने के लिए तत्पर हूँ, जो आपकी इच्छा हो। उस समय गाड़ीवान रेवक मुनि के सहित जो ज्ञानश्रुति थे, ज्ञानश्रुति ने कहा कि भगवन्! मैं यह चाहता हूँ कि मेरे हृदय की तीव्रता बलवती हो जाए। उन्होंने कहा, बहुत प्रियतम। तुम्हारी बलवती अवश्य रहेगी। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ भगवन्! मेरे हृदय में यह पिपासा जागरुक हुई कि मैं ब्रह्मवेत्ता बन करके अपने पूर्वजों के चित्रों में रत्त रहना चाहता हूँ। उन्होंने कहा, तुम इस पृथ्वी मण्डल पर हो, तुम यह जानना चाहते हा कि मैं यागों के द्वारा अपने पूर्वजों का दिग्दर्शन करूँ। तो आओ मैं तुम्हें यन्त्रों में ले जाना चाहता हूँ जो मैंने अब तक भरण किया है वैज्ञानिक यन्त्रों का मैं उस यन्त्रवाद में तुम्हें ले जाना चाहता हूँ। उन्होंने कहा, बहुत प्रिय।

तो मुनिवरों! महाराजा ज्ञानश्रुति गाड़ीवान, रेवक मुनि महाराज को अपनी यज्ञशाला में ले गए। महाराज भारद्वाज मुनि महाराज के यहाँ द्विकोणों से ले करके चौबीस कोणों तक की एक यज्ञशाला थी। यज्ञशाला में ले गए। उन्होंने कहा प्रभु! मैं विज्ञान के काल में जब प्रवेश करता हूँ तो प्रारम्भ में याग करता हूँ। उन्होंने याग प्रारम्भ किया और कहा आओ भगवन्! तुम याग का प्रारम्भ करो। कोई अतिथि मेरे यहाँ आता है तो मेरी यही परीक्षा होती है कि यागों में मेरी निष्ठा है। तो मेरे प्यारे! महाराजा ज्ञानश्रुति, गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज याग का प्रारम्भ करने लगे। नाना प्रकार का साकल्य ले करके कामधेनु का गो घृत ले करके वह याग करने लगे। जब याग करने लगे तो भारद्वाज मुनि महाराज ने एक यन्त्र निश्चित कर दिया और यन्त्र में उसकी छाया आने लगी। स्वाहा उच्चारण करते तो उनके चिन्ह यन्त्र में दृष्टिपात आते। वह यन्त्रों में शब्दों के साथ में आते। एक शब्द के साथ में इतना परमाणु गति कता है जितने परमाणुओं से माता के गर्भ में शिशु का निर्माण हो जाता हैं अथवा बालक का निर्माण हो जाता

है। हम जैसे शिशुओं का निर्माण हो जाता है। हम जैसे शिशिओं का निर्माण हो जाता है। तो उसी शब्द को भारद्वाज मुनि की यज्ञशाला में यन्त्रों में हम दृष्टिपात कर रहे थे। तो ब्रह्मचारी सुकेता वहाँ आ पहुँचे। ब्रह्मचारी सुकेता ने कहा प्रभु! यह हमारा परिश्रम किया हुआ विज्ञान हैं यह विज्ञान की उपलब्धि कहाँ से हुई? विज्ञान की उपलब्धि हमें कहाँ से प्राप्त होती है? इस प्रकार की चित्रावलियों की धाराओं का जन्म कहाँ से होता है, वैदिक ध्वनि से होता है। शब्द ध्वनित होता हुआ ध्वनि दे रहा है परन्तु उसमें कया परमाणु है? जो ध्वनि से अपने में यह विचार लेता है कि यह अमुक प्राणी है। परन्तु उस ध्वनि में ही चित्र विद्यमान है। उस ध्वनि में ही वह विद्यमान रहता है। उसी प्रकार हमने यह विचारा कि जब माता के गर्भस्थल में शिशु का प्रवेश हुआ तो एक बिन्दु विद्यमान है जो परमाणु का हजारवां भाग भी उस बिन्दु से भी सूक्ष्म था वह विद्यमान है। शिशु विद्यमान है। उस शिशु का निर्माण माता के गर्भ में हो रहा है। वही चित्र हम अपने में दृष्टिपात करते रहते हैं विचारों में चित्र है। विचारें में, रपकारश में चित्रावली विद्यमान है, चित्र विद्यमान हैं। तो वेद का ऋषि कहता है भारद्वाज अमृत ब्रह्म वही तो अमृत है उसकी को मान करना है।

तो उन्होंने याग किया और याग का जो क्रिया कलाप समाप्त हुआ, परन्तु चित्र दृष्टिपात कर रहे थे। नाना प्रकार की चित्रावलियों में उनका चित्र आता। द्यौ लोक में चित्र प्रवेश कर रहा था। द्यौ लोक में चित्रावली अपने में चित्रित हो रही थी। उन्होंने याग अपना समाप्त किया। याग को जैसे ही उन्होंने समाप्त किया उनका क्रिया कलाप समाप्त हो गया। ज्ञानश्रुति आश्चर्य चकित हो गए। गाड़ीवान रेवक मुनि से बोले कि महाराज! हम तो विज्ञान की नगरी में आ गए हैं। विज्ञान की प्रतिभा में हम रत्त हो गए हैं। याग मं विज्ञान की उस धारा को जाना। भारद्वाज मुनि बोले कि कहो राजन्! मेरे लिए कोई और आज्ञा हो। उन्होंने कहा प्रभु! हम बहुत से यन्त्रों में रत्त रहना चाहते हैं। दृष्टिपात करना चाहते हैं। उन्होंने कहा, आओ भगवन्! एक यन्त्र उन्होंने जाना। उस यन्त्र में महाराजा ज्ञानश्रुति और गाड़ीवान रेवक दोनें विद्यामन हो गए। उन्होंने यन्त्र को अन्तरिक्ष में त्याग दिया। अन्तरिक्ष में यान गति कर रहा है। यान गति करते करते पृथ्वी की जहाँ

सीमा समाप्त हुई वहाँ मार्कण्डेय ऋषि महाराज का एक यन्त्र पूर्व से विद्यमान था। महाराजा शिव नित्य प्रति उस यान में चर्चाएँ करते थे और वहाँ नित्य प्रति उनका गमन बना हुआ हुआ था।

भारद्वाज वाला जो यन्त्र था वह भ्रमण करते जहाँ पृथ्वी और चन्द्रमा की सीमा का समन्वय हुआ वहाँ यन्त्र स्थिर हो गया। महाराज मार्कण्डेय ऋषि महाराज का यन्त्र भी वहाँ स्थिर हुआ जिसमें महाराजा गणेश जो और सोमभानु ऋषि महाराज दोनें विद्यमान हो करके वैज्ञानिक यन्त्रों में प्रवेश और वैज्ञानिक तथ्यों में रत्त हो रहे थे। जैसे ही उनके द्वार पर पहुँचे सोमभानु आश्र्य चकित हो गए। हे गाड़ीवान रेवक आप तो ब्रह्मवेत्ता हैं, आध्यात्मिकवादी हैं आप इस यान मं क्ैसे प्रवेश हुए। उन्होंने कहा यह भारद्वाज मुनि का यान है। उन्होंने कहा बहुत प्रिय। उन्होंने उस यान को कहा कि तुम पृथ्वी पर चले जाओ। महाराज ज्ञानश्रुति, गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज यान में विद्यमान हो करके पुनः पृथ्वी पर आ गए। जब पृथ्वी पर उनका यान आया तो भारद्वाज मुनि से कहा तुम्हारे विज्ञान की वास्तव मं कोई सीमा नहीं है। तुम्हारा तो विचित्र विज्ञान है। इसी प्रकार महाराजा ज्ञानश्रुति और गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज ने वहाँ से आज्ञा ली कहा प्रभु! हमें आज्ञा दीजिए। भारद्वाज मुनि ने कहा भगवन्! और कुछ दिन आप शयन कीजिए आश्रम में। उन्होंने कहा बहुत प्रिय। वह शयन करते रहे आत्म चर्चा भी होने लगी। उन्होंने कहा हे भगवन्! आप विज्ञान के बाद में से आध्यात्मिकवाद में आत्मा को क्या स्वीकार करते हो? उन्होंने कहा आत्मा तो शरीर का आयतन है। हम इसको भली भांति जानते रहते हैं, विचार करते रहते हैं। अन्वेषण करते रहते हैं, चिन्तन में मग्न रहते हैं। एक एक शब्द जो परणित होता है वही अन्तरिक्ष में गति करता रहता है।

विचार विनमय क्या? जहाँ भौतिक विज्ञान वहाँ आध्यात्मिक विज्ञान में उनकी बड़ी विचित्र उड़ान रहती थी। भारद्वाज मुनि ने कहा यह जो भौतिक विज्ञान मैंने तुम्हें दृष्टिपात कराया है जितना भी यन्त्रवाद है यह सब इन्द्रियों का वाद है, मन की एक प्रतिभा कहलाती है। कोई भी आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता आत्मा के द्वार पर जाना चाहता है आत्मावेत्ता बनना चाहता है तो भौतिक विज्ञान के मार्ग से होता हुआ इसको जानता

हुआ क्रिया में लाता हुआ भौतिक विज्ञान के मार्ग में प्रवेश करता है। तो आध्यात्मिक विज्ञान, भौतिक विज्ञान दोनों के ऊपर बहुत ऊँची उड़ान ऋशि मुनियों की रही है।
आज विशेष तुम्हें चर्चा देने नहीं आया हूँ। महाराजा ज्ञानश्रुति यह चर्चाएँ करते रहते थे। आत्म चर्चाएँ, भौतिक चर्चाएँ जहाँ तक मन का सम्बन्ध है, मन के व्यापार का मन के अनुकल गति करने का जहाँ तक प्रसंग आता है, वचह सब भौतिक वाद मं परणित रहता है। परन्तु जब आत्म प्रकाश, आत्मा की प्रतिभा एक दिव्यता में परणित हो जाता है प्राणी तो वह ब्रह्माण्ड उसके लिए खिलवाड़ वन जाता है। यह ब्रह्माण्ड क्या लोक लोकान्तर क्या, एक परमाणु में ब्रह्माण्ड को निहारता रहता है। एक परमाणु को योग के द्वारा विभाजन करके इस ब्रह्माण्ड को उसमें निहित होता हुआ दृष्टिपात करता है। जैसे एक एक परमाणु में एक एक अणु में मानव का चित्र विद्यमान है जैसे याग कने वाला याज्ञिक श्रोत्रीय जब वह याग करता है तो अपनी वाणी को इतना पवित्र बना लेता है, वाएा और उसका अनुकरण इतना पवित्र होना चाहिए जिसमें द्यौ लोक में जाने वाला उसका शब्द, वही तो उस याज्ञक को प्राप्त होगा। उसे क्या प्राप्त हुआ है? जो द्यौ लोक में भेजा हुआ शब्द है वह किसी न किसी रूप मं प्राप्त होता है। मैं बहुत ऊँची उड़ान पर तुम्हें ले गया हूँ। आज मैं इतनी उड़ान में तो ले जाना नहीं चाहता हूँ। परन्तु विचार केवल यह है कि आज हम उस विचार को जानें जिस विचार के द्वारा मानव का शोधन होना है। वायु मण्डल को पवित्र बनाना है लोक लोकान्तरों की यात्रा करनी है। आज जब मैं अन्वेषण के सम्बन्ध में चिन्तन करता हूँ तो मुझे यह संसार आश्चर्य चकितता में दृष्टिपात होता है।
आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष विवेचना न देता हुआ विचार यह दे रहा था कि महाराजा! ज्ञानश्रुति और गाड़ीवान रेवक भारद्वाज मुनि के आश्रम को त्याग करके माता वसुन्धरा की गोद में उसके विज्ञान को जान करके अपने आश्रम में प्रवेश कर गए। उसी गाड़ी के नीचे ऋषि विद्यमान हैं। 105 वर्ष उस गाड़ी के नीचे तपस्या करके वह भारद्वाज मुनि के आश्रम में से गाड़ीवान रेवक ने वहाँ से प्रस्तान किया। विचार विनिमय क्या? आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ विचार यह देने के लिए आया हूँ

कि प्रत्येक मानव को अपनी मानवता को ऊँचा बनाना है, माता वसुन्धरा की गोद में जा करके हमें उसमें ओत प्रोत होना है। हे मां! तू केसी प्रिय वसुन्धरा है? तू कल्याण करने वाली है। तेरे गर्भ मं यह संसार वशीभूत हो रहा है। क्या वह विज्ञान में हो, क्या आध्यात्मिक विज्ञान में हो, किसी भी धारा में रहने वाला हो परन्तु वह माता के गर्भ से पृथक नहीं होता।

आज का हमारा वाक्य कहता है कि हम परमपिता परमात्मा को, माता वसुन्धरा को पूज्य स्वीकार करके। उस महान् देव की महिमा का गुण गान गाते इस सागर से पार हो जाएँ। प्रत्येक वेदमन्त्र उस ब्रह्म की महत्ता का वर्णन कर रहा है, जैसे माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है जैसे यह पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है, इसी प्रकार प्रत्येक वेदमन्त्र उस ब्रह्म का वर्णन कर रहा है। क्या वर्णन कर रहा है? कहीं वसुन्धरा के रूप में उसका वर्णन कर रहा है कहीं धेनु के रूप मं वर्णन कर रहा है। कहीं विष्णु के रूप में वर्णन कर रहा है। भिन्न भिन्न रूपों में उसका प्रतिपादन हो रहा है। हमें परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए वेद की महिमा में रत्त रहते इस सागर से पार होना है। यह है आज का विचार। कल मुझे समय मिलेगा तो मैं ज्ञानश्रुति और गाड़ीवान रेवक मुनि की चर्चाएँ कल और प्रकट करूँगा।

आज का विचार अब समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि मुनिवरों! वे परमपिता परमात्मा महान् हैं प्रत्येक शब्द उसकी गाथा गा रहा है। वेदमन्त्र गाथा गा रहा है। माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है औरप यह पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है। यह है बेटा! आज का वाक्। अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ कल प्रकट करेंगे। अब वेदों का पठन पाठन होगा। निवास स्थान श्री राम मूर्ति शर्मा । 332, सरोजनी नगर समय : रात्रि 8 बजे। 07 04 1985।